Samaj Foundation Chennai

बंकिम ग्रंथावली

1

R
०८१
११६

main. Gurukul Kangri Collect

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

R
0-9
116

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
0?1
116

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

102285

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0-9
776

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या......... आगत संख्या 102285

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रन्थावली

102285

1 102285

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

बंकिम चंद्र

उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान
के सौजन्य से

शब्दलोक, मेरठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

BANKIM GRANTHAWALI
PART-1

© प्रकाशक

मूल्य : 300 रुपये मात्र / प्रकाशन वर्ष : 1997
प्रकाशक : शब्दलोक, छीपी तालाब, कचहरी रोड, मेरठ (उ. प्र.)
लेज़र टाइपसैटिंग : मानस टाइपसैटर, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
मुद्रक : एस. एन. प्रिंटर्स, एम-72, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

बंकिम ग्रन्थावली, खण्ड-1 बंकिम चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

1

विषवृक्ष
राजसिंह
आनन्द मठ
कपालकुंडला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
0-29
996

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

विषवृक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषवृक्ष

1

नगेन्द्रदत्त नौका पर जा रहे थे। ज्येष्ठ का महीना था और तूफानी हवा चल रही थी। उनकी पत्नी सूर्यमुखी ने अपनी कसम देकर कह दिया था, 'तूफान में नाव न खेना। तूफान आए तो नौका किनारे लगा देना और नौका से उतर जाना।' पत्नी की बात स्वीकार करके नगेन्द्र नौका पर सवार हुए थे। उन्हें भय था कि कहीं वह जाने को मना न कर दे। उन्हें कलकत्ता जाना आवश्यक था, क्योंकि कई काम रुके हुए थे।

नगेन्द्रदत्त धनाढ्य व्यक्ति थे। उनकी बहुत बड़ी जमींदारी थी। वह गोविन्दपुर के रहने वाले थे। नगेन्द्र बाबू की आयु केवल तीस वर्ष थी। वह अपनी नौका पर जा रहे थे। पहिले दो दिन निर्विघ्न बीत गए। तीसरे दिन तूफान आया। नदी का पानी हवामें नाचने लगा। उसमें भंवर से बुलबुले पड़ने लगे। पानी अशान्त हो उठा। नदी के किनारे ग्वाले गौ चरा रहे थे। एक आदमी वृक्ष के नीचे बैठा गाना गा रहा था। किसान हल चला रहे थे। घाट पर कृषकों की स्त्रियां स्नान कर रही थीं। युवतियां घूंघट खींचकर डुबकी लगा रही थीं। बच्चे चिल्ला रहे थे। वे औरों पर पानी के छींटे उड़ा रहे थे। नारियल के वृक्ष पर चील बैठकर चारों ओर देख रही थीं। पनडुब्बी डुबकी लगाती फिरती थी। अन्य बहुत से पक्षी हलके-हलके उड़ते फिरते थे। नाव खटर-खटर चली जा रही थी।

आकाश में बादल उठे और आकाश ढक गया। नदी का पानी काला हो गया। वृक्षों की चोटियां झुक गईं। बगुले उड़े और नदी निस्पन्द हो गई। नगेन्द्र नाव वाले से बोले, 'नाव किनारे ले चलो।' मल्लाह नमाज पढ़ रहा था। उसने उनकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। नमाज समाप्त होने पर वह बोला, 'कोई भय नहीं है हुजूर! आप बेफिक्र रहें।' किनारा निकट ही था। शीघ्र नाव किनारे लग गई। मल्लाहों ने नीचे उतरकर नाव बांध दी।

तूफान कुछ तेज हो गया। अन्धड़ ने किनारे के पेड़-पौधों के साथ महायुद्ध आरम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। पानी में लहरें उठने लगीं। पानी आंधी के कन्धे पर चढ़कर तूफान मचाने लगा। वृक्षों की चोटियां झुक गईं। आंधी ने लताओं को नोंच डाला, फूल कुचल दिए। नदी के पानी ने उत्पात मचा डाला।

नगेन्द्र सोच रहे थे कि वह नाव से नीचे उतरते हैं, तो नाविक उन्हें कापुरुष समझेगा और यदि नहीं उतरते तो सूर्यमुखी के सामने मिथ्यावादी होना पड़ेगा। रहमत अल्लाह आगे आकर बोला, 'हुजूर, पुरानी लकड़ी है, क्या जाने क्या हो ? आंधी बढ़ने पर नाव से नीचे उतरना ही अच्छा है।' लाचार नगेन्द्र नीचे उतर पड़े।

निराश्रित नदी-किनारे खड़े रहना असाध्य था। इसलिए आश्रम की खोज में वह गांव की ओर चल पड़े। वहां से गांव कुछ दूरी पर था। नगेन्द्र पैदल ही दलदली जमीन पर चले। पानी रुका, आंधी भी कम हुई, परन्तु आकाश मेघों से पूर्ण था। रात को फ़िर आंधी-पानी आने की सम्भावना थी।

चारों ओर अंधकार छा गया। गांव, मकान, मैदान, मार्ग, नदी, कुछ दिखाई नहीं देते थे। केवल जंगली वृक्ष जुगनुओं की माला से दमदमा रहे थे। धीरे-धीरे नगेन्द्र को दूर पर कुछ प्रकाश दिखाई दिया। पानी बरसने लगा था। वह उसी प्रकाश की ओर बढ़े। वह बड़े कष्ट से यहां पहुंचे तो देखा ईंटों के बने एक पुराने घर से प्रकाश निकल रहा था। मकान का द्वार खुला था। नगेन्द्र ने नौकर को बाहर छोड़ स्वयं घर में प्रवेश किया। घर की दशा बहुत भयानक थी।

मकान साधारण नहीं था, परन्तु अभावग्रस्त था। एक कोठरी में प्रकाश था। नगेन्द्र ने उसीमें प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि वहां दरिद्रता अपना मुंह बाए खाने को खड़ी थी।

कोठरी में एक खाट बिछी थी, जिस पर एक रुग्ण व्यक्ति लेटा था और उसके किनारे एक युवती बैठी थी।

नगेन्द्र दरवाजे पर खड़े होकर उसके मुंह से निकली दुःखभरी कहानी सुनने लगे। वे दोनों, वृद्ध और बालिका, एक बड़े परिवार के शेष दो प्राणी थे। एक दिन वे धनवान थे, नौकर-चाकर, दास-दासी सब कुछ था। धीरे-धीरे सब-कुछ चला गया। कोई न रहा, केवल वृद्ध और वह बालिका रह गए। वे ही एक-दूसरे के लिए एकमात्र उपाय थे। कुन्द-नन्दिनी की आयु, विवाह की उम्र से आगे बढ़ गई थी, परन्तु पिता चेष्टा करके भी जैसे किसी के हाथ समर्पण न कर सके थे। साथ ही उसके विवाह की बात जैसे किसी आने से वृद्ध सोचते कि यदि वह चली गई तो वह किसके सहारे जिएंगे। उन्हें इस बात की याद न आती थी कि जिस दिन वह इस दुनिया से उठ जाएंगे उस दिन कुंद कहां जाएगी। आज यमदूत उनकी शय्या के पास खड़े थे। कुन्द सोच रही थी कि अब उसका क्या होगा।

इस समय वृद्ध की आंखों से आंसू बह रहे थे। उसके सिरहाने प्रस्तर-मूर्ति की भांति तेरह वर्ष की बालिका स्थिर दृष्टि से पिता के मुंह की ओर देख रही थी। धीरे-धीरे वृद्ध की बातें अस्पष्ट होने लगीं। सांस गले में रुक गई और आंखें निस्तेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गईं। उस कोठरी में कुन्दनन्दिनी अकेली पिता की मृत देह के पास बैठी रही। घोर अंधकार था। बाहर वर्षा हो रही थी। वायु रह-रहकर झकोरे दे रही थी। टूटे मकान की किवाड़ियां खड़खड़ा रही थीं। उस समय हवा के तेज झोंके से दीपक बुझ गया। नगेन्द्र चुपचाप, पैर पीछे हटाकर, कोठरी से बाहर निकल आए।

2

कुन्द चिल्लाई, 'पिताजी !' किसी ने कोई उत्तर न दिया। कुन्द के मन में आया कि शायद उनके पिताजी सो गए, फिर सोचा मर गए। कुन्द फिर बोल न सकी, सोच-समझ न सकी। दिन-रात के जगने और क्लेश से वह विक्षिप्त-सी हो गई थी। हाथ में ताड़ का पंखा लिए वह जमीन पर एक ओर को ढुलक पड़ी।

उसने एक स्वप्न देखा। स्वच्छ चांदनी रात थी। आकाश स्वच्छ नीले रंग का था। नीले आकाश में बहुत बड़े चन्द्रमा का विकास हुआ। कुन्द ने इतना बड़ा चन्द्रमा पहिले कभी नहीं देखा था। उसकी दीप्ति बहुत स्पष्ट थी। उसी समय चन्द्र-मण्डल में कुन्द ने एक अपूर्व ज्योतिर्मयी देवी-मूर्ति देखी। वह ज्योतिर्मयी मूर्ति चन्द्र-मण्डल को छोड़कर धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। फिर चन्द्र-मण्डल शीतल रश्मि छितराता हुआ कुन्दननन्दिनी के मस्तक पर आ गया। कुन्द ने देखा कि वह मण्डल के बीच सुशोभित थी। धीरे-धीरे उस देवी ने स्त्री का रूप धारण कर लिया। उसके ओठों पर हंसी खिल रही थी। कुन्द ने भय और आनन्द से देखा कि वह उसकी बहुत दिन की मरी हुई माता थी। उसने कुन्द को जमीन से उठाकर गोद में ले लिया। कुन्द ने बहुत दिन बाद 'मां' कहकर पुकारा। उसने कुन्द का मुंह चूम कर कहा, 'बेटी, तूने बहुत दुःख पाया है और अभी तू बहुत दुःख पाएगी। तू उस दुःख को न सह सकेगी। अब तू यहां न रह। चल, मेरे साथ चल।' कुन्द ने उत्तर दिया, 'कहां चलूं मां ?' कुन्द की माता ने ऊपर की ओर संकेत करके चमकते तारों को दिखाकर कहा, 'उस देश में !' यह सुनकर मां के मुख-मण्डल पर अप्रसन्नता छा गई। उसने गम्भीर स्वर में कहा, 'बेटी ! तुम्हारी जो इच्छा हो वह करो। मेरे साथ चलती, तो अच्छा होता। इस समय न चलेगी तो बाद में तू तारों की ओर देखकर वहां आने के लिए कातर होगी। मैं फिर एक बार तुझसे मिलूंगी। जब तू दुःखी होकर मुझे याद करके रोएगी तो मैं आऊंगी। तब तू मेरे साथ चलना। देख मैं तुझे दो मनुष्य-मूर्तियां दिखाती हूं। ये दो मनुष्य संसार में तुम्हारे शुभाशुभ के कारण होंगे। इन्हें देखते ही विषधर के समान इनसे बचना। जिस राह से ये जाएं, उस राह को त्याग देना।'

ज्योतिर्मयी ने आकाश की ओर संकेत किया। कुन्द ने उसके संकेत पर एक पुरुष-आकृति देखी। वह व्यक्ति महापुरुष-सा प्रतीत होता था। धीरे-धीरे वह विलीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया। मां बोली, 'इनके सुन्दर रूप को देखकर भ्रम में न आ जाना। यह तुम्हारे लिए अमंगल के कारण होंगे। इन्हें सर्प समझना।' उसके बाद कुन्द ने वहां एक उज्जवल श्यामांगी युवती को देखा। कुन्द की माता ने कहा, 'यह राक्षसी है। इसके जाल में न फंसना।'

तभी आकाश अन्धकारमय हो उठा। चन्द्र-मण्डल डूब गया। उसीके साथ उसके अन्दर तेजोमयी भी विलीन हो गई। कुन्द की नींद भी खुल गई।

इस गांव का नाम झुमझुमपुर था। नगेन्द्र ने ग्राम में जाकर यह सूचना दी। उनके कहने से गांव के आदमी मृत-संस्कार का आयोजन करने लगे थे। एक पड़ोसिन कुन्द के पास रही। कुन्द रो रही थी। सवेरे पड़ोसिन अपने घर चली गई। कुन्द को धीरज बंधाने के लिए उसने अपनी कन्या चम्पा को भेज दिया। चम्पा कुन्द की ही आयु की थी और उसके साथ खेली थी।

चम्पा ने कुन्द से भांति-भांति की बातें कीं। उसे धीरज बंधाया, परन्तु उसने देखा कि कुन्द कुछ सुनती ही नहीं थी। वह आकाश पर देख रही थी। चम्पा ने पूछा, 'तुम आकाश पर क्या देख रही हो ?'

'आकाश से कल मां आई थीं। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया था। मेरी जाने कैसी बुद्धि हुई कि मैं नहीं गई। अब सोच रही हूं कि चली जाती तो अच्छा होता। वह अब आएं तो मैं चली जाऊं। मैं आकाश में अपनी मां को देख रही हूं।'

'मरा मनुष्य भी कहीं फिर आता है ?'

तब कुन्द ने स्वप्न का सब हाल सुनाया। वह सुनकर चम्पा विस्मित होकर बोली, 'तुमने जिस पुरुष और औरत को देखा, उन्हें पहिचानती हो ?'

'नहीं, उन्हें मैंने पहिले कभी नहीं देखा। बहुत सुन्दर पुरुष था।'

नगेन्द्र ने सवेरे गांव के आदमियों से पूछा, 'इस कन्या का क्या होगा ? यह कहां रहेगी ? इसका कौन है ?' गांव वालों ने कहा, 'इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसका कोई नहीं है।' नगेन्द्र बोले, 'तुममें से कोई इससे विवाह करे तो, खर्च मैं दूंगा।'

नगेन्द्र रुपये फेंक देते तो शायद कितने ही आदमी उनकी बात को मान लेते और नगेन्द्र के चले जाने पर कुन्द को घर से निकाल देते या दासी बना लेते, परन्तु नगेन्द्र ने वैसी मूर्खता नहीं की।

एक आदमी बोला, 'श्याम बाजार में इसकी एक मौसी है। विनोद घोष इसके मौसा हैं। आप कलकत्ता जा रहे हैं, इसे अपने साथ ले जाकर, उनके यहां पहुंचा दें तो इसका ठिकाना हो जाएगा।'

नगेन्द्र ने स्वीकार कर कुन्द को बुलाया। चम्पा कुन्द को अपने साथ ले आई। नगेन्द्र को देखकर कुन्द स्तम्भित-सी खड़ी रह गई। वह आगे पैर न बढ़ा सकी। वह विस्मय से नगेन्द्र की ओर देखती रही।

'तुम खड़ी क्यों हो गईं ?'

'यही है वह व्यक्ति !'

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वही कौन ?'

'जिसे मां ने कल रात दिखाया था।'

यह सुनकर चम्पा भी सशंकित होकर खड़ी हो गई। नगेन्द्र उनके पास आए और उन्होंने कुन्द को सब बातें समझा दीं। कुन्द कोई उत्तर न दे सकी, केवल विस्मय से बड़ी-बड़ी आंखें निकाल कर नगेन्द्र को देखती रही।

3

नगेन्द्रदत्त कुन्द को अपने साथ कलकत्त ले आए। उन्होंने उसके मौसा विनोद घोष का बहुत पता लगाया, परन्तु श्यामबाजार में विनोद घोष नाम का कोई व्यक्ति न मिला।

नगेन्द्र की एक सगी बहिन थी, उनसे छोटी, कमलमणि। उसकी सुसराल कलकत्ते में थी। उनके पति का नाम श्रीशचन्द्र मिश्र था। वह बहुत धनाढ्य व्यक्ति थे। नगेन्द्र से उन्हें बड़ी प्रीति थी। कुन्द को नगेन्द्र उन्हीं के यहां ले गए। कमल को बुलाकर उन्होंने कुन्द का परिचय कराया।

कमल की आयु अठारह वर्ष की थी। उसके चेहरे की बनावट नगेन्द्र जैसी ही थी। दोनों ही बहुत सुन्दर थे, परन्तु कमल सौंदर्य के साथ विद्वान भी थी। नगेन्द्र के पिता ने कमलमणि और सूर्यमुखी को विशेष रूप से लिखना-पढ़ना सिखाया था। कमल के ससुर थे, परन्तु वह श्रीशचन्द्र के पास कलकत्ते में नहीं रहते थे।

नगेन्द्र ने कमल से कहा, 'इस समय कमल तुम्हारे अतिरिक्त इसे और कहीं सहारा नहीं है। जब मैं लौटूंगा तो इसे गोविन्दपुर ले जाऊंगा।'

कमल बड़ी पाजी थी। वह कुन्द को गोद में लेकर दौड़ी और टब, जिसमें थोड़ा अर्धगर्म पानी था, उसे उसमें फेंक दिया। कमल फिर हंसकर सौरभयुक्त साबुन से उसके बदन को धोने लगी। एक नौकरानी कमल को काम में लगी देखकर बोली, 'मैं मलती हूं, मैं मलती हूं।' कमल ने गर्म पानी नौकरानी के ऊपर उछाला तो वह भागी।

कमल ने अपने हाथों से कुन्द को धोकर, नहलाकर, साफ किया। कुन्द नहाकर शिशिर कमल की तरह सुन्दर हो उठी। कमल ने फिर उसे सफेद वस्त्र पहिनाकर सुगंधित तेल से उसके केश संवारे। फिर कुछ जेवर पहिनाकर कहा, 'जा भैया को प्रणाम कर आ। इस मकाने के बाबू को प्रणाम न कर बैठना। नहीं तो इस घर के बाबू देखते ही तुझसे विवाह कर बैठेंगे।'

नगेन्द्र ने कुन्द की सब बातें सूर्यमुखी को लिख दीं। हरदेव घोषाल नामक उनके एक प्रिय मित्र दूर देश में रहते थे। नगेन्द्र ने उन्हें भी कुन्दनन्दिनी के विषय में लिखा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बताओ, किस आयु में स्त्रियां सुन्दर होती हैं ? तुम कहोगे, चालीस साल के बाद, क्योंकि तुम्हारी ब्राह्मणी की यही आयु है। मैंने कुन्द नाम की जिस कन्या का परिचय दिया, उसकी आयु तेरह वर्ष है। उसे देखकर जान पड़ता है, यही सौन्दर्य का समय है ? प्रथम यौवन के उभार के समय जैसी माधुर्य और सरलता होती है, बाद में उतनी नहीं रहती। कुन्द की सरलता अवर्णनीय है। वह कुछ समझती ही नहीं। राह के बालकों के साथ खेलने दौड़ती है। मना करने पर डरकर लौट आती है। कमल उसे लिखना-पढ़ना सिखा रही है। कमल का कहना है कि उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र है, परन्तु और कुछ वह समझती ही नहीं। उसका कहना है कि उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आंखें सदा स्वच्छ पानी में तैरती-सी रहती हैं। वह मेरे मुंह को देखती है तो कुछ कहती नहीं। मैं उन आंखों को देखकर अन्यमनस्क हो जाता हूं। उन्हें मैंने दो बार एक जैसा नहीं पाया। इस पृथ्वी को वह मानो अच्छी तरह देखती ही नहीं। मैंने अपनी समझ में ऐसी सुन्दरी कभी नहीं देखी। जान पड़ता है, कुन्दनन्दिनी में पृथ्वी के अतिरिक्त और कुछ भी है। चन्द्र की किरणों ने मानो उसके बदन को गढ़ा है। उसकी तुलना भी मैं किसी चीज से नहीं कर सकता।'

नगेन्द्र ने सूर्यमुखी को जो पत्र लिखा था, उसका उत्तर कुछ दिन पश्चात् आया। उसमें लिखा था, 'दासी यह न समझ सकी कि उसने श्रीचरणों का क्या अपराध किया है। यदि कलकत्ते में आप अधिक दिन ठहरें तो मैं भी वहीं आकर पद-सेवा करूं? मैं आज्ञा पाते ही चली आऊंगी।

'कुन्द के पाने से क्या मुझे आप भूल गए ? बहुतेरी चीजों का कच्चे मे ही आदर होता है। नारियल की तरह अधम स्त्री-जाति भी शायद कच्चे ही में मीठी होती है; नहीं तो कुन्द को पाकर तुम मुझे क्यों भूल जाते ?

'क्या तुमने उस लड़की को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है ? मैं तुमसे उसकी भीख मांगती हूं। मुझे लड़की की जरूरत है। यदि तुम्हें कोई चीज मिले, तो उस पर मेरा ही अधिकार है। आजकल देखती हूं कि आप पर अपनी बहिन का अधिकार अधिक हो गया है।

'आपको लड़की की और क्या जरूरत है ? मैं ताराचरण के साथ उसका विवाह करा दूंगी। तुम जानते हो, मैं ताराचरण के लिए एक अच्छी लड़की की खोज में हूं। यदि विधाता ने एक अच्छी लड़की दी है, तो मुझे निराश न करना। यदि कमल छोड़े, तो कुन्द को अपने साथ ले आना। मैंने कमल से भी प्रार्थना की है। मैं विवाह के उद्योग में लग गई हूं। कलकत्ता से शीघ्र आना। यदि कुन्द से स्वयं विवाह करना हो, तो लिखो, मैं विवाह की डोली सजा रखूं।'

सूर्यमुखी के प्रस्ताव पर नगेन्द्र और कमलमणि दोनों राजी हो गए। निश्चय हुआ कि नगेन्द्र कुन्द को अपने साथ घर ले आएंगे। कमल ने भी कुन्द के लिए गहने गढ़वाने को दिए।

नगेन्द्र कुन्द को साथ लेकर गोविन्दपुर गए। कुन्द उस स्वप्न को भूल-सी गई

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। नगेन्द्र के साथ यात्रा के समय फिर उसकी याद आई।

सूर्यमुखी के पिता कन्नगर में रहते थे। एक भले कायस्थ थे। कलकत्ते के किसी हाउस में कैशियर थे। सूर्यमुखी उनकी अकेली संतान थी। उसके बचपन में श्रीमती नाम की एक विधवा दासी सूर्यमुखी का पालन करती थी। श्रीमती के एक लड़का था। उसका नाम ताराचरण था। वह सूर्यमुखी की उम्र का ही था। सूर्यमुखी बचपन में उसके साथ खेलती थी और उसे भाई जैसा स्नेह करती थी।

श्रीमती रूपवती थी, इसलिए शीघ्र ही विपदा में पड़ गई। गांव के एक दुश्चरित्र धनी व्यक्ति की आंखों में गड़ कर वह सूर्यमुखी के पिता के घर से भाग गई। फिर वह लौटकर नहीं आई।

श्रीमती ताराचरण को वहीं छोड़ गई। ताराचरण सूर्यमुखी के पास ही रहा। सूर्यमुखी के पिता ने उस अनाथ बालक का अपनी संतान की तरह पालन किया। ताराचरण एक अवैतनिक मिशनरी स्कूल में अंग्रेजी पढ़ने लगा।

सूर्यमुखी का विवाह हो गया। कई वर्ष बाद उसके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। उस समय तक ताराचरण कुछ-कुछ अंग्रेजी सीख गया था, परन्तु कोई काम-काज न लगा था। सूर्यमुखी के पिता के परलोक जाने पर निराश्रित हो वह सूर्यमुखी के पास आ गया। सूर्यमुखी ने नगेन्द्र से गांव में एक स्कूल खुलवा दिया था। ताराचरण उसमें मास्टरी करने लगे और ग्राम्य देवता बन गए। उन्होंने 'सिटिजन ऑफ द वर्ल्ड' और 'स्पेक्टेटर' पढ़े थे और ज्यामिति की तीन किताबें भी रटी थीं। वह देवीपुर-निवासी जमींदार देवेन्द्र बाबू के ब्रह्म-समाज में प्रवेश कर गए। वह बाबू के मुसाहिबों में गिने जाने लगे। समाज में ताराचरण विधवा-विवाह के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखकर हर सप्ताह पढ़ते और बड़ी-बड़ी वक्तृताएं देते थे। उनमें से कुछ का तो वह 'तत्व-बोधिनी' में से नकल कर लेते थे और कुछ पण्डितों से लिखा लेते थे। वह कहा करते थे, 'तुम ईंट-पत्थरों की पूंजा छोड़ो; चाची और ताई का विवाह करो; लड़कियों को पढ़ना-लिखना सिखाओ; उन्हें पिंजरें में बन्द क्यों किए हो ? औरतों को बाहर निकलने दो।' स्त्रियों को लिबर्टी देने का कारण यह था कि उनका अपना घर स्त्री-शून्य था। उनका विवाह नहीं हुआ था। सूर्यमुखी उनके विवाह के लिए बहुत यत्न करती थी। उसके माता के कुल-त्याग करने के कारण कोई भला कायस्थ उन्हें कन्या देने को राजी नहीं होता था। निम्न कायस्थों की कुरूप कन्याएं मिलती थीं, परन्तु क्योंकि सूर्यमुखी ताराचरण को भाई के समान मानती थी, इसलिए वह छोटे आदमियों की कन्या को भौजाई बनाने को तैयार नहीं थी। वह किसी सुन्दर कन्या की खोज में थी। इसी बीच नगेन्द्र की चिट्ठी से कुन्दनन्दिनी के रूप-गुण की बात जानकर उन्होंने स्थिर किया कि ताराचरण से उसका विवाह करेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4

कुन्द नगेन्द्रदत्त के साथ गोविन्दपुर आई। कुन्द नगेन्द्र का मकान देखकर चकित रह गई। इतना बड़ा मकान उसने नहीं देखा था। उस मकान की तीन मंजिलें बाहर और तीन मंजिलें अंदर थीं।

कुन्दनन्दिनी ने विस्मयभरी दृष्टि से नगेन्द्र के अपरिमित ऐश्वर्य को देखते हुए अंतःपुर में प्रवेश किया। सूर्यमुखी के सामने जाने पर उसने उन्हें प्रणाम किया और सूर्यमुखी ने आशीर्वाद दिया।

नगेन्द्र के साथ स्वप्न में देखे पुरुषपुर के सादृश्य का अनुभव कर कुन्दनन्दिनी के मन में संदेह था कि उनकी पत्नी अवश्य उस पुरुष के बाद देखी स्त्री होगी, परन्तु सूर्यमुखी को देखने पर वह संदेह जाता रहा। कुन्द ने देखा कि सूर्यमुखी आकाश से दिखाई देनेवाली स्त्री के समान नहीं थी। सूर्यमुखी तपे सोने के रंग की थी। उसका चेहरा सुन्दर था। स्वप्न में दिखाई देनेवाली श्यामांगी की आंखों में इतनी अलौकिक मनोहरता नहीं थी। सूर्यमुखी की बनावट भी वैसी नहीं थी। स्वप्न में दिखाई देने वाली स्त्री भी सुन्दर थी, परन्तु सूर्यमुखी उससे सौ गुनी सुन्दर थी। स्वप्न में दिखाई देने वाली स्त्री की आयु बीस से अधिक नहीं थी। सूर्यमुखी की आयु छब्बीस वर्ष के लगभग थी। सूर्यमुखी के साथ उस मूर्ति का कोई सादृश्य न देख, कुन्द के मन की चिन्ता जाती रही।

सूर्यमुखी ने कुन्द से प्रेमपूर्वक बातचीत की। उसकी सेवा के लिए दासियों को बुलाकर आदेश दिया और उनमें जो प्रधान थी, उससे कहा, 'कुन्द के साथ मैं ताराचरण का विवाह करूंगी। इसलिए तुम मेरी भौजाई की तरह इसकी सेवा करना।'

दासी ने स्वीकार किया। कुन्द को साथ लेकर वह दूसरी कोठरी में चली गई। इस बीच कुन्द ने उसकी ओर देखा। उसे देखकर कुन्द को सिर से पैर तक पसीना आ गया। जिस स्त्री को कुन्द ने आकाश-पट पर देखा था, यह दासी हू-ब-हू वही थी। कुन्द ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मेरा नाम हीरा है।' दासी ने कहा।

कुन्दनन्दिनी का ताराचरण के साथ विवाह हुआ। ताराचरण उसे अपने घर ले गए, परन्तु उसे पाकर वह बहुत ही विपत्ति में पड़ गए। ताराचरण की स्त्री-शिक्षा और पर्दा-भंग के प्रबंध देवेन्द्र बाबू की बैठक में पढ़े जाते थे। तर्क-वितर्क का समय आने पर मास्टर साहब सर्वदा दम्भ के साथ कहा करते थे, 'यदि कभी मेरा समय होगा तो इस विषय में मैं पहिले रिफॉर्म करने का दृष्टांत दिखाऊंगा। अपना विवाह होने पर मैं अपनी स्त्री को सबके सामने बाहर ले आऊंगा।' अब विवाह हो गया था। कुन्दनन्दिनी के सौंदर्य की ख्याति मित्रों में प्रचारित हुई। सबने कहा, 'कहां रहा वह प्रण तुम्हारा ?' देवेन्द्र ने पूछा, 'क्यों जी ! क्या तुम भी ओल्ड-फूल्स के दल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो ? पत्नी के साथ हम लोगों का परिचय क्यों नहीं कराते ?'

ताराचरण बहुत लज्जित हुए। वह देवेन्द्र बाबू के अनुरोध को सहन न कर सके। वह देवेन्द्र से कुंदनन्दिनी की भेंट कराने पर बड़ विवश हो गए, परन्तु भय यह हुआ कि सूर्यमुखी यह सुनकर क्रोध करेंगी। इस प्रकार टाल-मटोल करते एक मास बीत गया। अन्त में उन्होंने मकान की मरम्मत का बहाना करके कुंद को नगेन्द्र के घर भेज दिया। जब मकान की मरम्मत हो गई तो फिर वहीं ले आना पड़ा। देवेन्द्र एक दिन स्वयं अपने मित्रों के साथ ताराचरण के घर आ पहुंचे। उन्होंने ताराचरण पर मिथ्या-दम्भ का व्यंग्य कसा। लाचार होकर ताराचरण ने कुंदनन्दिनी का देवेन्द्र से परिचय करा दिया। कुंदनन्दिनी ने देवेन्द्र के साथ क्या बातचीत की ? कुछ देर घूंघट निकालकर खड़ी रहने के पश्चात् वह रोकर भाग गई, परन्तु देवेन्द्र उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गए। उस शोभा को वह भूल न पाए।

कुछ दिन पश्चात देवेन्द्र के घर कोई समारोह था। उनके घर से एक लड़की कुंद को निमंत्रण देने आई। सूर्यमुखी ने उस निमंत्रण को रोक दिया। इसलिए जाना स्थगित हो गया।

देवेन्द्र ताराचरण के घर आकर फिर एक बार कुंद से बातचीत भी कर गए। यह सूर्यमुखी ने भी सुना। उन्होंने ताराचरण को ऐसी डांट लगाई कि तब से कुन्दनन्दिनी के साथ देवेन्द्र की भेंट असम्भव हो गई।

उस तरह तीन वर्ष बीत गए। उसके बाद कुन्दनन्दिनी विधवा हो गई। ताराचरण की मृत्यु हो गई। सूर्यमुखी ने कुन्द को अपने घर बुला लिया। उन्होंने ताराचरण के लिए जो मकान बनवा लिया था, उसे बेचकर कुंद को रुपया दे दिया।

5

विधवा कुंदनन्दिनी ने कुछ दिन नगेन्द्र के घर बिताए। एक दिन मध्याह्न के बाद घर की सब स्त्रियां मिलकर पुराने जनानखाने में बैठी थीं। सब अपने-अपने काम में लगी थीं। कोई सुंदरी अपने बच्चे के लिए कुछ सी रही थी, कोई बालक को दूध पिला रही थी, कोई बच्चा खिला रही थी। सूर्यमुखी इस सभा में नहीं थी। वह ऐसे संप्रदाय में नहीं बैठती थीं और उनके रहने से अन्य सबके आमोद में विघ्न होता था। उनसे सब डरती थीं। उनके आगे मन खोलकर बातें नहीं कर सकती थीं। कुंदनन्दिनी आजकल इसी सम्प्रदाय में रहती थी। वह अब भी वहीं थीं। वह एक बालक को उसकी माता के अनुरोध से 'क, ख' सिखा रही थी। तभी 'जय राधे !' कहती हुई एक वैष्णवी वहां आ गई।

अन्तःपुर में 'जय राधे' सुनकर एक स्त्री ने कहा, 'तू कौन आई है री मकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भीतर ? ठाकुरबाड़ी में जा !' किन्तु यह बात कहते-कहते उसने जो मुंह फेरा, तो वैष्णवी को देखकर वह अपने मुंह की बात समाप्त न कर सकी। वह बोली, 'यह कौन वैष्णवी है ?'

सबने विस्मित होकर देखा कि वैष्णवी एक युवती थी। उसके रूप का क्या कहना। कुंदनन्दिनी के अतिरिक्त उससे अधिक रूपवती ओर कोई नहीं थी, परन्तु उसके चलने-फिरने में पुरुषता थी।

एक बड़ी उम्रवाली स्त्री बोली, 'ए जी ! तुम कौन हो ?'

वैष्णवी बोली, 'मेरा नाम हरिदासी वैष्णवी है। तुम मेरा गाना सुनोगी।'

चारों ओर से 'सुनेंगी-सुनेंगी' की आवाजें आने लगीं। खंजरी हाथ में ले वैष्णवी मालकिन के पास जा पहुंची। जहां वह थी, वहीं कुंद लड़कों को पढ़ा रही थी। कुंद को गाना बहुत पसंद था। वैष्णवी का गाना सुनने के लिए वह भी समीप जा बैठी।

वैष्णवी ने पूछा, 'क्या गाऊं ?' सुनने वालियों की अनेक फरमाइशें हुईं। किसी ने पूछा, 'गोविन्द अधिकारी के पद', किसी ने 'गोविन्द उड़िया के पद।' किसीने गाछ की मांग की, किसी लज्जाहीना युवती ने कहा, 'निधुका टप्पा, गाना हो तो गाओ, नहीं तो मैं न सुनूंगी।' वैष्णवी ने सबकी आज्ञा सुनकर कुंद की ओर देखकर पूछा, 'ऐ जी, तुमने कोई फरमाइश नहीं की ?' कुंद लज्जा से सिर झुकाकर मुस्कुराई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तभी एक बड़ी उम्र वाली स्त्री ने उसके कान में कहा, 'कीर्तन गाने को कहो ?'

वयस्का बोली, 'कुंद कीर्तन गाने को कह रही है।' वैष्णवी ने कीर्तन आरम्भ किया। सबकी बातों को टालकर वैष्णवी ने उसी की बात रखी, यह देखकर कुंद बहुत लज्जित हुई।

हरिदासी वैष्णवी ने पहिले खंजरी पर दो-एक बार मानो खेलवाड़ करते हुए उंगली की चोट की। उसके बाद वह अपने गले में मिठास लिए, नव-वसंत-प्रेरित भ्रमरी की तरह, गूंजने वाले स्वर का अलाप लेने लगी। सुनने वालों के शरीर को झकझोर कर अप्सरा को भी लजाने वाली कण्ठ-ध्वनि से उसने गाया। रमणी-मण्डल ने विमोहित चित्त से सुना। वैष्णवी का स्वर आकाश में गूंज उठा। वैष्णवी संगीत-विद्या में असाधारण सुशिक्षित थी।

कुंद गिलास में पानी ले आई। वैष्णवी ने कहा, 'तुम लोगों का बर्तन मैं नहीं छुऊंगी। मेरे हाथ पर पानी डाल दो। मैं निम्न जाति की वैष्णवी हूं।'

सब समझ गए कि वह वैष्णवी पहिले किसी छोटी जात की थी अब वैष्णवी हो गई थी। कुन्द उसके पीछे-पीछे कुछ दूर पानी गिराने योग्य स्थान पर गई। कुन्द वैष्णवी के हाथ पर पानी गिराने लगी। वैष्णवी हाथ-मुंह धोने लगी। धोते-धोते वैष्णवी धीरे-धीरे बोली, 'तुम्हारा ही नाम कुन्द है ?'

'क्यों ?' कुन्द ने पूछा।

'तुमने अपनी सास को कभी देखा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं, मैंने नहीं देखा।'

कुन्द ने सुना था कि उसकी सास भ्रष्ट होकर चली गई थी।

'तुम्हारी सास यहां आई हैं। वह मेरे घर पर हैं। तुम्हें एक बार देखना चाहती है। हजार हो, सास ही तो है। वह तुम्हारी गृहिणी के सामने अपना काला मुंह दिखा नहीं सकती। तुम्हीं मेरे साथ चलकर उससे भेंट कर आओ।'

कुन्द सरला होने पर भी समझ गई कि उस सास से सम्बन्ध स्वीकार करना अनुचित था। उसने वैष्णवी की बात को अस्वीकार कर दिया।

वैष्णवी फिर उत्तेजित करने लगी। कुन्द बोली, 'मैं गृहिणी से बिना कहे नहीं जा सकती।'

हरिदासी बोली, 'गृहिणी से न कहना। वह जाने न देंगी। तुम्हारी सास को देश छोड़ना पड़ेगा।'

वैष्णवी ने बहुत कहा, परन्तु कुन्द किसी प्रकार बिना सूर्यमुखी की आज्ञा के जाने को उद्यत न हुई। लाचार हरिदासी बोली, 'अच्छा, तब तुम गृहिणी से कहकर देखना। मैं फिर किसी दिन आकर ले चलूंगी, परन्तु अच्छी तरह कहना। कुछ रो भी देना, नहीं तो काम न बनेगा।'

कुन्द इस पर भी राजी नहीं हुई, परन्तु उसने वैष्णवी से 'हां' या 'ना' नहीं किया। हरिदासी ने हाथ-मुंह समाप्त कर सब लोगों के सामने आकर पुरस्कार मांगा। तब वहां सूर्यमुखी भी आ गई थी।

सूर्यमुखी ने हरिदासी को सिर से पैर तक देखकर कहा, 'तुम कौन हो ?' नगेन्द्र की एक मौसी बोली, 'यह एक वैष्णवी है, गाने आई थी। अच्छा गाती है। ऐसा गाना हम लोगों ने पहिले कभी नहीं सुना। तुम भी सुनोगी ? गाओ तो हरिदासी, कोई गाना गाओ।'

हरिदासी के एक गाना गाने पर सूर्यमुखी ने उस पर प्रसन्न हो, पुरस्कार देकर उसे विदा किया।

वैष्णवी प्रणाम करके कुन्द की ओर फिर एक बार देखकर विदा हुई।

नगेन्द्र के पितामह ने देवेन्द्र के पितामह को एक मुकदमे में हराया था। इससे देवीपुर के बाबू लोग हीन हो गये थे। डिग्री में उनका सर्वस्व चला गया था। गोविन्दपुर के बाबुओं ने उनकी सब जमीन खरीद ली थी। तब से देवीपुर का मान घटा और गोविन्दपुर का बढ़ा। वंशों में फिर मेल न हुआ। देवेन्द्र के पिता ने अपना गौरव बढ़ाने के लिए एक उपाय किया। गणेश बाबू नामक एक जमींदार हरिपुर जिले में थे। उनकी एकमात्र कन्या हेमवती थी। उन्होंने हेमवती के साथ देवेन्द्र का विवाह कर दिया। हेमवती कुरूपा, जबान की तेज और अप्रिय भाषिणी थी। जब देवेन्द्र का विवाह हुआ, देवेन्द्र का चरित्र निष्कलंक था, परन्तु यह विवाह उनका काल बन गया। उन्होंने देखा कि पत्नी की ओर से उन्हें घर में किसी भी प्रकार के सुख की आशा नहीं थी। उनमें रूप की तृष्णा उत्पन्न हुई। अपने घर में वह तृष्णा दूर नहीं हुई। सुख तो दूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा देवेन्द्र ने देखा कि हेमवती के रसना-विष की ज्वाला से घर में ठहरना भी कठिन था। एक दिन हेमवती ने देवेन्द्र को अपमानित किया तो वह सह न सके। वह कलकत्ता चले गए। इससे पूर्व ही उनके पिता का स्वर्गवास हो चुका था। अब देवेन्द्र स्वाधीन थे। कलकत्ते में पाप की कीचड़ में फंसे देवेन्द्र अपनी अतृप्त विलास-तृष्णा को दूर करने लगे थे। वह शराब पीने लगे। कुछ दिन बाद बाबूपन में प्रवीण होकर देवेन्द्र देश लौटे और वहां नवीन उपवन-गृह में रहने लगे।

कलकत्ते से देवेन्द्र अनेक प्रकार के ढंग सीखकर आए थे। उन्होंने देवीपुर में सुधारक के रूप में अपना परिचय दिया। उन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना की। ताराचरण आदि अनेक युवकों को जुटाया। वह एक स्त्रियों के स्कूल के लिए भी आडम्बर करने लगे, परन्तु कर न सके। विधवा-विवाह में बड़ा उत्साह दिखाया। दो-चार विवाह करा भी डाले। स्त्री-स्वतंत्रता के विचार को लेकर ताराचरण से उनकी राय मिल गई। दोनों कहते थे कि औरतों को पर्दे से बाहर निकालना चाहिए।

देवेन्द्र गोविन्दपुर से लौटने के बाद वैष्णवी का वेश त्यागकर बगल के कमरे में जाकर बैठ गए। एक नौकर ने हुक्का उनके सामने रखा। देवेन्द्र ने हुक्का पिया। केवल हुक्के से उनका काम चलने वाला नहीं था। उन्होंने शराब की बोतल मंगाई और उसे पीकर उनकी आत्मा को शांति मिली।

उसके बाद तानपूरा, तबला, सितार आदि समेत गाने-बजाने वालों का दल आया। वे सब पूजा के लिए प्रयोजनीय संगीतोत्सव सम्पूर्ण करके चले गए।

अन्त में देवेन्द्र के मित्र सुरेन्द्र वहां आकर बैठे। वह उनके मामा के लड़के थे। वे देवेन्द्र से भिन्न प्रकृति के थे। देवेन्द्र उनके अतिरिक्त संसार में अन्य किसी की बात न मानते थे। सुरेन्द्र नित्य एक बार देवेन्द्र का समाचार लेने आते थे। देवेन्द्र शराब के नशे में होते थे, इसलिए वह अधिक देर बैठते नहीं थे। सबके उठ जाने पर सुरेन्द्र ने देवेन्द्र से पूछा, 'आज तुम्हारा बदन कैसा है ? क्या आज तुम्हें ज्वर जान पड़ा था ?'

'नहीं तो।'

'यकृत का दर्द कैसा है ?'

'वह तो पहिले जैसा ही है। कोई अन्तर नहीं है।'

'तो फिर यह सब बन्द रखना चाहिए ?'

'शराब पीना ! कितने दिन ? यह तो मेरे जन्म की साथिन है।'

'जन्म की साथिन क्यों है ? न साथ आई न साथ जाएगी। बहुतों ने त्याग दी है, तुम न त्याग सकोगे ?'

'किस सुख के लिए इसका त्याग करूं ? जिन्होंने त्यागा है, उन्हें कोई और सुख मिला होगा। मेरे लिए तो कोई सुख नहीं है।'

'तुम प्राण बचाने की आकांक्षा से इसका त्याग करो।'

'जिसे जीने में सुख मिले वह जीने की आशा से शराब छोड़े। मेरे जीने से क्या

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ होगा ?'

सुरेन्द्र की आंखों में आंसू आ गए। वह बोले, 'हम लोगों के अनुरोध से शराब पीना छोड़ दो।'

देवेन्द्र की आंखों में भी आंसू आ गए। देवेन्द्र बोले, 'तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई मुझसे ठीक राह पर लगने का अनुरोध नहीं करता। यदि कभी मैं शराब का त्याग करूंगा, तो तुम्हारे ही कारण करूंगा, और....'

'और क्या ?'

'और यदि अपनी स्त्री की मृत्यु का समाचार इन कानों से सुनूंगा, तो शायद छोड़ भी दूं। आज तो जीना-मरना समान ही है।' देवेन्द्र भारी मन से बोला।

6

सूर्यमुखी ने कमलमणि को एक पत्र लिखा। 'श्रद्धेय कमलमणि !

यह तुम्हें लिखते लज्जा आती है क्योंकि मैं तुम्हें अपनी छोटी बहिन के सिवा और कुछ नहीं समझती।

आज तुम्हें अपनी दशा लिखते दुःख भी होता है और लज्जा भी आ रही है। हृदय में जो कष्ट है, वह सहा नहीं जाता। किससे कहूं ? तुम मेरी बहिन हो, मुझे और कोई नहीं चाहता। तुम्हारे भाई की बात तुम्हारे अतिरिक्त और किसी से कह भी नहीं सकती।

मैंने अपनी चिता आप ही सजा ली है। कुन्दनन्दिनी भूखी मर जाती तो उससे मेरी कोई हानि न थी ? प्रभू इतने लोगों को प्रबन्ध करते हैं, क्या उसका न करते? मैंने व्यर्थ उसे अपने घर में बुलाया।

तुमने उसे जब देखा था, वह बच्ची थी। अब वह बीस वर्ष की है। वह सुन्दर है। वही सौन्दर्य मेरा काल हो गया है।

संसार में मेरे लिए एकमात्र पति का सुख है। मुझे चिन्ता भी पति के लिए ही है। मेरी कोई सम्पत्ति है तो वह हैं। उन्हें कुन्दनन्दिनी मेरे हृदय से छीन रही है। कुन्दनन्दिनी मेरे पति के स्नेह से मुझे वंचित कर रही है।

तुम अपने भाई को बुरा न कहना। मैं उनकी निन्दा नहीं कर रही हूं। वह धर्मात्मा हैं, शत्रु भी उनके चरित्र में कलंक नहीं लगा सकते। वह अपने चित्त को वश में किए हुए हैं। जिधर कुन्दनन्दिनी रहती है, उधर जाने से बचते हैं। मैंने उन्हें व्यर्थ उसे डांट बताते देखा है।

तब मैं क्यों इतनी घबरा रही हूं ? तुम स्त्री हो, इसे समझती हो। यदि कुन्दनन्दिनी उनकी आंखों में साधारण होती, तो क्या, वह उसकी ओर न देखते ? उसका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण करने में यत्नशील होते ? कुन्दनन्दिनी के सामने वह अपराधी से लगते हैं। मैं उनकी छाया-मात्र देखकर उनके मन की बात कह सकती हूं, वह मुझसे क्या छिपाएंगे ? कभी-कभी लापरवाही से उनकी आंखें इधर-उधर घूम जाती हैं। वह किसकी खोज में होते हैं, क्या मैं नहीं जानती ? देखते ही व्यथित होकर निगाहें फेर लेते हैं। क्यों, क्या मैं नहीं समझती ? किसकी आवाज सुनने के लिए वह भोजन करते-करते ग्रास हाथ में लिए कान खड़े करते हैं, क्या मैं नहीं समझती ? हाथ का ग्रास हाथ में रहता है, मुह में क्या डालते, क्या डाल लेते हैं, यह सब क्यों ? कुन्द की आवाज कान में आते ही कभी जल्दी-जल्दी भोजन करने लगते हैं, यह सब क्यों? मेरे प्रसन्नवदन इस समय इतने अन्यमनस्क क्यों रहते हैं ? कुछ कहने पर उसे न सुनकर उत्तर दे बैठते हैं 'हूं' ! यदि मैं क्रोध में आकर कहती हूं, 'मैं मर जाऊं', तो वह बिना सुने ही कह बैठते हैं 'हूं'। एक दिन मुहल्ले की बुढ़िया कुन्द की चर्चा कर रही थी। मैंने आड़ से देखा कि तुम्हारे भाई की आंखों में आंसू आ गए थे।

इधर एक नई दासी रखी है। उसका नाम कुमुद है। वह उसे कुमुद के नाम से बुलाने के बजाय कुन्द कह बैठते हैं और फिर लज्जित होते हैं।

मैं नहीं कह सकती कि वह मेरा अनादर करते हैं, बल्कि पहिले से अधिक यत्न से आदर करते हैं। इसका कारण भी मैं समझती हूं। वह अपने मन में अपराधी हैं, परन्तु मेरे लिए अब उनके मन में स्थान नहीं है। यत्न और चीज है और प्रेम और चीज़ है।

एक मजाक की बात और लो। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर नाम के एक कलकत्ते में बड़े पण्डित हैं। वह विधवा-विवाह कराते हैं। यदि वह पण्डित हैं, तो मूर्ख कौन है? आजकल भट्टाचार्य के आने पर इसी पर तर्क-वितर्क चलता है। उस दिन वह न्याय-शास्त्री विधवा-विवाह पर तर्क करके बाबू से पाठशाला की मरम्मत के लिए दस रुपये ले गए।

अपने दुःख की चर्चा छेड़कर मैंने तुम्हें बहुत देर परेशान किया। तुम रुष्ट होगी, परन्तु क्या करूं बहिन ! तुमसे अपने मन का दुःख न कहकर और किससे कहूं ? मेरी बातें अब भी खत्म नहीं हुईं, परन्तु तुम्हारा मुंह देखकर आज मैं शान्त हुई। ये बातें किसी से न कहना, मेरे माथे की कसम। अपने पति को यह पत्र न दिखाना।

क्या तुम यहां न आओगी ? एक बार आओ, तुम्हें पाने पर मेरा बहुत क्लेश दूर होगा।

सब समाचार शीघ्र लिखना।

एक बात और, पाप को विदा करने से ही जान बचेगी। कहां विदा करूं ? क्या तुम ले सकती हो उसे ? या डरती हो तुम भी ?'

कमल ने उत्तर दिया, 'तुम पागल हो गई हो, नहीं तो तुम पति के हृदय पर अविश्वास क्यों करतीं ? स्वामी के प्रति अपने विश्वास को गंवाओ नहीं और यदि विश्वास नहीं रख सकतीं तो तालाब में डूबकर मर जाओ। स्वामी पर जिसका विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न रहा, उसके मरने में ही मंगल है।'

धीरे-धीरे नगेन्द्र का चरित्र बदलने लगा। सूर्यमुखी ने छिपकर अपने आंचल से आंसू पोंछे। सूर्यमुखी ने सोचा वह कमला की बात मानेगी। वह स्वामी पर अविश्वासी क्यों हो ? उनका चित्त अचल पर्वत है। मैं अपने को भ्रांत समझती हूं ?'

मकान में एक आंगन था। सूर्यमुखी ओट से ही सब बातें करती थीं। वह चिक के पीछे बैठती थीं। उसमें से सूर्यमुखी बातें कहलाती थीं। सूर्यमुखी ने डाक्टर से कहा, 'बाबू बीमार हैं, तुम दवा क्यों नहीं देते ?'

'मुझे मालूम नहीं, उनको क्या बीमारी है। मैंने तो बीमारी की कोई बात सुनी नहीं।'

'बाबू ने कुछ कहा नहीं ?'

'नहीं। क्या बीमारी है ?'

'क्या बीमारी है, इसे तुम जानोगे या मैं ? डाक्टर तुम हो, मैं नहीं।'

डाक्टर बोले, 'मैं जाकर पूछता हूं।' इतना कहकर डाक्टर जाने लगा तो सूर्यमुखी ने रोककर कहा, 'बाबू से कुछ न पूछना। स्वयं देखकर दवा देना।'

'जो आज्ञा, दवा की कोई कमी नहीं।' कहकर डाक्टर चला गया। उसने दवाखाने में जाकर थोड़ा सोडा, थोड़ी पोर्टवाइन, थोड़ा शर्बत फेरिम्यूरेटिस, कुछ अण्ड-बण्ड मिलाकर शीशी भर, लेबुल लगाकर दवा भेज दी। सूर्यमुखी दवा लेकर गई। नगेन्द्र ने हाथ में शीशी लेकर दूर फेंक दी।

सूर्यमुखी बोली, 'दवा न खाओ, तो अपनी बीमारी का हाल मुझसे कहो।'

'कैसी बीमारी ?' नगेन्द्र बोले।

'अपने शरीर को देखो, क्या दशा हो गई है ?'

यह कहकर सूर्यमुखी ने एक शीशा लाकर उनके सामने रख दिया। नगेन्द्र ने शीशा भी दूर फेंक दिया। वह चूर-चूर हो गया।

सूर्यमुखी की आंखों से आंसू बह चले। नगेन्द्र की आंखें लाल होने लगीं। उन्होंने एक नौकर को व्यर्थ मारा। मानो वह सूर्यमुखी को मार रहे थे। शीतल स्वभाव के नगेन्द्र अब बात-बात में गर्म हो जाते थे।

एक दिन रात्रि को नगेन्द्र अन्तःपुर में नहीं आए। सूर्यमुखी बैठी रहीं। बहुत रात बीत गई। नगेन्द्र बहुत रात गए आए। सूर्यमुखी ने देखा नगेन्द्र का चेहरा और आंखें लाल थीं। उन्होंने शराब पी थी। यह देखकर सूर्यमुखी आश्चर्यचकित रह गई।

फिर नित्य यही होने लगा। एक दिन सूर्यमुखी ने नगेन्द्र के पैर पकड़कर कहा, 'मेरे अनुरोध से आप इसे पीना छोड़ दें।'

नगेन्द्र बोले, 'इसमें क्या दोष है ?'

सूर्यमुखी बोलीं, 'यह तो मैं नहीं जानती कि क्या दोष है। जिसे तुम नहीं जानते, उसे मैं भी नहीं जानती। मेरा अनुरोध मात्र है।'

'सूर्यमुखी ! शराबी की श्रद्धा हो तो मेरी भी श्रद्धा करो, नहीं तो न करो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यमुखी ने अब नगेन्द्र के सामने आंसू न गिराने की प्रतिज्ञा की। उसने दीवानजी से कहला भेजा, 'माताजी से कहो, अब सब कुछ गया। कुछ भी शेष न बचेगा।'

'क्यों ?'

'बाबू कुछ देखते नहीं। कारिन्दे की जो इच्छा होती है, करता है। कारिन्दा मेरी बात भी नहीं सुनता। जिसका धन है, वही रखेंगे तो रहेगा।'

एक दिन तीन-चार हजार लोग नगेन्द्र की कचहरी में आकर बोले, 'दुहाई है हुजूर! कारिन्दे के अत्याचार से हम लोग न बचेंगे। उसने हमारा सर्वस्व ले लिया। आप न रखेंगे तो कोई रह न सकेगा।'

नगेन्द्र बोले, 'सबको भगा दो।'

हरदेव घोषाल ने नगेन्द्र को लिखा, 'तुम्हें क्या हो गया है ? तुम क्या कर रहे हो, मेरी समझ में नहीं आ रहा। तुम्हारी चिट्ठी नहीं मिलती। मिलती है तो जाने क्या अण्ड-बण्ड लिखते हो। तुम मुझ पर नाराज हो गए हो तो लिखते क्यों नहीं? मुकदमा हार गए हो। और कुछ न लिखो, तब भी यह तो सूचना दो कि तुम स्वस्थ हो।'

'मेरे उत्तर पर क्रोध न करना। मैं अधःपतन की ओर जा रहा हूं।' नगेन्द्र ने लिखा।

7

कमलमणि को सूर्यमुखी का एक और पत्र मिला। उसमें लिखा था, 'एक बार आओ! कमलमणि मेरी बहिन ! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा सुहृद और कोई नहीं है। एक बार अवश्य आओ।'

कमल पत्र पढ़कर अपने पति के पास गई। वह अन्तःपुर में बैठे आय-व्यय का हिसाब देख रहे थे।

कमलमणि पति के पास जाकर प्रणाम करके बोली, 'मेरा भी प्रणाम पहुंचे महाराजा!'

श्रीशचन्द्र हंसकर बोले, 'फिर खरगोश चोरी गया क्या ?'

'इस बार बहुत बड़ी चीज चोरी चली गई है।'

'कहां, क्या चोरी हो गई ?'

'गोविन्दपुर में चोरी हुई है। भय्या के सोने के डिब्बे में एक कानी कौड़ी थी, उसे कोई ले गया।'

'तुम्हारे भय्या की सोने की डिबिया तो सूर्यमुखी है। कानी कौड़ी क्या है ?'

'सूर्यमुखी की बुद्धि।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इसीसे लोग कहते हैं कि जो खेलता है, वह कानी कौड़ी से खेलता है। सूर्यमुखी ने उस कानी कौड़ी से ही तुम्हारे भाई को खरीद रखा था। कुछ तुम्हारी बुद्धि भी तो थी।' कमलमणि ने श्रीशचन्द्र का मुंह दबा दिया। छोड़ने पर वह बोले, 'तब कानी कौड़ी किसने चुराई ?'

'यह नहीं जानती, परन्तु उनका पत्र पढ़ने से जान पड़ा है कि वह खो गई है। नहीं तो भाभी ऐसा पत्र क्यों लिखतीं ?'

'मैं चिट्ठी देख सकता हूं ?' कमलमणि ने श्रीशचन्द्र के हाथ में सूर्यमुखी का पत्र देकर कहा, 'इसे पढ़ो। सूर्यमुखी ने तुमसे सब बातें कहने को मना किया है, परन्तु जब तक मैं तुमसे सब कुछ कह नहीं लूं, तब तक मेरा प्राण छटपटाता रहेगा। मुझे तो चक्कर आ रहा है।'

श्रीशचन्द्र ने पत्र लेकर कहा, 'जब तुम्हें मना किया है, तो मैं इस पत्र को न देखूंगा। बात क्या है, यह भी सुनना नहीं चाहता। अब यह बताओ कि क्या करना चाहिए ?'

'सूर्यमुखी की बुद्धि खो गई है। उसे कुछ बुद्धि चाहिए। बुद्धि देने वाला आदमी और कौन है ? बुद्धि जो कुछ भी है, वह सतीश बाबू में है। इसी से सतीश को गोविन्दपुर आने को भाभी ने लिखा है।'

'बुद्धिदाता तो बहुत उपयुक्त है। जो हो, अब मैं समझा कि तुम्हारा भाभी के घर पर निमंत्रण है। सतीश को जाना होगा तो कमलमणि भी जाएगी। यदि सूर्यमुखी की कानी कौड़ी न खो गई होती तो वह ऐसा क्यों लिखती ?'

'हमारा और तुम्हारा दोनों का निमंत्रण है।'

'मेरा निमंत्रण क्यों ?'

'क्या मैं अकेली जाऊंगी ? मेरे साथ लोटा-अंगोछी लेकर कौन जाएगा ?'

'यह तो सूर्यमुखी का अन्याय है। लोटा-अंगोछा ढोने के लिए यदि दामाद की आवश्यकता है तो मैं दो दिन के लिए एक ब्राह्मण दामाद ठीक कर देता हूं।'

पुस्तकालय 10228 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कमलमणि बहुत चिढ़ीं। उसने भौंहें चढ़ाकर श्रीश पर एक कटाक्ष मारा। श्रीशचन्द्र जिस कागज को लिख रहे थे, उसे फाड़कर हंसते हुए बोले, 'तब लड़ने क्यों आती हो ?'

'मेरी खुशी, मैं लड़ूंगी।'

'मेरी खुशी, मैं भी कहूंगा।'

कमलमणि ने श्रीश को बांहों में कस लिया। अगले दांतों से अधर को दबाकर छोटे से हाथ से थप्पड़ दिखाया।

उसे देखकर श्रीशचन्द्र ने कमलमणि के सिर का जूड़ा खोल दिया। कमलमणि ने श्रीशचन्द्र की दवात पीकदान में उंड़ेल दी।

श्रीशचन्द्र ने कदम बढ़ाकर कमलमणि के मुख का चुम्बन लिया। कमलमणि ने भी श्रीशचन्द्र का मुंह चूमा। यह देखकर सतीश को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह जानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि मुख-चुम्बन पर केवल उसका ही अधिकार था। उन लोगों की लपटा-झपटी देख वह खड़ा हो गया और दोनों के मुंह की ओर देखकर हंस पड़ा। यह हंसी कमलमणि के कानों को बहुत मधुर लगी। कमलमणि ने सतीश को गोद में लेकर चूमा। फिर श्रीशचन्द्र ने उसे कमल की गोद से छीनकर चूमा।

'तो क्या सचमुच तुम्हें गोविन्दपुर जाना पड़ेगा ? मैं अकेला कैसे रहूंगा ? श्रीशचन्द्र बोले।

'तुम्हें अकेले रखने का मुझे शौक नहीं है ? मैं भी चलूगी और तुम भी चलोगे।'

'मैं किस तरह जाऊं ? हम लोगों के तीसी खरीदने का यही समय है ! तुम अकेली ही हो आओ।'

'आओ सतीश, हम दोनों रोने बैठें।'

'तुम जाओ, मैं मना नहीं करता, परन्तु तीसी का मौसम छोड़कर मैं कैसे चलूं?'

कमलमणि मुंह फेरकर बुरा मान गई। फिर उसने कोई बात नहीं की।

श्रीशचन्द्र के कलम में कुछ स्याही थी। उन्होंने कलम से कमल के माथे पर एक टीका लगा दिया। कमल हंसकर बोली, 'मैं तुम्हें कितना चाहती हूं।' यह कह कमल ने श्रीशचन्द्र के गले में बांहें डालकर उनका मुख चूम लिया। इससे टीके की स्याई श्रीशचन्द्र के गाल पर लग गई।

इस प्रकार युद्ध में जय पाकर कमल बोली, 'अगर तुम सचमुच चल नहीं सकते तो मेरे जाने का प्रबन्ध करो।'

'कब लौटोगी ?'

'पूछते क्यों हो ? यदि तुम न चले, तो मैं कितने दिन रह सकती हूं ?'

श्रीशचन्द्र ने कमलमणि को गोविन्दपुर भेज दिया।

गोविन्दपुर के अंधकार में मानो एक फूल खिला। कमलमणि को देखकर सूर्यमुखी के आंसू सूख गये। कमलमणि घर में पैर रखते ही सूर्यमुखी की चोटी करने बैठ गई। कितने ही दिन से सूर्यमुखी ने केश रचना नहीं की थी। कमलमणि बोली, 'दो फूल गूंथ दूं।' सूर्यमुखी ने कहा, 'नहीं-नहीं' परन्तु कमलमणि ने चुपके से दो फूल लगाकर उनके बाल कर दिए। फिर बोली, 'देखती हूं भाभी ! बुढ़ापे में भी माथे में फूल गूंथती हैं।' नगेन्द्र को देखकर कमलमणि ने प्रणाम किया। नगेन्द्र बोले, 'कमल !' कमल सिर झुकाकर बोली, 'लड़का पकड़ ले आया।' नगेन्द्र ने कहा, 'ठीक है, मारो पाजी को।' यह कहकर उन्होंने लड़के को गोद में लेकर उसका चुम्बन लिया। लड़के ने उनकी मूंछें पकड़कर खींची।

कुन्दनन्दिनी से कमलमणि बोली, 'अरे अच्छी है न कुन्द।'

वह चुपचाप रह गई। कुछ सोचकर बोली, 'अच्छी हूं।'

'अच्छी हूं बहिन, मुझे बहिन कह, नहीं तो सोते समय मैं तेरे बालों को आग लगा दूंगी।'

कुन्द ने बहिन कहना आरम्भ किया। कलकत्ते में कुन्द कमल को कुछ न कहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। बहुत बोलती भी नहीं थी, परन्तु कमल का जैसा स्वभाव था, इससे वह उसे प्रेम करने लगी थी। बीच में भेंट न होने से कुछ भूल गई थी। अब कमल के स्वभाव-गुण से वह प्रेम नवीन होकर बढ़ने लगा।

दो-चार दिन बाद कमलमणि पति के घर जाने का उद्योग करने लगी तो सूर्यमुखी बोली, 'दो दिन ठहरो। तुम्हारे जाने से मैं न बचूंगी।'

कमल बोली, 'तुम्हारा काम किए बिना न जाऊंगी।'

सूर्यमुखी ने कहा, 'मेरा क्या काम करोगी ?'

'तुम्हारा कण्टकोद्धार।'

कुन्दनन्दिनी कमल के जाने की बात सुन अपनी कोठरी में छिपकर रोई। कमलमणि पीछे-पीछे गई ! कुन्दननन्दिनी तकिए पर सिर रखकर रो रही थी। कमलमणि उसकी चोटी करने बैठ गई।

चोटी करना कमल का रोग था। कमल ने उसके सिर को गोद में रख लिया। अपने आंचल से उसका मुंह पोंछ दिया। यह सब काम समाप्त करके उसने पूछा, 'कुन्द, रोती क्यों है ?'

'तुम जाती क्यों हो ?'

'इससे रोती क्यों है ?' कमलमणि हंसकर बोली।

'तुम मुझसे बहुत प्रेम करती हो न !'

'क्या और कोई तुम्हें नहीं चाहता ?'

कुन्द चुप रह गई।

'कौन नहीं चाहता ? गृहिणी नहीं चाहती ? मुझसे न छिपाना।'

कुन्द चुप रही।

'भय्या नहीं चाहते ?'

कुन्द फिर भी चुप रही।

'यदि मैं तुम्हें चाहती हूं और तुम भी मुझे चाहती हो तो मेरे साथ क्यों नहीं चलतीं?'

कुन्द फिर भी कुछ न बोली। कमल बोली, 'चलोगी ?'

कुन्द ने सिर हिलाकर कहा, 'चलूंगी नहीं।'

कमल का मुख गम्भीर हो गया। उसने स्नेह के साथ कुन्दनन्दिनी का सिर अपनी गोद में रखकर कहा, 'कुन्द, सच कहेगी ?'

'क्या ?'

कमल ने कहा, 'जो मैं पूछूंगी ? मैं तेरी बहिन हूं। मुझसे छिपाना नहीं कोई बात। मैं किसी से कहूंगी नहीं।' कमल ने मन में कहा, 'यदि कहूंगी तो श्रीशबाबू के कान में।'

'क्या बताऊं ?'

'तुम भय्या से प्रेम करती हो न ?'

कुन्द ने कोई उत्तर न दिया। वह कमलमणि के हृदय पर मुंह रखकर रोने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं समझ गई, तू मर चुकी। मर, कोई हानि नहीं। तेरे साथ बहुतेरे और भी मरेंगे।'

कुन्दनन्दिनी ने सिर उठाकर कमल के मुंह की ओर देखा। कमलमणि उसके प्रश्न को समझ गई। वह बोली, 'मुंहजली, तूने आंखें फोड़ ली है, परन्तु फोड़नी नहीं आई।' मुंह की बात मुंह में रही, तब तक कुन्द का सिर फिर कमलमणि की गोद में आ पड़ा। कुन्दनन्दिनी के आंसुओं से कमलमणि की गोद भर आई। कुन्दनन्दिनी बहुत देर तक रोती रही।

कमल जानती थी कि प्रेम किसे कहते हैं। वह कुन्दनन्दिनी के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी हुई। कुन्दनन्दिनी के आंसुओं को पोंछकर उसने कहा, 'कुन्द !'

कुन्द ने फिर सिर उठाकर कमल की ओर देखा।

'मेरे साथ चलो।'

कुन्द की आंखों से फिर आंसू गिरने लगे।

कमल ने कहा, 'नहीं तो न सही। सोने का संसार खाक हो गया।'

कुन्द रोने लगी।

कमल, 'चलेगी ? खूब सोच-समझ के देख ले।'

कुन्दनन्दिनी आंखें पोंछकर बोली, 'चलूंगी।'

कमल समझ गई कि कुन्दनन्दिनी दूसरे के मंगल-मंदिर में अपने प्राणों की बलि देगी। नगेन्द्र के मंगल के लिए, सूर्यमुखी के मंगल के लिए उसने उन्हें भूलना स्वीकार किया। इसीलिए इतनी देर लगी। कमल समझ गई कि कुन्दनन्दिनी समझ न सकी थी कि उसका मंगल क्या है।

तभी हरिदासी वैष्णवी ने आकर गाना गाया।

उस दिन सूर्यमुखी उपस्थित थीं। उन्होंने कमल को गाना सुनने के लिए बुला भेजा। कमल कुन्द को साथ लेकर गाना सुनने आई।

कमलमणि बोली, 'इसने प्रेम-राग गाया।'

कमल ने पूछा, 'क्या तुम और कोई गाना नहीं जानतीं ?'

वैष्णवी ने पूछा, 'क्यों ?'

कमल बोली, 'क्यों ? जरा बबूल का एक कांटा तेरे गड़ाकर दिखाती हूं कितना सुख होता है।'

सूर्यमुखी हरिदासी से बोली, 'ये गाने हम लोगों को अच्छे नहीं लगते। गृहस्थ के घर में अच्छे गाने गाओ।'

हरिदासी बोली, 'अच्छा !' कहकर उसने दूसरा गाना गाया।

कमल भौंहें सिकोड़कर बोली, 'गृहिणीजी, अपनी वैष्णवी का गाना तुम सुनो, मैं चली।' यह कहकर कमल चली गई। सूर्यमुखी भी उठ गई, केवल कुन्द रह गई। वह कुछ और ही सोच रही थी। वह जहां थी, वहीं रह गई। हरिदासी ने फिर गाना नहीं गाया। वह इधर-उधर की बातें करने लगी। कुन्द ने कुछ सुनीं, कुछ नहीं सुनीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यमुखी दूर से वह सब देख रही थीं। जब उन दोनों में गहरे संयोग के साथ बातचीत होने लगीं तो सूर्यमुखी ने कमल को बुलाकर दिखाया। कमल बोली, 'इससे क्या है ? बातें करती हैं तो करें। औरत ही तो है, कोई पुरुष तो है नहीं।'

'इसका क्या ठिकाना कि वह स्त्री है या पुरुष ?'

कमल ने विस्मय से कहा, 'यह कैसी बात है ?'

'मुझे तो लगता है कि यह कोई पुरुष है। इसे मैं अभी समझ लेती हूं, किन्तु कुन्द कैसी पापिष्ठा है....।'

'ठहरो, मैं बबूल की एक डाल ले आती हूं। पाजी को कांटा चुभोने में आनन्द आएगा।' यह कहकर कमल बबूल की डाल खोजने लगी। राह में उसे सतीश मिल गया और वह सब कुछ भूल गई।

सूर्यमुखी ने हरिदासी को बुलाया।

नगेन्द्र और उनके पिता का विशेष प्रयत्न रहता था कि घर की परिचारिकाएं अच्छे चरित्र की हों। इसीलिए अधिक वेतन देकर कुछ अच्छे घर की स्त्रियों को दायित्व में नियुक्त किया गया था।

हीरा की आयु बीस वर्ष की थी। आयु में वह अन्य दासियों से छोटी थी, परन्तु बुद्धि के प्रभाव से और चरित्र-गुण से वह अन्य दासियों में श्रेष्ठा मानी जाती थी।

हीरा बाल-विधवा थी। हीरा के चरित्र में, किसीने कोई कलंक नहीं सुना था। हीरा जुबान की बहुत तेज थी। वह सधवा की तरह रहती थी, शृंगारप्रिय थी।

हीरा श्यामांगी और पद्म-लोचना थी। कद में नाटी, मुख मानो मेघों से ढका चांद और बाल मानो सांप लटक रहे थे।

सूर्यमुखी ने हीरा को बुलाकर कहा, 'यह वैष्णवी कौन है....पहिचानती हो ?'

'नहीं। मैं तो कभी गांव के बाहर नहीं जाती। मैं वैष्णवी भिखारिन को क्या जानूं? ठाकुरबाड़ी की औरतों को बुलाकर पूछो न ! करुणो या शीतला जानती होंगी।'

'यह ठाकुरबाड़ी की वैष्णवी नहीं है। तुझे जानना होगा कि यह वैष्णवी कौन है। यह वैष्णवी कौन है, इसका मकान कहां है और कुन्द के साथ इसका इतना प्रेम क्यों है ? सब बातें यदि ठीक तरह से जानकर बता सकेगी तो तुझे नई बनारसी साड़ी पहिनने को दूंगी।'

नई बनारसी साड़ी की बात सुनकर उसकी छाती चौड़ी हो गई। उसने पूछा, 'कब पता लगाने जाना होगा ?'

'जब तेरी खुशी हो, किन्तु उसके पीछे-पीछे न जाने से फिर पता न पाएगी।'

'अच्छा।'

वैष्णवी कुछ समझ न सकी। और कोई भी कुछ जानने न पाया।

तब तक कमल लौट आई। सूर्यमुखी ने अपनी सलाह की सब बातें उससे कहीं। यह सुनकर कमल खुश हुई। उसने हीरा से कहा, 'अगर हो सके तो पाजी को बबूल के कांटे चुभो दे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सब करूंगी, किन्तु केवल बनारसी साड़ी ही न लूंगी।'

'और क्या लेगी ?' सूर्यमुखी ने पूछा।

'यह एक दूल्हा चाहती है। इसका विवाह करा दो।'

'अच्छा यही होगा। चाहे तो कमल से सम्बन्ध कर ले।'

'यह फिर देखा जाएगा। किन्तु मेरे मन के मुताबिक घराने में एक घर है।'

'वह कौन-सा ?'

'यम का घर।'

8

उस रात्रि में कुन्दनन्दिनी बागीचे की बावली के किनारे बैठी थी। बावली के पीछे एक बाग था।

कुन्दनन्दिनी अंधेरे में अकेली बैठी सरोवर में प्रतिबिम्बित तारों से आच्छादित आकाश का प्रतिबिम्ब देख रही थी। मौलिश्री के पत्तों में फुर-फुर शब्द हो रहा था। खिले हुए मौलिश्री के फूलों की सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी। मौलिश्री के फूल चुपचाप कुन्दनन्दिनी के बदन पर चारों ओर झड़ रहे थे। पीछे से चमेली, जूही और कामिनी की झाड़ियों से सुगन्धि आ रही थी। चारों ओर अंधकार में जुगनुओं के झुण्ड साफ पानी के ऊपर चमकते और बुझते फिर रहे थे। मेघ के टुकड़े आकाश में रास्ता भूलकर भटक रहे थे। कुन्दनन्दिनी सोच रही थी, 'सभी मेरे आगे मरे। मां मरी, भैया मरे, बाबा मरे, मैं क्यों नहीं मरी ? नहीं मरी तो यहां क्यों आई ? क्या भले आदमी मरकर तारे बनते हैं ? पिता की परलोक-यात्रा की रात को कुन्द ने जो स्वप्न देखा था, उसकी कुन्द को याद न रही थी। अब उसका आभास-मात्र मन में आया। उसे याद आया कि उसने अपनी माता को स्वप्न में देखा था। उसकी मां उसे तारों में ले जाने को कह रही थी। कुन्द सोचने लगी, 'अच्छा क्या मनुष्य मरकर तारा बनता है ? तब तो माता-पिता सभी नक्षत्र हैं ?' वे लोग कौन-से तारे हैं, यह मैं कैसे जानूं ? चाहे जो हों, मुझे तो वे देख ही रहे होंगे, परन्तु रोने से क्या होगा? मेरे भाग्य में तो रोना ही है। कैसे मरूं ? पानी में डूबकर ! यहां तो कोई नहीं है, कोई सुन भी न सकेगा। जरा उनका नाम जबान पर ले आऊं ? न....नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र ! नगेन्द्र, नगेन्द्र !! अजी ओ मेरे नगेन्द्र !!! मैं कौन होती हूं तुम्हारी ? सूर्यमुखी के नगेन्द्र। किसका नाम लेती हूं, किन्तु क्या हुआ ? यदि सूर्यमुखी के साथ उनका विवाह न होकर मेरे साथ होता ! दूर हो ! डूब के मरूंगी। अच्छा मानो अभी डूबी, तब सभी लोग सुनेंगे; सुनकर, नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र ! फिर कहती हूं नगेन्द्र, नगेन्द्र, नगेन्द्र ! ....नगेन्द्र सुनकर क्या कहेंगे ? डूब के मर न सकूंगी। विष खाके तो मर सकती हूं। कौन-सा विष खाऊं ? विष कहां पाऊंगी ? कौन मुझे

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष लाकर देगा ? मर सकती हूं, परन्तु आज नहीं। शायद वह भी मुझे चाहते हों।' कुन्द यह कहते-कहते चुप हो गई। 'अच्छा, क्या यह बात सच है ? किन्तु कमल को कैसे मालूम हुआ ? मैं पूछ न सकी। वह मुझे चाहते हैं ? क्यों चाहते हैं ? क्या देखकर चाहते हैं, रूप या गुण ? रूप देखूं ?' यह कहकर वह स्वच्छ सरोवर में अपना प्रतिबिम्ब देखने गई। फिर वहीं जाकर बैठ गई। 'मुझसे सूर्यमुखी सुन्दर है। मुझसे तो हरिमणि भी सुन्दर है।' वह रो पड़ी।

'मुझसे हीरा भी सुन्दर है। क्या वह सचमुच सुन्दरी है ? सांवली होने से क्या होता है ? उसका चेहरा मुझसे सुन्दर है। कलकत्ता जाना न हो सकेगा। वहां जा न सकूंगी। देखने भी न पाऊंगी, मैं जा न सकूंगी, जा न सकूंगी, कदापि न जा सकूंगी। तब, न जाकर ही क्या करूंगी ? यदि कमल की बात सत्य है तो जिसने मेरे लिए इतना किया है, उसका मैं सर्वनाश करूंगी। मैं समझती हूं, सूर्यमुखी के मन में कुछ आया है। मुझे जाना ही पड़ेगा। इसी से डूब मरती हूं। मरूंगी और अवश्य मरूंगी।'

कुन्द आंखों पर हाथ रखकर रोने लगी। तभी उसे स्वप्न का वृत्तान्त स्पष्ट दिखाई देने लगा। कुन्द उठकर खड़ी हो गई। 'मैं सब भूल गई। क्यों भूल गई ? मां ने मुझे बताया था। उन्होंने मुझे अपने साथ चलने को कहा था। मैंने उनकी बात क्यों नहीं मानी ? मैं क्यों नहीं गई ? मैं क्यों न मरी ? मैं देर क्यों कर रही हूं ? मैं मरती क्यों नहीं हूं ? मैं अभी मरूंगी।' यह सोचकर कुन्द धीरे-धीरे सरोवर की सीढ़ियां उतरने लगी। उसका शरीर कांप रहा था। फिर भी वह माता की आज्ञा का पालन करने के लिए धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। तभी पीछे से किसी ने उसकी पीठ पर उंगली छुआकर कहा, 'कुन्द !' कुन्द ने अंधकार में देखकर पहिचान लिया, नगेन्द्र थे। वह बोले, 'कुन्द ! तू उस दिन क्यों न मरी ?'

कुन्द मन में सोच रही थी, 'नगेन्द्र ! क्या यही तुम्हारा सुचरित्र है ? यही तुम्हारी शिक्षा है ? यही सूर्यमुखी के प्रणय का प्रतिफल है ? छिः-छिः ! तुम चोर हो ! चोर से भी हीन ? सूर्यमुखी ने तुम्हें अपना सर्वस्व दिया है। तुम चोर बनकर क्या चुराने आए हो ? नगेन्द्र ! तुम्हारा मरना ही अच्छा है। यदि साहस हो तो तुम स्वयं जाकर डूब मरो।

'परन्तु कुन्दनन्दिनी ! तुम चोर के स्पर्श से कांपी क्यों ? चोर की बात सुनकर तुम्हारे बदन में रोमांच क्यों हो उठा ? पुष्करणी का पानी स्वच्छ है। उसमें तारे कांप रहे हैं। डूबेगी तो डूब क्यों नहीं मरती ? शायद तू मरना नहीं चाहती। !'

'तुम कुन्द कलकत्ता जाओगी ?'

कुन्द ने कुछ न कहा। उसने आंखें पोंछी, बोली नहीं।

'कुन्द, क्या तुम इच्छापूर्वक जा रही हो ?'

'इच्छापूर्वक ! हरि ! हरि !' कुन्द ने फिर आंखें पोंछीं। कहा फिर भी कुछ नहीं।

'कुन्द ! रोती क्यों हो ?' कुन्द अब रो पड़ी। नगेन्द्र कहने लगे, 'सुनो कुन्द! मैंने इतने दिनों तक बहुत कष्ट सहे, परन्तु अब सहा नहीं जाता। नहीं कह सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि किस कष्ट से जी रहा हूं। अपने कष्ट को भुलाने के लिए मैं शराब पीता हूं। अब नहीं सहा जाता। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता कुन्द '! विधवा-विवाह चल रहा है। मैं तुमसे विवाह करूंगा, परन्तु तुम्हारे कहने पर ही विवाह होगा।'

'नहीं, यह नहीं होगा।'

'क्यों कुन्द ? क्या विधवा-विवाह शास्त्रसंगत नहीं है ?'

कुन्द बोली, 'नहीं।'

'नहीं क्यों ? बोलो, बोलो....बोलो ! गृहिणी बनोगी या नहीं ? मुझसे प्रेम करोगी या नहीं ?'

'नहीं।'

नगेन्द्र ने सहस्र मुख से अपरिमित प्रेमपूर्ण बातें कीं, परन्तु कुन्द ने 'नहीं' ही कहा।

कुन्द आकाश में देखकर बोली, 'नहीं। विधवा-विवाह शास्त्रों में हो, तब भी नहीं। कुन्द डूब कर मरी क्यों नहीं ?'

× × ×

हरिदासी उपवन-गृह में जाकर एकाएक देवेन्द्र बाबू बन गई।

देवेन्द्र ने हुक्का पीना प्रारम्भ किया। उसके मुंह से धुआं उड़ने लगा। शराब को पेट में डाला। वह माथे पर चढ़ने लगी। दो-चार गिलास के बाद बोलना आरम्भ किया, नौकर लोग 'गुरु महाशय, गुरु महाशय !' कहकर उधर आए।

तभी सुरेन्द्र आकर देवेन्द्र के पास बैठे और उनकी कुशल पूछकर बोले, 'आज तुम फिर कहीं गए थे ?'

'तुम्हारे कान में खबर पहुंच गई ?'

'यही तुम्हारा भ्रम है देवेन्द्र ! तुम समझते हो कि तुम कुछ छिपाकर करते हो और कोई जान नहीं सकता, परन्तु मुहल्ले के सभी लोग इसे जानते हैं।'

'मैं किसी से छिपाना नहीं चाहता। किससे छिपाऊं ?'

'इसे तुम अपनी बहादुरी समझते हो ? तुम्हें यदि कुछ लज्जा होती तो हमें कुछ भरोसा होता। तुम्हें शर्म होती तो वैष्णवी बनकर गांव-गांव ठोकरें न खाते।'

'कैसे वैष्णवी भाई साहब ! माथा चक्कर तो नहीं खा गया है आपका ?'

'मैंने वह काला मुंह नहीं देखा। देखता तो चाबुक से सब वैष्णवीपन भुला देता।' फिर देवेन्द्र के हाथ से गिलास लेकर सुरेन्द्र बोले, 'अभी जरा होश-हवास रहने दो। मेरी बातें सुनकर तब पीना।'

'आज बहुत क्रुद्ध हो। हेमवती की हवा तो नहीं लग गई ?'

सुरेन्द्र बाबू बोले, 'तुम और भी सर्वनाश करने के लिए अब वैष्णवी बने हो।'

'क्या तुम नहीं जानते, तुम भूल गए कि तारा मास्टर का विवाह एक देव-कन्या से हुआ था ? इस समय वह विधवा होकर उस दत्तबाड़ी में रहती है। उसे देखने

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था।'

'क्या इतनी दुर्वृत्ति से तृप्ति नहीं हुई जो उस अनाथ लड़की का विनाश करने गए थे ? देवेन्द्र, तुम इतने बड़े पापिष्ठ, इतने नृशंस, इतने अत्याचारी हो कि अब हम तुम्हारा सहवास न कर सकेंगे।'

सुरेन्द्र ने इतनी जलन से बातें कहीं कि देवेन्द्र चुप हो गए। वह गंभीरतापूर्वक बोले, 'तुम मुझ पर क्रोध न करो। मेरा चित्त मेरे वश में नहीं है। मैं सब कुछ त्याग कर सकता हूं, परन्तु उसकी आशा नहीं त्याग सकता। मैंने जिस दिन उसे देखा था, उसी दिन से मैं उसके सौन्दर्य पर लट्टू हो गया था। मेरी आंखों ने इतना सौन्दर्य और कहीं नहीं देखा। तभी से मैं उसे देखने के लिए कितने प्रयत्न करता रहा हूं, कह नहीं सकता। जब कुछ कर नहीं सका, तो मैंने वैष्णवी का रूप धारण किया। तुम कोई आशंका न करो, वह स्त्री बड़ी साध्वी है।'

'तब जाते क्यों हो वहां ?'

'केवल उसे देखने के लिए। उसे देख, उससे बातें कर, उसे गाना सुनाकर मुझे जैसी शांति मिलती है, उसे कह नहीं सकता।'

'मैं तुमसे सच कहता हूं कि यदि तुम इस दुष्प्रवृत्ति का त्याग न करोगे तो तुम्हारे साथ मेरी बातचीत आज से बन्द। मैं तुम्हारा शत्रु हो जाऊंगा।'

'तुम ही मेरे एकमात्र प्रिय हो। मैं अपना सब कुछ छोड़कर भी तुम्हें नहीं छोड़ सकता, परन्तु यदि तुम मुझे छोड़ना चाहो, तो वह भी स्वीकार है। मैं कुन्दनन्दिनी की आशा नहीं छोड़ सकता।'

'तब ऐसा ही हो। तुमसे मेरी यही अंतिम भेंट है।' यह कहकर सुरेन्द्र चले गए। देवेन्द्र एकमात्र बंधु के विच्छेद से बहुत दुःखी हो, कुछ देर उदास बैठे रहे। फिर बोले, 'दूर हो। संसार में कौन किसका है ? मैं ही अपना हूं।' यह कहकर उन्होंने गिलास भरकर शराब पी। उनका चित्त प्रसन्न हो उठा। वह मस्त होकर गा उठे।

सब लोग चले गए। देवेन्द्र नौका-शून्य नदी के बीच अकेले बैठे तरंगों में डुबकियां लगा रहे थे। आकाश में चांद की चांदनी थी। तभी खिड़की के पास कुछ खड़खड़ाहट हुई। देवेन्द्र बोले, 'कौन झिलमिली उठा रहा है ?' उन्होंने खिड़की से देखा, एक स्त्री भागी जा रही थी। स्त्री को भागती देख देवेन्द्र खिड़की खोलकर उधर कूदकर उसके पीछे लड़खड़ाते हुए चले।

स्त्री भागना चाहती तो भाग जाती, परन्तु इच्छापूर्वक नहीं भागी। देवेन्द्र ने उसे पकड़ा, परन्तु अंधकार में पहिचान नहीं सके। शराब की झोंक में बोले, 'वाह वा!' वह उसे कमरे के अन्दर खींचकर ले आए और बोले, 'तुम किसकी औरत हो ? आज तुम लौट जाओ। अमावस्या को पूड़ी-हलवा से पूजा करूंगा। आज थोड़ी ब्राण्डी पिए जाओ।' यह कहकर उन्होंने उस औरत को कमरे में बैठाकर उसके हाथ में शराब का गिलास दे दिया।

वह स्त्री उसे हाथ में लिए बैठी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह रोशनी उठाकर स्त्री के मुंह के पास ले गया। बोला, 'तुम कौन हो जी? तुम तो पहिचानी-पहिचानी-सी जान पड़ती हो। कहीं देखा है तुम्हें।'

'मैं हीरा हूं।'

'हीरा !' कहकर वह उछल पड़े। फिर हीरा को प्रणाम कर हाथ में गिलास लिए उसकी स्तुति करके पूछा, 'तुम्हारा कैसे आना हुआ, क्या मैं जान सकता हूं ?'

हीरा समझ गई थी कि हरिदासी वैष्णवी और देवेन्द्र बाबू एक ही हैं, किन्तु देवेन्द्र वैष्णवी के वेश में दत्त-घराने में क्यों आते-जाते हैं, यह जानना सहज नहीं था। हीरा बड़ा दुःसाहस करके इस समय देवेन्द्र के घर आई थी। वह चुपचाप बाग में प्रवेश कर खिड़की के किनारे खड़ी देवेन्द्र की बातचीत सुन रही थी। सुरेन्द्र के साथ देवेन्द्र की बातें सुन हीरा अपना कार्य सिद्ध कर लौट रही थी। जाते समय असावधानी से झिलमिली टूट गई। इसीसे बखेड़ा खड़ा हो गया।

हीरा भागने के लिए व्यस्त थी। देवेन्द्र ने उसके हाथ में फिर शराब का गिलास दिया। हीरा बोली, 'आप पीजिए।' कहते ही देवेन्द्र ने उसे गले के नीचे उतार लिया। उस गिलास से देवेन्द्र की शराब की मात्रा पूरी हो गई। दो-एक बार लुढ़ककर देवेन्द्र सो गए तो वह उठकर भागी।

उस रात हीरा दत्त-घराने में नहीं गई। वह अपने घर जाकर सो गई। दूसरे दिन सवेरे जाकर सूर्यमुखी को देवेन्द्र का समाचार दिया। 'देवेन्द्र कुन्द के लिए वैष्णवी बनकर आता है' हीरा ने यह न कहा कि कुन्द निर्दोष है। सूर्यमुखी भी यह नहीं समझी। सूर्यमुखी ने देखा था कि कुन्द वैष्णवी के साथ चुपके-चुपके बातें करती थी। इसलिए सूर्यमुखी ने उसे दोषी माना। हीरा की बातें सुन सूर्यमुखी के नेत्र लाल हो गए। कमल ने भी सब सुना। कुन्द को सूर्यमुखी ने बुलाया। उसके आने पर बोली, 'कुन्द, हम लोग पहिचान गए हैं कि हरिदासी वैष्णवी कौन है। हम लोग यह भी जान गए हैं कि वह तेरा कौन है। मैं तुझे भी पहिचान गई हूं। हम लोग ऐसी स्त्रियों को घर में स्थान नहीं देते। तू, अभी घर से निकल जा, नहीं तो हीरा तुझे झाडू मारकर निकाल देगी।'

कुन्द का शरीर कांपने लगा। कमल ने देखा कि वह गिरना चाहती थी। कमल उसे पकड़कर सोने की कोठरी में ले गई। उसने धीरज से कहा, 'हीरा जो कहती है, कहने दे। मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं है।'

9

आधी रात को घर के सब लोगों के सो जाने पर कुन्दनन्दिनी बाहर निकली। एक ही वस्त्र से उसने सूर्यमुखी का घर त्याग दिया। रात बहुत अंधेरी थी। कुछ-कुछ बादल

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी थे। रास्ता अज्ञात था।

कुन्दनन्दिनी की इच्छा थी कि वह एक बार नगेन्द्रदत्त को उनकी कोठरी में खिड़की की राह से देख ले। एक बार उन्हें देखने से उसकी छाती ठण्डी हो जाएगी। वह उनका शयन-गृह जानती थी।

कुन्दनन्दिनी मुग्ध नेत्रों से उस खिड़की से आते हुए प्रकाश को देखने लगी। वह वहां जा न सकी। उनके शयनागार के सामने कुछ आम के पेड़ थे। कुन्दनन्दिनी उन्हीं के नीचे खिड़की की ओर मुंह करके बैठ गई। रात अंधेरी थी। चारों ओर अंधकार था। वृक्ष-वृक्ष पर जुगनुओं की चमक होती और बुझती थी। आकाश में काले बादल दौड़ रहे थे। केवल दो-एक तारे कभी मेघ में छिपते और कभी चमकने लगते थे। वायु के संचार से खिड़कियां-दरवाजे दीवार में टकराकर आवाज कर रहे थे। उल्लू मकान की चोटी पर बैठकर बोल रहा था। कहीं-कहीं कुत्ते बहुत तेजी से दौड़ते थे।

धीरे-धीरे एक खिड़की का शीशा खुला। एक मनुष्य उस प्रकाश में दिखाई दिया। वह नगेन्द्र ही था। यदि तुम उस झाड़ के नीचे के छोटे कुन्द-कुमुद को देखते ! यदि तुम खिड़की से उसके हृदय के शब्द को सुन पाते नगेन्द्र ! तुम प्रदीप की ओर पीठ किए खड़े हो, एक बार प्रदीप के सामने खड़े हो, कुन्द बड़ी दुःखियारी है। खड़े रहो, ऐसा होने से उसे उस सरोवर के स्वच्छ जल में तारों की झिलमिलाहट याद न आएगी।'

उल्लू बोला, 'तुम हट जाओ, कुन्दनन्दिनी डरेगी। देखो बिजली ! तुम भी हटो, कुन्दनन्दिनी डरेगी। वह देखो, फिर काले बादल पवन पर सवारी कर दौड़ रहे हैं। आंधी-पानी आएगा। कुन्द को अब कौन आश्रय देगा ?'

'तुमने खिड़की खोल रखी है। झुण्ड-के-झुण्ड पतंगें आकर तुम्हारे कमरे में प्रवेश करेंगे। कुन्द ! पतंग जल मरता है। कुन्द वही चाहती है। सोचती है, वह क्यों न जली, मरी क्यों नहीं ?'

नगेन्द्र शीशा बंद करके हट गए। 'निर्दयी ! इसमें तुम्हारी क्या हानि थी ? नहीं, तुम्हें जगने की आवश्यकता नहीं, सोओ। कुन्दनन्दिनी यही चाहती है।'

सहसा खिड़की में अंधेरा हुआ। आंखों के आंसू पोंछकर कुन्दनन्दिनी उठी। उसे जो राह मिली, उसी पर चली। कहां चली ? ताड़-वृक्ष ने पूछा, 'कहां जाती हो ?' आम्रवृक्ष ने पूछा, 'कहां जाती हो ?' उल्लू ने कहा, 'कहां जाती हो ?' खिड़कियां कहने लगीं, 'जाती हो तो जाओ, मैं अब नगेन्द्र को न दिखाऊंगी।' फिर भी कुन्दनन्दिनी फिर-फिरकर देखती चली गई।

कुन्द चलती रही। आकाश में बादल दौड़ रहे थे। बिजली हंसी, फिर हंसी ! हवा चली, मेघ गर्जा, कुन्द कहां जा रही थी ?

आंधी उठी। पहिले शब्द हुआ। फिर धूल उड़ी। वृक्षों के पत्ते तोड़ती हुई हवा आई। फिर वृष्टि आई। कुन्द कहां जाएगी ?

कुन्द ने बिजली के प्रकाश में राह के किनारे एक मामूली घर देखा। मकान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों किनारे मिट्टी की चहारदीवारी थी। कुन्दनन्दिनी उसी के आश्रय में दरवाजे के पास जा बैठी। वह दरवाजे से पीठ लगाकर बैठी। गृहस्थ जग रहा था। उसे भय हुआ। आशंका से वह दरवाजा खोलकर देखने आया। उसने देखा, आश्रयहीन एक स्त्री थी। उसने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

कुन्द कुछ न बोली।

'कौन हो री तुम ?'

कुन्द ने कहा, 'वर्षा के कारण यहां ठहर गई हूं।'

गृहस्थ ने घबराकर के पूछा, 'क्या, फिर कहो ?'

'वृष्टि के कारण ठहर गई हूं।'

'इस आवाज को तो मैं पहिचानती हूं। ठीक है, घर के अन्दर आ जाओ।'

गृहस्थ कुन्द को घर के भीतर ले गया। उसने आग से रोशनी जलाई। कुन्द ने देखा वह हीरा थी।

'समझ गई, तिरस्कार से भागी हो। कोई भय नहीं। मैं किसी से न कहूंगी। एक-दो दिन मेरे यहां रहो।'

हीरा का मकान प्राचीर से घिरा था। कुल दो कोठरियां थीं। उन्हें लीप-पोत कर साफ किया हुआ था। हीरा के मकान में हीरा और उसकी धाय रहती थीं। एक कोठरी में धाय और एक कोठरी में हीरा सोती थी। हीरा ने कुन्द को अपने पास बिछौना बिछाकर रात को सुलाया। कुन्द लेटी, किन्तु सोई नहीं। दूसरे दिन भी उसने उसे वहीं रखा। उसने कहा, 'आज और कल दो दिन यहीं रहो। देखो, बुरा न मानना। बाद में जहां इच्छा हो, चली जाना।' कुन्द वहीं रही। उसने कुन्द को इच्छानुसार छिपा रखा। घर में ताला लगा दिया, जिससे धाय भी न देखे। बाद में बाबू के घर काम पर गई। दोपहर में आकर उसने कुन्द को स्नान और आहार कराया। फिर ताला लगाकर चली गई। रात में दोनों सो गईं।

रात में किसी ने दरवाजे की खिड़की खटखटाई। एक आदमी कभी-कभी रात में खिड़की खटखटाता था। बाबू के घर का दरबान रात को बुलाने आया करता था।

परन्तु उसके हाथ की इतनी धीमी आवाज नहीं होती थी। हीरा उठकर देखने गई। बाहर का दरवाजा खोलकर देखा; एक स्त्री थी। पहिले पहिचान न सकी, बाद में उसने पहिचाना, 'कौन गंगाजली ! बड़ा भाग्य।' गंगाजली अहीरन का मकान देवीपुर में था, देवेन्द्र बाबू के मकान के पास। उसकी आयु तीस-बत्तीस वर्ष की थी, साड़ी पहिने थी, हाथ में चूड़ी, मुंह में पान था। गंगाजली को देखकर हीरा ने कहा, 'गंगाजल! अन्तिमकाल में तुम्हें अवश्य पाऊं, किन्तु इस समय क्या है ?'

गंगाजली बोली, 'तुझे देवेन्द्र बाबू ने बुलाया है।'

हीरा ने हंसकर कहा, 'तुझे कुछ मिलेगा ?'

मालती बोली, 'तेरा मन है। अपने मन की बात तू जानती है। अब चल।' गंगाजली का नाम मालती था।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीरा ने कुन्द से कहा, 'मुझे बाबू के घर जाना है।' कहकर उसने दिया बुझा दिया और सज-धजकर मालती के साथ चली गई।

देवेन्द्र की बैठक में हीरा अकेली गई। देवेन्द्र देवी-आराधना कर रहे थे। होश-हवास ठीक थे। हीरा से उन्होंने कहा, 'हीरा ! उस दिन मैं अधिक शराब पीने के कारण तुम्हारी बातों का अर्थ न समझ सका। मैंने यही जानने के लिए तुम्हें बुलाया है कि तुम उस दिन यहां क्यों आई थीं ?'

'आपके दर्शन करने।'

देवेन्द्र हंसकर बोले, 'तुम बहुत बुद्धिमती हो। भाग्य से नगेन्द्र बाबू ने तुम्हारी जैसी दासी पाई है। तुम हरिदासी वैष्णवी का भेद जानने आई थीं। मेरे मन की बात जानने आई थीं। तुम जान भी गई हो। मैं भी तुम्हारे सामने उस बात को छिपाऊंगा नहीं। इसमें संदेह नहीं कि तुमने अपने मालिक का काम कर मालिक से इनाम पाया होगा। अब मेरा एक काम करो, मैं भी पुरस्कार दूंगा।'

देवेन्द्र ने हीरा को रुपयों का लोभ देकर कुन्द को बेचने को कहा। यह सुनकर हीरा क्रोध से लाल हो गई। हीरा ने उठकर कहा, 'महाशय, मुझे दासी समझकर आपने ऐसी बातें कीं। इसका उत्तर मैं दे नहीं सकती। मैं अपने मालिक से कहूंगी। वही इसका उपयुक्त उत्तर देंगे।'

यह कह हीरा वेग से चली गई। देवेन्द्र हतोत्साहित हो चुपचाप बैठे रहे। फिर उन्होंने जी भरकर शराब पी।

10

हीरा सवेरे उठकर अपने काम पर गई। दत्त घराने में बड़ा झमेला था। कुन्द मिल नहीं रही थी। सब समझ गए कि वह क्रोध करके चली गई। नगेन्द्र ने सुना कि कुन्द घर छोड़ गई। यह किसी ने नहीं बताया कि क्यों गई। नगेन्द्र ने सोचा, मैंने जो उससे कहा था, उसे सुनकर कुन्द मेरे घर रहना अनुचित समझकर चली गई। यदि यही है तो कमल के साथ क्यों नहीं गई ? नगेन्द्र का मुख मलिन हो गया। किसी ने उनके पास जाने का साहस नहीं किया। उन्हें यह भी मालूम हो गया कि सूर्यमुखी का क्या दोष था ? उन्होंने सूर्यमुखी से बोलना बन्द कर दिया। गांव-गांव में उन्होंने कुन्दनन्दिनी का पता लगाने के लिए स्त्रियां छोड़ीं।

सूर्यमुखी ने क्रोध से जो कुछ भी कहा, परन्तु वह कुन्द का जाना सुनकर बहुत अधीर हुई। कमलमणि ने उन्हें समझा दिया था कि देवेन्द्र ने जो कहलाया था, वह विश्वास के योग्य नहीं था, क्योंकि देवेन्द्र से गुप्त प्रेम कभी छिपा न रहता। कुन्द के स्वभाव से यह कभी असम्भव भी नहीं था। सूर्यमुखी ने ये सब बातें समझीं तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे अधिक पछतावा हुआ। उस पर पति के अनुराग से उन्हें और भी व्यथा हुई। उन्होंने सैकड़ों बार कुन्द को और अपने को गालियां दीं। उन्होंने भी कुन्द की खोज में आदमी भेजे।

कमल का कलकत्ते जाना रुक गया। कमल ने किसी को गाली नहीं दी। सूर्यमुखी का भी कुछ तिरस्कार नहीं किया। कमल ने अपने गले से हार उतारकर सब पड़ोसिनों को दिखाकर कहा, 'जो कुन्द को लाएगा उसे मैं यह हार दूंगी।'

हीरा यह सब देख-सुन रही थी, परन्तु कुछ बोली नहीं। कमल के हार को देखकर उसे लालच आया, परन्तु उसने लोभ को दबा लिया।

दूसरे दिन कुन्द और हीरा बिछौना बिछाकर सोईं। कुन्द और हीरा, दोनों को नींद न आई। कुन्द अपने दुःखी मन से जगती रही। हीरा अपने मनके सुख-दुख से जगती रही। वह भी कुन्द की तरह बिछौने पर लेटकर चिन्ता करती रही। वह जिस चिन्ता में थी, वह मुंह से कहने योग्य नहीं थी, बहुत गुप्त थी।

'हीरा ! छिः छिः ! तेरा मुंह देखने में इतना खराब नहीं, फिर हृदय में इतना छल-कपट क्यों ? विधाता ने उसे धोखा क्यों दिया ? विधाता ने उसे धोखा दिया है तो वह भी सबको धोखा देना चाहती है। यदि हीरा सूर्यमुखी के आसन पर बैठा दी जाती, तो क्या यह छल-कपट होता ?' हीरा कहती, 'नहीं।' हीरा को हीरा के आसन पर बैठाया, इसीलिए हीरा, हीरा है। लोग कहते हैं, 'यह सब दुष्टता का दोष है।' दुष्ट कहते हैं, 'पांच क्यों नहीं सात हुआ ?' पांच कहता है, 'मैं सात होता यदि मुझे और दो मिल जाते।' हीरा यही सोच रही थी।

हीरा सोच रही थी, 'अब क्या करूं ? यदि कुन्द को दत्त के घर ले जाऊं तो कमल हार देगी, गृहिणी भी कुछ देंगी। बाबू को क्या छोड़ दूंगी ? और यदि कुन्द को देवेन्द्र को दूं, तो नकद रुपये मिलेंगे, परन्तु यह तो मैं प्राण रहते कर न सकूंगी। कुन्द को वहीं पहुंचा देना ठीक है। किन्तु कुन्द न जाएगी। अब वह उस घर की ओर मुंह करने योग्य नहीं है, परन्तु सब लोग, बाबू-भैया कहकर ले जाएं तो जा भी सकती है और एक बात मेरे मन में है। ईश्वर जो करें ! सूर्यमुखी को भला नहीं लगेगा, परन्तु सूर्यमुखी से मुझे इतनी चिढ़ क्यों है ? उसने कभी मेरी बुराई नहीं की, बल्कि प्रेम करती है और मेरा भला ही करती है। तब चिढ़ क्यों ? क्या इसे हीरा नहीं जानती ? हीरा क्या नहीं जानती ? वह क्यों बताए ? सूर्यमुखी सुखी है, मैं दुःखी हूं, इसीसे मुझे चिढ़ है। वह बड़ी है, मैं छोटी हूं, वह मालकिन है, मैं दासी हूं, इसीलिए मुझे उससे बहुत चिढ़ है। यदि कहो कि ईश्वर ने उसे बड़ा बनाया है, उसका क्या दोष ? मैं उससे द्वेष क्यों करूं ? मैं कुछ भी उनका अहित नहीं चाहती, किन्तु यदि उनका अहित करने में मेरी भलाई हो तो क्या करूं ? अपना भला कौन नहीं करता ? जरा हिसाब लगाकर देखूं, कैसे क्यों होता है। इस समय मुझे कुछ रुपए की आवश्यकता है। अब मैं दासी का काम करना नहीं चाहती। रुपये कहां मिलेंगे ? दत्त घराने के सिवाय और रुपये कहां हैं ? दत्त घराने से रुपये लेने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही तरीका है। सभी जानते हैं कि कुन्द पर नगेन्द्र बाबू की दृष्टि लगी है। बाबू इस समय कुन्द के उपासक हैं। बड़े आदमी मन में आते ही सब कुछ कर सकते हैं। नहीं करते, केवल सूर्यमुखी के लिए। यदि दोनों में कुछ झगड़ा हो जाए तो वह सूर्यमुखी की इतनी खातिर भी न करेंगे। इस समय मुझे वही करना होगा, जिससे दोनों में झगड़ा हो जाए।

'ऐसा होने से ही बाबू कुन्द की पूजा करेंगे। कुन्द मूर्ख है। मैं उसे अपने वश में ला सकूंगी। मैंने उसका बहुत कुछ उपाय कर रखा है। मैं चाहूं तो कुन्द से सब कुछ करा सकती हूं। यदि बाबू कुन्द की पूजा आरम्भ करें, वह कुन्द के आज्ञाकारी हो जाएंगे। मैं कुन्द को अपनी आज्ञाकारिणी बना लूंगी। पूजा का प्रसाद मैं भी पाऊंगी। यदि दासी का काम न करना पड़े, तो बहुत ही अच्छा हो। देखूं दुर्गा क्या करती है। नगेन्द्र को कुन्दनन्दिनी दूंगी, किन्तु एकाएक नहीं। पहले कुछ दिन छिपाए रहकर देखूं। विच्छेद में बाबू का प्रेम पक जाएगा। उसी समय कुन्द को सामने कर दूंगी। तब भी यदि सूर्यमुखी का भाग्य न फूटे तो उसका भाग्य ही बड़ा है। तब तक मैं बैठी-बैठी कुन्द को उठना-बैठना सिखाऊंगी।'

ऐसी कल्पना कर हीरा वैसे ही आचरण में लग गई। उसने छल करके धाय को अन्यत्र भेज दिया और कुन्द को छिपाकर रखा। कुन्द उसको सहृदय देखकर सोचने लगी, 'हीरा जैसी औरत और नहीं है। कमल भी मुझे इतना नहीं चाहती, जितना वह चाहती है।'

हीरा ने सोचा कि नगेन्द्र की आंखों में सूर्यमुखी को विष बना देना चाहिए। वास्तविक काम यही है। हीरा उनके अभिन्न हृदयों को पृथक-पृथक करने की चेष्टा करने लगी। एक दिन सवेरे ही हीरा मालिक के घर आकर काम-काज पर लगी। कौशल्या परिचारिका भी दत्त घराने में काम करती थी। हीरा ने उससे कहा, 'कुशि बहिन ! आज तेरा बदन टूट रहा है। तू मेरा काम कर दे।'

कौशल्या हीरा से डरती थी। उसने स्वीकार किया। वह बोली, 'करूंगी क्यों नहीं? शरीर का भला-बुरा होना सबके लिए है।'

हीरा कौशल्या चाहे जो उत्तर देती, उसी पर कलह करती थी। वह बोली, 'कुशी! तेरा दिमाग चढ़ा है ? गाली देती है।'

कौशल्या चौंककर बोली, 'मैंने गाली कब दी ?'

'आह मर ! कहती है, कब गाली दी ? शरीर अच्छा-बुरा ही तो है री ? क्या मैं मर रही हूं ?'

'मरे, तो मर। इस पर व्यर्थ नाराज क्यों होती हो ? एक दिन तो मरना होगा ही। यमराज न तुझे भूलेंगे और न मुझे।'

'तुझे ही न भूलें। तू मुझसे कुढ़ के मर। मर, मर, मर। मेरी खोपड़ी न खा।'

अब कौशल्या रह न सकी। वह बोली, 'तू मेरी खोपड़ी न खा ! तू मर। तुझे यम न भूलें। मुंह जली ! झगड़े में हीरा से कौशल्या तेज थी। इसलिए हीरा ने मात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाई।

हीरा प्रभु-पत्नी के पास शिकायत करने गई। जाते समय हीरा के होंठों पर मुस्कराहट थी। हीरा जब सूर्यमुखी के सामने पहुंची तो उसने रो-रोकर घर भर दिया।

सूर्यमुखी ने विचार किया कि दोष हीरा का ही था फिर भी उन्होंने हीरा के अनुरोध में कौशल्या को डपट दिया। उससे संतुष्ट न होकर हीरा बोली, 'इसे छुड़ा दो। नहीं तो मैं न रहूंगी।'

यह सुनकर सूर्यमुखी हीरा पर क्रुद्ध हुई। वह बोली, 'हीरा तेरा बड़ा दिमाग चढ़ गया है। तूने पहली गाली दी और तेरी ही बात पर इसे छुड़ा दूं ? मैं यह अन्याय नहीं कर सकती। तेरी जाने की इच्छा हो तो तू जा सकती है।'

हीरा यही चाहती थी। 'अच्छा जाती हूं', कहकर हीरा रोती हुई बाहरी महल में बाबू के पास पहुंची।

हीरा को रोती देखकर नगेन्द्र ने पूछा, 'हीरा रोती क्यों है ?'

'मेरा हिसाब करने की आज्ञा दीजिए बाबूजी।'

'यह क्यों ? क्या हुआ ?'

'मुझे जवाब मिला है। मां जी ने मुझे जवाब दिया है।'

'तूने क्या किया था ?'

'कुशी ने मुझे गाली दी थी। मैंने शिकायत की। उन्होंने उसकी बात पर विश्वास कर मुझे जवाब दे दिया।'

नगेन्द्र ने हंसते हुए कहा, 'यह तो मतलब की बात नहीं हुई हीरा ? असल बात कह।'

'असल बात है कि मैं यहां न रहूंगी।'

'क्यों ?'

'मां जी का मुंह बहुत खुल गया है। किसे क्या कह दें, कुछ ठीक नहीं रहा ?'

'क्यों ?'

'उस दिन कुन्द को उन्होंने क्या नहीं कहा ? वह सुनकर ही कुन्द ने घर त्याग दिया। हम लोगों को भय है कि किसी दिन हम लोगों को कह डालें। तो मैं वह सुनकर जी न सकूंगी। इसीसे पहले ही हटी जाती हूं।'

'वे क्या बातें थीं ?'

'मैं आपके सामने लज्जा के मारे कह नहीं सकती।'

नगेन्द्र की आंखों के समक्ष अंधकार छा गया। वह हीरा से बोले 'आज तू घर जा। कल मैं तुझे बुलाऊंगा।'

हीरा की कामना सिद्ध हुई। उसने इसीलिए कौशल्या से झगड़ा किया था।

सूर्यमुखी को एकान्त में ले जाकर नगेन्द्र ने फिर कहा, 'क्या तुमने हीरा को विदा कर दिया है ?' सूर्यमुखी बोली, 'हां !' फिर उन्होंने हीरा और कौशल्या का हाल विस्तार से कह सुनाया। सुनकर नगेन्द्र ने कहा, 'तुमने कुन्दनन्दिनी को क्या कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था ?'

नगेन्द्र ने देखा, सूर्यमुखी का मुंह सूख गया था ?

'कोई दुर्वाक्य कहा था क्या ?'

सूर्यमुखी कुछ देर चुप रही। बाद में उन्होंने कहा, 'तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम्हारे आगे मैं क्यों छिपाऊं ? आज तक कभी कोई बात तुमसे छिपाई नहीं। फिर आज क्यों एक पराई बात तुमसे छिपाऊं ? मैंने कुन्द को दुर्वाक्य कहा था। बाद में तुम क्रुद्ध होगे, इसलिए तुम्हारे सामने नहीं कहा। अपराध क्षमा करो। मैं सब बातें कहती हूं।'

तब सूर्यमुखी ने हरिदासी वैष्णवी के परिचय से कुन्दनन्दिनी के तिरस्कार तक, बिना कपट सब हाल कह दिया। कहकर उन्होंने अंत में कहा, 'मैं कुन्दनन्दिनी से नाराज हो अपने मन-ही-मन मर रही हूं। देश-देश में उसकी खोज करा रही हूं। यदि मैं पता पाती, तो लौटा लाती। मुझे अपराध न देना।'

'तुम्हारा विशेष अपराध नहीं है। तुमने कुन्द के बारे में जैसा कलंक सुना था, उस पर कौन भली स्त्री उसे मीठी बात कहती, या घर में स्थान देती ? किन्तु एक बार तुम्हें विचार कर देखना था कि बात सच्ची है या नहीं ?'

'उस समय यह बात नहीं सोची। अब पछता रही हूं।'

'सोचा क्यों नहीं ?'

'मेरे मन में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई थी।' यह कहते-कहते सूर्यमुखी ने नगेन्द्र के चरणों के पास जमीन पर बैठकर नगेन्द्र के दोनों चरणों को आंखों के आंसुओं से भिगो दिया। फिर बोली, 'तुम मेरे प्राणाधार हो। इस पापी मन के अन्दर कोई बात होगी, तो तुमसे न छिपाऊंगी। मेरा अपराध क्षमा करना।'

'तुम्हें कहना न पड़ेगा। मैं जानता हूं कि तुमने संदेह किया था कि मैं कुन्दनन्दिनी पर अनुरक्त हूं।'

सूर्यमुखी नगेन्द्र के चरणों में मुंह छिपाकर रोने लगी। वह बोली, 'मैं तुमसे क्या कहूं ? मैंने जो दुःख पाया है, उसे क्या तुमसे कह सकती हूं ? मरने के बाद भी दुःख होगा, इसलिए मैं मरी नहीं। नहीं तो जब मैंने सुना था, मैं तभी मरना चाहती थी। जबानी मरना नहीं, मैं यथार्थ में मरना चाहती थी। मेरा अपराध क्षमा करना।'

नगेन्द्र ने बहुत देर चुप रहने के बाद अंत में कहा, 'सूर्यमुखी यह सब अपराध मेरा है। तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है। मैं चुपचाप तुम्हारे सामने अपराधी हूं। मैं यथार्थ में तुम्हें भूलकर कुन्दनन्दिनी में रम गया था। मैंने जो यंत्रणा पाई है और जैसी यंत्रणा पा रहा हूं, उसे तुमसे क्या कहूं ? तुम समझती होगी कि मैंने चित्त के दमन की चेष्टा नहीं की, ऐसा न समझना। मैं आप ही अपना जैसा तिरस्कार करता हूं, उतना तिरस्कार तुम न करोगी। मैं पापात्मा हूं, मेरा चित्त वश में न आ सका।

सूर्यमुखी अब सहन न कर सकी। वह हाथ जोड़कर कातर स्वर में बोली, 'तुम्हारे मन में आए, उसे रहने दो, मेरे सामने कुछ न कहो। तुम्हारी हर बात से मेरी छाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भाला चुभा रहा है। मेरे भाग्य में जो था, वह हुआ और सुनना नहीं चाहती। यह सब मुझे न सुनना चाहिए।'

'नहीं, ऐसा नहीं है सूर्यमुखी ! तुम्हें और भी सुनना होगा। जब बात उठी ही है, तब मन की बातें खोलकर कहता हूं। मैं बहुत दिन से कहना चाहता था। मैं इस संसार का त्याग करूंगा, मरूंगा नहीं। मैं विदेश चला जाऊंगा। घर-मकान और संसार में अब सुख नहीं रहा। अब तुमसे मुझे कोई मोह नहीं है, मैं तुम्हारे अयोग्य हूं। अब मैं तुम्हारे पास रहकर तुम्हें क्लेश न दूंगा। मैं कुन्दनन्दिनी को ढूंढ़ता हुआ देश-देशान्तर में फिरूंगा। तुम इस घर की गृहिणी रहो। मन में समझना, कि तुम विधवा हो। जिसका पति इतना नीच है, वह विधवा नहीं तो और क्या है ? परन्तु मैं पामर होऊं या जो होऊं, तुम्हें धोखा न दूंगा। मेरा प्राण दूसरे पर लग गया है। यह बात तुमसे स्पष्ट कहे देता हूं। यदि कुन्दनन्दिनी को भूल गया तो फिर आऊंगा, नहीं तो तुम्हारे साथ यही अन्तिम भेंट है।'

यह बात सुनकर सूर्यमुखी कई मुहूर्त तक पत्थर की मूर्ति की तरह पृथ्वी की ओर देखती रही। फिर जमीन में मुंह छिपाकर रोई। बाघ जैसे मारे हुए जीव की यंत्रणा देखता है, वैसे ही नगेन्द्र सूर्यमुखी को देख रहे थे। वह मन-ही-मन कह रहे थे, 'ठीक है, जब मरना ही है, तो आज कल क्या ? प्रभु की इच्छा, मैं क्या करूं ? क्या मैं इसका प्रतिकार कर सकता हूं ? मैं मर सकता हूं, परन्तु क्या उससे सूर्यमुखी बचेगी?'

'नहीं नगेन्द्र ! तुम्हारे मरने से सूर्यमुखी न बचेगी। किन्तु अब तुम्हारा मरना ही अच्छा था।'

थोड़ी देर में सूर्यमुखी उठ बैठी। उसने स्वामी के पैर पकड़कर कहा, 'एक भिक्षा मांगती हूं।'

'वह क्या ?'

'केवल एक महीने घर में रहो। इस बीच अगर कुन्दनन्दिनी न मिले, तो तुम देश त्याग करना। मैं मना न करूंगी।'

नगेन्द्र चुपचाप बाहर चले गए। उन्होंने एक महीने रहना स्वीकार किया। सूर्यमुखी भी समझ गई। वह नगेन्द्र को जाते हुए देख रही थी। सूर्यमुखी ने मन में कहा, 'मेरे सर्वस्व धन ! मैं तुम्हारे पैर का कांटा निकालने के लिए अपने प्राण दे सकती हूं। तुम पापिनी सूर्यमुखी के लिए देश-त्यागी होगे ? तुम बड़े हो या मैं ?'

11

हीरा की नौकरी गई, परन्तु दत्त घराने से उसका सम्बन्ध बना रहा। उस घराने के समाचारों के लिए वह व्यस्त रहती थी। वहां के लोगों के मिलने पर वह उनसे गपशप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती थी। वह जान लेती थी कि सूर्यमुखी के प्रति नगेन्द्र का अब कैसा भाव है।

एक दिन एक झगड़ा खड़ा होने की सम्भावना हुई। देवेन्द्र को हीरा का परिचय देने के समय से मालती हीरा के घर अधिक आने लगी थी। एक दिन अकस्मात् मालती ने आकर एकाएक खिड़की खोलकर किवाड़ ढकेल दिए। उसने देखा घर भीतर से बन्द था। वह समझ गई कि उसके अन्दर कोई आदमी रहता है।

मालती ने हीरा से कुछ नहीं कहा, परन्तु मन में सोचने लगी कि वह आदमी कौन है ? सोचा शायद कोई पुरुष हो। इस बात को उसने मन में स्थान नहीं दिया। उसके मन में संदेह हुआ कि शायद कुन्द वहां हो। कुन्द के गायब होने की बात मालती ने सुनी थी। अब उसने संदेह दूर करने के लिए शीघ्र ही उपाय किया। हीरा बाबू के घर से हिरन का एक बच्चा लाई थी। वह वहां बंधा रहता था। एक दिन मालती उसे खिला रही थी। उसने हीरा के अनजाने में उसका बन्धन खोल दिया। हिरन का बच्चा छूटते ही भागा। हीरा उसे पकड़ने बाहर गई।

हीरा दौड़ गई तो मालती व्यग्र भाव से उसे बुलाने लगी, 'हीरा, अरी हीरा !' हीरा के दूर जाने पर मालती सिर पकड़कर रो उठी। 'ए मां, मेरी हीरा को क्या हो गया ?' यह कहकर रोती हुई वह कुन्द के दरवाजे पर आ गई, 'ए कुंद-कुंद ! शीघ्र बाहर आ। देख, हीरा को क्या हो गया !' तब कुंद ने घबराकर दरवाजा खोल दिया। मालती उसे देखकर हंसी और भाग गई।

कुंद ने दरवाजा बन्द कर दिया। कहीं हीरा क्रुद्ध न हो, इसलिए कुंद ने हीरा से कुछ नहीं कहा।

मालती ने देवेन्द्र को यह समाचार दिया। देवेन्द्र ने स्थिर किया कि वह स्वयं हीरा के घर जाकर निर्णय करेंगे, इस पार या उस पार, परन्तु उस समय रात कुछ अधिक हो गई थी। इसलिए कुछ कर न सके। दूसरे दिन जाने का विचार किया।

कुन्द अब पिंजरे की चिड़िया थी। सूर्यमुखी ने तो उसे घर से निकाल ही दिया था, किन्तु उस लज्जा के स्रोत के साथ प्रेम का स्रोत भी आकर मिल गया था। परस्पर की चोट से प्रेम-प्रवाह बढ़ गया था। बड़ी नदी में छोटी नदी डूब गई थी। सूर्यमुखी का किया अपमान धीरे-धीरे समाप्त होकर नगेन्द्र ही अब उसके मन में था। धीरे-धीरे कुंद पश्चाताप करने लगी, 'मैं क्यों घर छोड़कर चली आई ? दो बातें सुनने से मेरी क्या हानि थी ? मैं नगेन्द्र को देखती तो थी। अब तो एक बार भी नहीं देख पाती। तब क्या मैं फिर लौटकर उस घर में जाऊं ? यदि वह मुझे निकाल न दें, तो जाऊं, किन्तु बाद में यदि फिर निकाल दें तो ?' कुंदनन्दिनी अपने मन में यही सोचा करती थी। दत्त के घर लौट जाना ठीक है या नहीं; किन्तु यह विचार अधिक करना न पड़ा। दो-चार दिन में ही उसने स्थिर किया कि जाना ही उचित है; नहीं तो अब प्राण न बचेगा। अब विचार यही रह गया कि जाने से सूर्यमुखी फिर निकाल देगी या नहीं। अन्त में कुंद ने यही विचार किया कि सूर्यमुखी निकाल दे या जो करे, जाना ही ठीक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु क्या वह फिर उस आंगन में जाकर खड़ी होगी ? अकेली वहां जाते बड़ी लज्जा जान पड़ती थी। यदि हीरा अपने साथ ले जाए तो हो सकता था, परन्तु हीरा से कहते बहुत लज्जा जान पड़ी। उससे वह कह न सकी।

कुन्द का हृदय नगेन्द्र का न देखना सह न पाया। एक दिन कुन्द शय्या से उठी। उस समय हीरा सोई हुई थी। वह चुपचाप दरवाजा खोलकर बाहर निकली। बहुत ही शीतल मंद वायु बह रही थी। स्पष्ट दिखाई देने वाली वृक्षों की चोटियों पर नीला आकाश छा रहा था। कुंद रात का अनुमान कर दत्त के घर की ओर चली। जाने का यही अभिप्राय था कि वह एक बार नगेन्द्र को देख पाए। सोचा छिपकर उन्हें देख आने में क्या हानि है, परन्तु छिपकर देखेगी कैसे ? कुंद ने सोच-विचार कर यही स्थिर किया कि रात रहते दत्त के घर के पास इधर-उधर घूमेगी। किसी प्रकार नगेन्द्र को खिड़की में या मकान में या राह के किनारे से देख पाएगी। वह सवेरे उठते हैं, कुन्द उन्हें देख सकेगी। उन्हें देखकर वह फिर लौट आएगी।

कुंद रात्रि के अन्त में नगेन्द्र के घर की ओर चली। महल के पास पहुंचकर उसने देखा कि अभी सवेरा होने में कुछ देर थी। कुंद ने राह पर देखा, नगेन्द्र नहीं थे, छत पर देखा, नगेन्द्र नहीं थे। उसने सोचा वह झाड़ के नीचे बैठ जाए। झाड़ छितराया हुआ था। झाड़ के नीचे अंधकार था। दो एक झाड़ के फल और पत्ते पानी में टपक पड़े। उसके सिर के ऊपर वृक्ष पत्ती झाड़ रहे थे। महल के रखवाले दरबानों द्वारा दरवाजे खोलने और बंद करने की आवाज सुनाई दी। अंत में ऊषा के आगमन की हवा चलने लगी। कुंद का भरोसा छूटने लगा। अब वह झाड़ के नीचे बैठी नहीं रह सकती थी। सवेरा हुआ तो कोई देख लेगा। वह लौट जाने को उठी। महल से सटा बाग था। नगेन्द्र सवेरे उठकर वहां घूमा करते थे। शायद वह इस समय वहां टहल रहे हों। उस स्थान को बिना देखे कुन्द लौट नहीं सकी। वह बाग चारदीवारी से घिरा था। दरवाजे की खिड़की खुली थी या बंद, यह देखने के लिए कुन्द उस ओर गई। उसने देखा, दरवाजा खुला था। कुन्द ने उसमें प्रवेश किया। वह बाग के किनारे-किनारे धीरे-धीरे आकर एक मौलिश्री के पेड़ के नीचे खड़ी हो गई।

बाग के बीच में संगमरमर का बना एक चबूतरा था। उस पर चढ़ी हुई तरह-तरह की लताएं थीं। उसके किनारे-किनारे मिट्टी में लगी लताओं की डालियां थीं।

कुंदनन्दिनी ने मौलिश्री की ओर से बाग की ओर दृष्टि फेरी, परंतु नगेन्द्र दिखाई नहीं दिए। उसने लता-मण्डप की ओर देखा। वहां पत्थर से बनी स्निग्ध चौकी पर कोई सोया हुया हुआ था। कुन्दनन्दिनी ने समझा, वह नगेन्द्र हैं। देखने के लिए वह धीरे-धीरे वृक्ष की ओट लेकर आगे बढ़ी। उसी समय लता-मण्डप के भीतर का मनुष्य उठकर बाहर निकला। कुन्द ने देखा वह नगेन्द्र नहीं सूर्यमुखी थी।

कुन्द डरकर एक खिली हुई कामिनी की ओट में खड़ी हो गई। भय से आगे न बढ़ सकी। पीछे भी पैर न रख सकी। उसने देखा कि सूर्यमुखी बाग में फूल चुनती हुई टहलने लगी। जिधर कुंद छिपी थी, उसी ओर सूर्यमुखी धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंद ने देखा कि अब तो पकड़ ली गई। अंत में सूर्यमुखी ने कुंद को देख लिया। दूर से न पहिचान कर उन्होंने पूछा, 'कौन है ? कौन है ?'

कुंद भय से चुप रह गई। पैर हिले नहीं। सूर्यमुखी समीप आ गई। उन्होंने विस्मय के साथ कहा, 'कौन, कुन्द है क्या ?'

कुंद ने तब भी उत्तर न दिया। सूर्यमुखी ने कुंद का हाथ पकड़कर कहा, 'कुंद आओ, बहिन आओ। अब मैं तुम्हें कुछ न कहूंगी।'

यह कहकर सूर्यमुखी कुंद को अंतःपुर ले गई।

× × ×

उधर रात्रि में देवेन्द्र अकेले वेश बदलकर शराब पीकर कुंदनन्दिनी की खोज में हीरा के घर पहुंचे। उन्होंने वहां खोजकर देखा, परंतु कुंद वहां नहीं थी। हीरा मुंह पर कपड़ा रखकर हंसने लगी। देवेन्द्र ने क्रुद्ध होकर पूछा, 'हंसती क्यों है तू ?'

हीरा बोली, 'तुम्हारा दुःख देखकर। पिंजरे का पंछी उड़ गया। अब आप उसे नहीं पाएंगे।' अंत में हीरा ने कहा, 'सवेरे उसे न देखकर मैंने बहुत खोजा। खोजते-खोजते बाबू के मकान पर गई। अब वहां उसका बड़ा आदर है।'

देवेन्द्र हताश होकर लौट रहे थे, परंतु उनके मन का संदेह न मिटा। इच्छा थी कि और कुछ देर ठहरकर सब बातें समझकर जाएं। आकाश में एक बादल देखकर बोले, 'शायद पानी आयेगा।' फिर इधर-उधर फिरने लगे। हीरा की इच्छा थी कि देवेन्द्र तनिक बैठें, परंतु वह स्त्री थी, अकेली रहती थी। फिर रात का समय था, इसलिए बैठने को कह न सकी। देवेन्द्र बोला, 'तुम्हारे घर में छाता है ?'

हीरा के घर छाता नहीं था। देवेन्द्र बोला, 'तुम्हारे यहां कुछ देर बैठकर पानी की हालत देख सकता हूं ? कोई दोष तो नहीं है ?'

हीरा बोली, 'जो दोष था, वह तो आपके मेरे घर में आने से ही पूरा हो गया।'

'तब मैं बैठ सकता हूं ?'

हीरा ने कोई उत्तर न दिया। देवेन्द्र वहीं बैठ गए।

तब हीरा ने चौकी पर साफ-सा बिस्तर बिछाकर देवेन्द्र को बैठाया और सन्दूक से एक छोटा चांदी का हुक्का निकाला। उसने अपने हाथ से हुक्के में ठंडा पानी डाला। मीठा, कडुवा तम्बाकू भरकर पत्ते की नलकी बना दी।

देवेन्द्र जेब से शराब की बोतल निकालकर बिना पानी मिलाए ही पी गए और तब रंगीन होकर देखा, हीरा की आंखें बहुत सुन्दर थीं। वास्तव में उसकी आंखें बहुत सुन्दर थीं।

देवेन्द्र बोले, 'तुम्हारी आंखें बहुत अच्छी हैं।' हीरा मुस्कुराई।

देवेन्द्र ने देखा एक किनारे एक तानपूरा पड़ा था। देवेन्द्र गुनगुनाकर गाना गाते हुए उस तानपूरे को लेकर बैठ गए। देवेन्द्र बोले, 'यह तानपूरा कहां से पाया ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक सिपाही से लिया था।' देवेन्द्र ने उसका तार ठीक करके उसे बजाया। उससे गला मिलाकर मधुर स्वर से मधुर पद गाया। हीरा अपने को भूल-सी गई। वह यह भूल गई कि वह हीरा थी और वह देवेन्द्र। वह मन में सोच रही थी कि वह स्वामी और वह उनकी पत्नी थी। वह मन ही मन में सोच रही थी कि विधाता ने दोनों को एक दूसरे के लिए बनाया है। हीरा के मन की बात मुंह से प्रकट हो गई। देवेन्द्र ने हीरा के मुंह से सुना कि हीरा ने देवेन्द्र को मन-ही-मन आत्मसमर्पण कर दिया था।

बात प्रकट हो जाने पर हीरा को चैतन्य हुआ। उसका सिर चकरा गया। तब उसने पागल की तरह घबराकर कहा, 'आप शीघ्र मेरे घर से चले जाएं।'

'यह क्यों हीरा ?'

'आप शीघ्र जाइए, नहीं तो मैं चली जाती हूं।'

'मुझे घर से निकालती क्यों हो ?'

'आप जाइए, नहीं तो मैं लोगों को बुलाती हूं। आप मेरा सत्यानाश करने को क्यों आए हैं ?'

हीरा पागल हो गई।

'इसीको कहते हैं स्त्री-चरित्र।'

'स्त्री-चरित्र ? स्त्री-चरित्र बुरा नहीं। तुम जैसे पुरुषों का चरित्र घृणित है। तुम लोगों में धर्मज्ञान नहीं, किसी की भलाई-बुराई की समझ नहीं, तुम केवल अपना ही सुख ढूंढ़ते हो। तुम इसी चेष्टा में रहते हो कि कैसे किसी स्त्री का सर्वनाश कर सको। नहीं तो तुम मेरे घर में क्यों बैठते ? क्या तुम मेरा सर्वनाश करने आए थे ? क्या तुमने मुझे कुलटा समझा है ? तुम किस साहस से यहां बैठे ? मैं कुलटा नहीं हूं। हम दुःखी लोग हैं, मेहनत करके खाती हैं। हम लोगों को कुलटा होने का अवसर नहीं है। किसी बड़े आदमी की बहू होने पर, मैं कह नहीं सकती कि मैं क्या होती?'

देवेन्द्र की भौंहें तन गईं। यह देखकर हीरा प्रसन्न हुई। वह सिर झुकाकर देवेन्द्र की ओर देखकर कोमल स्वर में बोली, 'प्रभु ! मैं आपके रूप-गुण को देखकर पागल हो गई थी, परन्तु मुझे कुलटा न समझिए। मैं आपको देखने से ही सुखी हूं। आपने मेरे घर में बैठना चाहा और मैंने मना नहीं किया, परन्तु मैं अबला स्त्री हूं। मेरे मना न कर सकने पर भी क्या आपका बैठना उचित था ? आप पापी हैं। आपने इसी बहाने घर में प्रवेश कर सर्वनाश की चेष्टा की। अब आप यहां से जा सकते हैं।'

देवेन्द्र ने और एक घूंट शराब पीकर कहा, 'अच्छा, अच्छा हीरा ! तुमने अच्छा व्याख्यान दिया। तुम एक दिन मेरे ब्रह्मसमाज में व्याख्यान दोगी क्या ?'

हीरा क्रोध से कातर होकर बोली, 'मैं आपके उपहास के योग्य नहीं हूं। यदि कोई अधम आपसे प्रेम करे, तो उसके प्रेम का तमाशा करना अच्छा नहीं। मैं धार्मिक नहीं, धर्म नहीं समझती, धर्म में मेरा मन भी नहीं है। फिर भी कुलटा न होने की जो बात मैंने कही, उसका कारण यह था कि अपने मन में मेरी प्रतिज्ञा है कि आपके

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम के लोभ में पड़कर मैं कलंक न लूंगी। यदि आप मुझसे जरा भी प्रेम करते तो मैं यह प्रतिज्ञा न करती। मुझमें धर्मज्ञान नहीं है। मैं आपके प्रेम की तुलना में कलंक को तृणवत् समझती, परन्तु जब आप प्रेम नहीं करते तो मैं व्यर्थ के लिए यह सब कलंक क्यों खरीदूं ? किस लोभ से मैं अपना गौरव छोड़ूं ? आप युवती को अपने हाथ में पाकर कभी नहीं छोड़ते। आप मेरी पूजा ग्रहण करना चाहें, तो कर सकते हैं; परन्तु शायद कल ही आप मुझे भूल जाएंगे। यदि याद नहीं रखें और मेरी बात का आप उपहास करें तो ऐसी दशा में मैं क्यों आपकी बांदी बनूं ? जिस दिन आप मुझे प्रेम करेंगे, उस दिन मैं आपकी दासी होकर चरण-सेवा करूंगी।'

देवेन्द्र ने हीरा के मुंह से तीन प्रकार की बातें सुनीं। उन्होंने उसके मन की अवस्था समझ ली। उन्होंने मन में सोचा, 'मैं तुम्हें पहिचान गया। अब मैं तुम्हें उंगली पर नचा सकता हूं। जिस दिन चाहूंगा, उसी दिन तुम्हारे द्वारा कार्य सिद्ध कर लूंगा।' यही समझकर वह चले गए।

उन्होंने हीरा का सम्पूर्ण परिचय नहीं पाया।

12

दोपहर का समय था। श्रीश बाबू ऑफिस से निकले। सब लोग भोजन के बाद सो रहे थे। कमलमणि सूई लेकर कार्पेट सी रही थी। उसके सिर के बाल कुछ छितराए हुए थे।

उसी समय एक दासी ने एक पत्र लाकर कमल के हाथ में दिया। कमल ने देखा, सूर्यमुखी का पत्र था। खोलकर पत्र पढ़ा, फिर पढ़ा। फिर पढ़कर दुःखी हो चुप रह गई। पत्र में लिखा था, 'बहिन ! तुम कलकत्ते से जाने के बाद हम लोगों को भूल गईं? क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे समाचार के लिए मैं सदा व्यग्र रहती हूं ?

'तुमने कुन्दनन्दिनी के विषय में पूछा था, वह मिल गई है। यह सुनकर तुम सुखी होगी। इसके अतिरिक्त और भी एक प्रसन्नता की बात है। कुन्द के साथ मेरे पति देवता का विवाह होगा। यह विवाह मैं स्वयं कराऊंगी। विधवा-विवाह जब शास्त्र-संगत है तो हानि क्या है ? दो-एक दिन में विवाह होगा। तुम सम्मिलित न होगी। होतीं तो निमंत्रण देती। यदि हो सके, तो फूल शय्या के समय आना, क्योंकि तुम्हें देखने की बड़ी इच्छा है।'

कमलमणि पत्र का कुछ अर्थ न समझ सकी। उसने सतीश बाबू से सलाह ली। कमलमणि ने उन्हें चिट्ठी पढ़कर सुनाई। पूछा, 'बताओ सत्तू, इसका अर्थ क्या है?' सत्तू बाबू माता के हाथ का सहारा ले उठ खड़े हुए और कमलमणि की नाक चबाने लगे। कमलमणि सूर्यमुखी को भूल गई। कमलमणि फिर सूर्यमुखी का पत्र पढ़ने लगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचा, यह सत्तू बाबू का काम नहीं, अब मेरे उन मंत्री के होने से काम चलेगा। क्या उनका ऑफिस समाप्त नहीं हुआ ?

यथासमय श्रीशचन्द्रजी ने ऑफिस से आकर कपड़े बदले। कमलमणि उन्हें जलपान कराकर सतीश को ले क्रोध करके चारपाई पर सोई। श्रीशचन्द्र हंसते हुए हुक्का लेकर कोच पर जा बैठे।

वह हुक्के से बोले, 'हुक्के ! तुम पेट में गंगाजल धारण किए हो। तुम्हारे सिर पर अग्नि है। तुम कहो कि जिसने मुझ पर क्रोध किया है, वह अभी मुझसे बात-चीत करे। नहीं तो मैं तुम्हारे माथे पर आग रखकर दस चिलम तम्बाकू फूंक डालूंगा।' यह सुनकर कमलमणि उठी और उनके मुख पर आंखें घुमाकर कहा, 'और दस चिलम तम्बाकू न फूंको, एक चिलम फूंकने से ही मैं एक बात नहीं कर पाती।' यह कहकर उसने हुक्के से चिलम उतारकर एक ओर रख दी।

कमलमणि ने पत्र पढ़कर कहा, 'इसका अर्थ करो, नहीं तो आज मंत्रिवर का महीना कट जाएगा।'

'अग्रिम महीना दो, तो अर्थ करूं।'

कमंलमणि श्रीशचन्द्र के मुंह के पास मुंह ले गई। श्रीशचन्द्र ने महीना चुकता कर लिया। तब उन्होंने पत्र पढ़कर कहा, 'यह सब एक तमाशा है।'

'क्या तमाशा है ? तुम्हारी बात या पत्र ?'

'यह पत्र।'

'आज मैं मंत्री महाशय को डिस्चार्ज करूंगी। उनकी खोपड़ी में इतनी बुद्धि नहीं? स्त्री क्या ऐसे तमाशे को जबान पर ला सकती है ?'

'जो तमाशा नहीं करते, वे तमाशा किया करते हैं।'

'मुझे तो जान पड़ता है कि यह सत्य है।'

'यह क्या सत्य हो सकता है ?'

'झूठ कहूं तो कमलमणि के माथे की कसम।'

श्रीशचन्द्र ने कमल का गाल दबाया। कमल बोली, 'अच्छा ! झूठ कहूं तो कमलमणि की सौतिन के माथे की कसम।'

'तब तो केवल उपहास समझना चाहिए।'

'इस समय विधाता सूर्यमुखी का माथा खा रहे हैं। भैया ने शायद जबरदस्ती विवाह किया है।'

श्रीशचन्द्र कुछ सोचने लगे। फिर बोले, 'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। नगेन्द्र को पत्र लिखूं ? क्या कहती हो ?'

कमलमणि राजी हुई। श्रीशचन्द्र ने व्यंग्य के साथ पत्र लिखा। नगेन्द्र ने जो पत्र का उत्तर दिया वह इस प्रकार था—

'भाई ! मुझसे घृणा करना। घृणास्पद से अवश्य घृणा करनी चाहिए। मैं यह विवाह करूंगा। यदि सारा संसार मेरा त्याग करे, तब भी मैं यह विवाह करूंगा। नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं पागल हो जाऊंगा। पागल होने में अधिक शेष कुछ नहीं है।

यह बात कहने पर शायद और किसी बात के कहने की आवश्यकता नहीं। शायद तुम लोग भी मुझे विवाह न करने की बात न कहोगे।

यदि कहो, तो मैं तर्क करने को तैयार हूं।

कोई कहे कि विधवा-विवाह हिन्दू-धर्म के विरुद्ध है, तो मैं उसे विद्यासागर का प्रबंध पढ़ने को देता हूं। जब उनके जैसे शास्त्र-विशारद महामहोपाध्याय कहते हैं कि विधवा-विवाह शास्त्रोचित है, तब कौन इसे अशास्त्रीय कहेगा ? यदि कहो कि यह शास्त्रोचित होने पर भी समाज-सम्मत नहीं है, तो मैं इस विवाह को करके समाज से च्युत होऊंगा। तब इसका जवाब है कि इस गोविन्दपुर में मुझे कौन समाजच्युत करेगा; किसमें इतनी सामर्थ्य है ? यहां मैं ही समाज हूं। फिर भी मैं तुम लोगों का मान रखने के लिए यह विवाह छिपकर करूंगा, कोई जान न पाएगा।

तुम इसमें आपत्ति न करना। तुम कहोगे कि दो विवाह नीति-विरुद्ध हैं। तुमने कैसे जाना कि यह नीति-विरुद्ध है। भारतवर्ष में यह बात पहिले से होती आई है।

तुम कहोगे कि यदि एक पुरुष की दो स्त्रियां हो सकती हैं, तब एक स्त्री के दो स्वामी क्यों न हों ? इसका उत्तर यह है कि एक स्त्री के दो स्वामी होने की संभावना है; एक पुरुष के दो विवाह से इसकी संभावना नहीं है। एक स्त्री के दो स्वामी हों तो संतान का पितृ-निरूपण नहीं होता, पिता संतान का पालनकर्ता है।

अंतिम सूर्यमुखी है। अपने स्नेहमयी पत्नी के लिए मैं सौत का कांटा क्यों बोऊं? इसका उत्तर यह है कि सूर्यमुखी इस विवाह से दुःखी नहीं। उन्होंने स्वयं विवाह का प्रसंग उठाया है। उन्होंने मुझे इसमें प्रवृत्त किया है। वही इसका उद्योग कर रही हैं। तब और किसको आपत्ति है ?

'फिर किसलिए मेरा यह विवाह निन्दनीय है ?'

कमलमणि पत्र पढ़कर बोली, 'किस कारण से निन्दनीय है यह परमात्मा जानें; परन्तु यह कैसा भ्रम है ? पुरुष शायद कुछ नहीं समझते। जो हो, आप तैयारी करें। हम लोगों को गोविन्दपुर जाना ही होगा।'

'क्या तुम विवाह को रोक सकोगी ?'

'मैं रोक सकूंगी तो भैया के सामने मरूंगी।'

'यह तुम न कर सकोगी। अपनी नई भौजाई की नाक काटकर ला सकती हो। चलो, इसी उद्देश्य से चलें।'

दोनों गोविन्दपुर जाने की तैयारी करने लगे। दूसरे दिन सवेरे नाव की सवारी से गोविन्दपुर की यात्रा की और यथासमय वहां पहुंच गए।

मकान में जाने से पूर्व ही दासियों से भेंट हुई। कितनी ही स्त्रियां कमलमणि को नाव से उतारने आई थीं। उन्हें और उनके पति को व्यग्रता थी कि विवाह हो गया या नहीं। परन्तु दोनों में से किसी ने भी किसी से यह बात नहीं पूछी। यह लज्जा की बात थी। वे कैसे लोगों से यह बात पूछते ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत घबराहट के साथ कमलमणि ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। घर में प्रवेश कर उन्होंने पूछा, 'सूर्यमुखी कहां है ?'

दासियों ने बता दिया कि सूर्यमुखी शयनागृह में है। कमलमणि दौड़कर उधर गई।

उसने पहिले किसी को न देखा। क्षण भर इधर-उधर देखा। अन्त में देखा कि घर के कोने में एक बन्द खिड़की के पास सिर झुकाकर एक स्त्री बैठी थी। कमलमणि को उसका मुंह दिखाई न दिया, परन्तु पहिचान गई कि वह सूर्यमुखी ही थी। सूर्यमुखी उसके पैर की आवाज सुनकर उठकर उसके पास आई। सूर्यमुखी को देखकर कमलमणि यह पूछ न सकी कि विवाह हो गया या नहीं। सूर्यमुखी के कन्धे की हड्डी निकल आई थी। देवदारू की तरह सूर्यमुखी का शरीर धनुष समान झुक गया था। सूर्यमुखी की खिले कमल जैसी आंखें धंस गई थीं। सूर्यमुखी का चांद जैसा मुंह लम्बा पड़ गया था। कमलमणि समझ गई कि विवाह हो गया। उसने पूछा, 'कब हुआ ?'

सूर्यमुखी ने कहा, 'कल।'

उस समय वहां दोनो औरतें बैठी चुपचाप रोने लगीं। किसी ने कुछ नहीं कहा। सूर्यमुखी कमल की गोद में मुंह छिपाकर रोने लगी। कमलमणि के आंसू उसकी छाती और बालों पर गिरने लगे।

जब तीसरे प्रहर दोनों आपस में स्पष्ट बातें करने में समर्थ हुईं तो सूर्यमुखी ने कमलमणि को कुन्दनन्दिनी के विवाह का आमूल वृत्तांत परिचय दिया। उसे सुनकर कमलमणि ने आश्चर्य से कहा, 'तो यह विवाह तुम्हारे ही प्रयत्न से हुआ है। तुमने अपनी मृत्यु का उद्योग आप ही क्यों किया ?'

सूर्यमुखी बोली, 'मैं कौन हूं ? जरा अपने भाई को तो देख आओ। उस आह्लादपूर्ण चेहरे को देख आओ, तब समझना कि वह कैसे सुखी हैं। मैंने अपनी आंखों से जो उनके मुख को देखा, तो क्या उससे मेरा जीवन सार्थक नहीं हुआ ? मैं किस सुख की आशा से उन्हें दुखी रखती ? जिनके एक क्षण के दुःख से मैं मरने की इच्छा करती थी, उन्हें मर्मान्तक दुःख देकर मैं क्या करती ? वह त्यागी होने का उद्योग कर रहे थे। उससे मुझे क्या सुख था? मैंने कहा मुझे तुम्हारे सुखमें ही सुख है। तुम कुन्द से विवाह कर लो।'

'और तुम सुखी हुईं ?'

'अब मेरी बात क्यों पूछती हो ? मैं कौन हूं ? यदि कभी पति के पैर में कंकड़ धंसा देखा है, तो मेरे मन में यही आया है कि मैंने वहां अपनी छाती क्यों नहीं रख दी ? पति मेरी छाती पर पैर रखकर जाते।'

सूर्यमुखी चुप रह गई। उसकी आंखों के आंसुओं से कपड़ा भीग गया। उसने पूछा, 'किस देश में लड़कियां होने से लोग उन्हें मार डालते हैं ?'

कमल बोली, 'क्या लड़की होने से यह होता है ? यह सब तो भाग्य से होता है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरे भाग्य से बढ़कर किसका भाग्य था? ऐसी भाग्यवती और कौन है ? किसे ऐसा स्वामी मिला है ? रूप, ऐश्वर्य, सम्पदा तो तुच्छ बातें हैं, इतने गुण किसके पति में हैं ? मेरा भाग्य बुरा नहीं है, फिर ऐसा क्यों हुआ ?'

'यह भी भाग्य ही है।'

'तब इस ज्वाला से मन क्यों जलता है ?'

'तुम आज अपने पति का मुंह आह्लादपूर्ण देखकर सुखी हो। फिर भी कहती हो कि इस ज्वाला से मन जलता है ? क्या ये दोनों ही बातें सच हैं ?'

'दोनों ही सच हैं। मैं उनके सुख से सुखी हूं, परन्तु उन्होंने मुझे पैर से ठुकरा दिया है। मुझे ठुकराने से ही उन्हें इतना सुख है।' आगे सूर्यमुखी कुछ न कह सकी। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया और आंखें भर आईं।' सूर्यमुखी की बातों का अर्थ कमलमणि समझ गई। उसने कहा, 'तुम्हें पैर से ठुकराया है, इसलिए तुम्हें जलन हो रही है। तब क्यों कहती हो कि मैं कौन हूं ? तुम्हारे हृदय का आधा भाग आज भी 'मैं' से भरा है; नहीं तो आत्मविसर्जन करने से अनुताप क्यों ?'

'अनुताप नहीं करती, अच्छा ही किया, इसमें कोई संशय नहीं। परन्तु मरने की यंत्रणा तो होती ही है। अपना मरना ही अच्छा समझ कर मैं अपने हाथों आप मरी हूं। इससे क्या मरते समय तुम्हारे आगे रोऊं भी नहीं ?'

सूर्यमुखी रो दी। कमल उसके सिर को अपनी गोद में लेकर हाथ से पकड़े रही। बातों से सारी बातें प्रकट नहीं हो रही थीं। हृदय-ही-हृदय में बातें चल रही थीं। कमलमणि समझ रही थी कि सूर्यमुखी कितनी दुःखी है। सूर्यमुखी समझ रही थी कि कमलमणि उसके दुःख को समझ रही थी।

दोनों ने रोना छोड़कर आंखें पोंछीं। सूर्यमुखी ने अपनी बात को छोड़कर अन्य बातें चलाईं। सतीश को प्यार किया और उससे बातचीत की। कमल के साथ सूर्यमुखी की बातें हुईं। अधिक रात तक दोनों ने बातचीत की। अन्त में सूर्यमुखी ने स्नेह के साथ कमल का आलिंगन कर सतीश को गोद में ले उसका मुख चूमा। विदा होते समय सूर्यमुखी की आंखों से फिर आंसू बह चले। उन्होंने सतीश को आशीर्वाद दिया, 'तुम अपने मामा की तरह गुणवान हो। इससे बड़ा आशीर्वाद मैं और नहीं जानती।'

सूर्यमुखी ने स्वाभाविक स्वर में बातें की थीं, परन्तु फिर भी उसके कण्ठ-स्वर से कमलमणि चौंक पड़ी। वह बोली, 'भाभी ! तुम्हें क्या हो रहा है ?'

'कुछ भी तो नहीं कमल !'

कमलमणि विश्राम करने चली गई। सूर्यमुखी की एक ही बात छिपाने की थी। वह कमल सवेरे ही जान सकी। उसने सवेरे सूर्यमुखी के शयनागार में जाकर देखा कि सूर्यमुखी वहां नहीं थी। शय्या पर एक पत्र पड़ा था। पत्र देखते ही कमलमणि का सिर चकरा गया। पत्र बिना पढ़े ही वह सब समझ गई कि सूर्यमुखी चली गई। वह अपने सिर पर हाथ रखकर शय्या पर बैठ गई। उसने कहा, 'मैं कल यहां से जाने के समक्ष क्यों न समझी ?' सतीश भी अपनी मां को रोती देखकर रो पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13

कमलमणि ने पत्र खोलकर पढ़ा। पत्र कमल के ही नाम लिखा गया था।

'जिस दिन मैंने पति देवता स्वामी के मुंह से सुना कि उन्हें मुझसे अब कोई सुख नहीं है, वह कुन्दनन्दिनी के लिए पागल हो जाएंगे, प्राण त्यागेंगे, उसी दिन मैंने मन में संकल्प किया कि यदि कुन्दनन्दिनी को पाऊंगी तो उसे स्वयं से स्वामी को समर्पित कर, उन्हें सुखी करूंगी। कुन्दनन्दिनी को उन्हें देकर यह घर छोड़ने का निश्चय भी उसी दिन कर लिया था। अब कुन्दनन्दिनी को पति देवता के सुपुर्द करके स्वयं घर छोड़कर जा रही हूं।

कल विवाह होने के पश्चात् रात्रि में ही घर छोड़ जाती, परन्तु पति की जिस सुख-कामना के लिए मैंने अपना वध किया था, उसे दो-एक दिन अपनी आंखों से देखकर जाने की इच्छा थी और तुम्हें भी देखकर जाना चाहती थी। इसीलिए तुम्हें आने को लिखा था। मैं जानती थी कि तुम अवश्य आओगी। मेरी दोनों इच्छाएं पूर्ण हुईं। मेरे प्राण पति सुखी हैं, तुमसे विदा ले चुकी, अब मैं जाती हूं।

तुम्हें यह पत्र मिलने तक मैं बहुत दूर चली जाऊंगी। तुमसे कहा नहीं इसलिए कि तुम मुझे जाने न देतीं। अब तुमसे यही भिक्षा मांगती हूं कि मेरी खोज न करना। भरोसा नहीं कि फिर तुमसे भेंट होगी। कुन्दनन्दिनी के रहते मैं अब भिखारिनी बनकर देश-विदेश फिरूंगी, भिक्षा मांगकर जीवन व्यतीत करूंगी। मेरा सब गहना तिजोरी में रखा है; ताली तकिए के नीचे रखी है। गहने पति-देवता को देकर कहना कि उन्हें कुन्द को दे देंगे।

तुम मेरा एक काम और करना। मेरे पति के चरणों में मेरा प्रणाम कहना। मैंने उन्हें पत्र लिखने की बहुत चेष्टा की, परन्तु लिख न सकी। जो मुझे उनसे कहना था वह लिख न सकी। तुम उचित समझो तो मेरा समाचार उन्हें दे देना। उनसे कहना कि मैं उन पर क्रोध करके नहीं जा रही हूं। मैंने उन पर कभी क्रोध नहीं किया, कभी नहीं करूंगी। उनके ऊपर जो अचल भक्ति थी, वह अब भी है और जब तक मिट्टी में न मिलूंगी, तब तक बनी रहेगी। उनके सहस्र गुणों को मैं कभी भूल न सकूंगी। मैं उनकी दासी हूं। जन्म भर के लिए स्वामी से विदा होकर जा रही हूं।

तुमसे भी जन्म भर के लिए विदा होती हूं। आशीर्वाद देती हूं कि तुम, तुम्हारे स्वामी और पुत्र दीर्घजीवी हों, तुम सदा सुखी रहो। तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि जिस दिन तुम स्वामी के प्रेम से वंचित हो, उसी दिन तुम्हारी आयु समाप्त हो। मुझे यह आशीर्वाद किसी ने नहीं दिया।'

नगेन्द्र को परमात्मा ने सब सुखों का स्वामी बनाकर पृथ्वी पर भेजा था। सौन्दर्य, अतुल सम्पत्ति, निरोग बदन, विद्या, सुशील चरित्र स्नेहमयी पत्नी प्रदान की थी। नगेन्द्र अपने चरित्र-गुण से सुखी थे। वह सत्यवादी और प्रिय भाषी थे, परोपकारी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायनिष्ठ थे। वह स्नेहशील और कर्त्तव्य-परायण थे। माता-पिता के भक्त थे और पत्नी के प्रति अनुरक्त थे। वह अपने मित्रों के हितकारी और नौकरों के प्रति कृपा-भाव रखते थे। वह शत्रु के प्रति भी दुर्भावना नहीं रखते थे। उनका देश में सम्मान और विदेश में ख्याति थी। सूर्यमुखी पर उनका परम प्रेम था।

कुन्दनन्दिनी को देखने के पूर्व नगेन्द्र कभी किसी स्त्री पर आसक्त नहीं हुए थे। लगातार सुख का होना भी कभी-कभी दुःख का कारण बन जाता है।

नगेन्द्र के कानों में सूर्यमुखी के चले जाने की सूचना पड़ी तो वह व्याकुल हो उठे। उनके मन का सारा सुख स्वप्न की भांति समाप्त हो गया।

सूर्यमुखी की खोज के लिए आदमी भेजने की हलचल मच गई। नगेन्द्र ने चारों ओर आदमी दौड़ाये। दासियां पानी के घड़े फेंककर दौड़ीं। आत्मीय लोग गाड़ी लेकर इधर-उधर दौड़े। गांव के लोग खेत और घाट पर खोजने-देखने लगे। ज्योतिषी के घर, शिव-मन्दिर के दालान में, अन्यान्य ऐसे ही स्थानों पर लोग-बाग विचार करने लगे।

श्रीशचन्द्र कमल को भरोसा देने लगे, 'वह कहां जाएंगी ? पाव आध कोस चलकर कहीं बैठ गई होंगी। अभी पता चल जाएगा।' परन्तु जब तीन घण्टे बीत गए और सूर्यमुखी का कोई पता न चला तो नगेन्द्र स्वयं उनकी खोज में निकले। कुछ देर धूप में चलने पर उन्होंने मन में कहा, 'मैं यहां ढूंढ़ता हूं, परन्तु हो सकता है सूर्यमुखी घर पहुंच गई हो।' यह सोचकर वह लौट पड़े। घर आकर देखा तो सूर्यमुखी का कोई पता नहीं था। वह फिर बाहर निकले, परन्तु फिर लौट आए। इसी तरह दिन बीत गया।

श्रीशचन्द्र ने जो कहा था, वही सही निकला। सूर्यमुखी कभी पैदल घर से बाहर नहीं गई थी। मकान से आधा कोस दूर एक पुष्करिणी के किनारे जाकर वह थककर लेट गई। एक रसोईदार ने पता लगाते-लगाते वहां जाकर उन्हें देखा। वह उन्हें पहिचानकर बोला, 'जी, आप घर चलिए।'

सूर्यमुखी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने फिर कहा, 'चलिए, सब लोग बहुत घबराए हुए हैं।' तब सूर्यमुखी बोली, 'मुझे लौटाने वाला तू कौन है ?' वह डरा परन्तु खड़ा रहा। सूर्यमुखी बोली, 'यदि तू यहां खड़ा रहेगा, तो मैं पोखर में डूब मरूंगी।'

रसोईदार चल पड़ा और उसने नगेन्द्र को समाचार दिया। नगेन्द्र पालकी लेकर स्वयं वहां आए, परन्तु सूर्यमुखी वहां न मिलीं। समीप में खोज की, परन्तु कहीं कोई पता न चला।

सूर्यमुखी वहां से उठकर एक वन में चली गई थीं। वहां एक बूढ़ी से उनकी भेंट हुई। वह लकड़ी बटोरने आई थी। उसने सुना था कि सूर्यमुखी का पता लगाने पर पुरस्कार मिलेगा, इसलिए वह भी खोज में थी। उसने सूर्यमुखी को देखकर पूछा, 'तुम कौन हो ? मालकिन हो क्या ?'

'नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हां, तुम्हीं मालकिन हो।'

'तुम्हारी मालकिन कौन हैं ?'

'बाबू घराने की बहूजी।'

'मेरे शरीर पर क्या सोना लदा है, जो मैं बाबुओं के घर की बहू हूं ?'

बूढ़ी ने सोचा कि बात सही थी। वह लकड़ी चुनती हुई दूसरे वन में निकल गई।

पूरा दिन व्यर्थ गया। रात को भी कोई पता न चला। दूसरे दिन, तीसरे दिन भी कोई पता न चला। फिर भी खोज में कोई कमी न हुई। ढूंढ़ने वाले सूर्यमुखी को पहिचानते नहीं थे।

श्रीशचन्द्र ने कलकत्ते में जाकर ढूंढ़ना आरम्भ किया। कमलमणि गोविन्दपुर में ही रहकर खोज कराने लगीं।

14

कुन्दनन्दिनी ने जिस सुख की अभिलाषा भी नहीं की थी उसे वह सुख मिला। वह नगेन्द्र की स्त्री हो गई। सूर्यमुखी चली गईं तो उसके मन में पछतावा हुआ। उसने अपने मन में कहा, 'कैसे कुसमय में सूर्यमुखी ने मेरी रक्षा की थी। वह रक्षा न करतीं तो पता नहीं मैं कहां जाती ? आज वह मेरे लिए गृह त्यागकर चली गईं। मैं सुखी न होकर मर जाती तो अच्छा था।'

तीसरे प्रहर नगेन्द्र शय्या पर लेटे थे। कुन्दनन्दिनी उनके सिरहाने बैठकर पंखा झल रही थी। दोनों चुप थे। सम्पूर्ण सुख होने पर ऐसा नहीं होता।

सूर्यमुखी के जाने के बाद इन लोगों को सम्पूर्ण सुख नहीं रहा। कुन्दनन्दिनी अपने मन में सोचती, 'क्या करूं, जिससे मैं जैसी थी, वैसी ही हो जाऊं ?' कुन्दनन्दिनी ने पूछा, 'क्या करने से हम जैसे थे फिर वैसे ही हो सकते हैं ?'

नगेन्द्र चिढ़कर बोले, 'जैसी थीं, वैसी ही हो जाओ। क्या मुझसे विवाह करके तुम पछता रही हो ?'

कुन्दनन्दिनी ने व्यथित होकर कहा, 'तुमने विवाह करके मुझे सुखी किया है। इसकी मुझे आशा भी नहीं थी। मैं यह नहीं कह रही हूं। मैं कह रही थी कि सूर्यमुखी कैसे आएंगी ?'

'इस बात को जबान पर न लाओ। तुम्हारे मुंह से सूर्यमुखी का नाम सुनकर मेरे हृदय में जलन होती है। तुम्हारे ही कारण तो सूर्यमुखी मुझे त्यागकर गई है।;

कुन्दनन्दिनी यह जानती थी, परन्तु नगेन्द्र के ऐसा कहने पर कुन्दनन्दिनी व्यथित हुई। उसने सोचा कि यह उसका तिरस्कार है। उसका भाग्य खराब है। परन्तु उसने कोई दोष नहीं किया। सूर्यमुखी ने ही तो यह विवाह कराया था। कुन्दनन्दिनी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात न कहकर पंखा झलती रही। कुन्दनन्दिनी को चुप देखकर नगेन्द्र बोले, 'बोलती क्यों नहीं ? क्या नाराज हो गईं ?'

'नहीं।'

'केवल नहीं कहकर फिर चुप हो गईं। क्या तुम अब मुझसे प्रेम नहीं करतीं ?'

'करती क्यों नहीं ?'

'करती क्यों नहीं, यह तो बच्चों को बहलाने जैसी बात है कुन्द ! शायद तुम मुझसे कभी प्रेम नहीं करती थीं।'

'मैं आपको हमेशा से प्रेम करती आई हूं।'

नगेन्द्र समझकर भी न समझे कि वह क्या कह रही थी। सूर्यमुखी के प्रेम से कुन्दनन्दिनी के प्रेम में कोई कमी नहीं थी, परन्तु कुन्द बातें करना नहीं जानती थी। तब फिर क्या बोले ? नगेन्द्र उसे नहीं समझे। वह बोले, 'सूर्यमुखी मुझसे प्रेम करती थी।'

अब कुन्दनन्दिनी रोना न रोक सकी। वह उठकर बाहर चली गई। वहां ऐसा कोई नहीं था, जिसके सामने रोए। कमलमणि के पास कुन्द नहीं गई। वह अपने को इस विवाह की अपराधिनी समझकर लज्जा से उसके सामने मुंह नहीं दिखा सकी, परन्तु आज पीड़ा बहुत थी। वह कमलमणि के सामने कुछ कहने की इच्छा कर उसके पास गई। कमलमणि पहिले देखकर अप्रसन्न हुई, परन्तु पास आती देखकर विस्मित हुई। कुछ कहा नहीं। कुन्द उसके पास बैठकर रोने लगी। कमलमणि ने फिर भी कुछ नहीं कहा। पूछा भी नहीं कुछ। कुन्दनन्दिनी स्वयं ही चुप हो गई। कमलमणि; 'मुझे कुछ काम है' कहकर वहां से उठकर चली गई।

कुन्दनन्दिनी ने देखा कि सब सुखों की कोई-न-कोई सीमा है।

नगेन्द्र ने इस घटना के विषय में अपने मित्र हरदेव घोषाल को सविस्तार पत्र लिखा। उसके उत्तर में उनका पत्र आया, 'तुमने लिखा है कि तुमने जितने काम किए हैं, उनमें कुन्दनन्दिनी से विवाह सबसे भ्रांतिमूलक रहा। इसे मैं स्वीकार करता हूं। तुमने यह काम करके सूर्यमुखी को खो दिया। सूर्यमुखी को पत्नी के रूप में पाना तुम्हारे सौभाग्य की बात थी। कुन्दनन्दिनी अपने किसी गुण से भी सूर्यमुखी के स्थान की पूर्ति नहीं कर सकती।

फिर तुमने कुन्दनन्दिनी को उनके स्थान पर क्यों बिठाया ? एक भ्रांति को लेकर अब चेतना लौटी है। कुम्भकर्ण की नींद मरने के लिए खुली थी। क्या अब सूर्यमुखी को पाओगे ?

तुमने क्यों कुन्दनन्दिनी से विवाह किया ? क्या तुम उसे प्रेम करते थे ? प्रेम तो करते ही थे। उसके लिए तुम पागल हो रहे थे। तुम्हारे प्राण निकल रहे थे। किन्तु अब समझे कि वह केवल आंखों का प्रेम था। तुमने कोई पन्द्रह दिन हुए उससे विवाह किया है। क्या तुम अब भी सच कहो कि उससे प्रेम करते हो ? सूर्यमुखी कहां गई? सोचा था कि बहुत-सी बातें लिखूंगा, किन्तु आज आगे लिख न सका ! बड़ा कष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रहा है।

मैं तुम्हारे मन की दशा समझ रहा हूं। तुम कुन्दनन्दिनी को प्रेम करते थे, आज भी करते हो, परन्तु यह ठीक है कि वह आंखों का प्रेम था। सूर्यमुखी के साथ तुम्हारा हृदय का प्रेम था। वह कुन्दनन्दिनी की छाया से ढक गया था। सूर्यमुखी को खोकर तुम उसे समझे। जब तक सूर्य प्रकाशित रहता है, हम उसकी किरण से संतापित रहते हैं, बादल भले लगते हैं। परन्तु सूर्य के अस्त होने पर सूर्य का महत्व ज्ञात होता है। बिना सूर्य के संसार अन्धकारपूर्ण है। तुमने भयानक भूल की है, परन्तु मैं इसके लिए तुम्हारा तिरस्कार न करूंगा। तुम जिस भ्रम में थे, उसका दूर होना बहुत कठिन था। मन के दो भावों को लोभ और प्रेम कहते हैं। जिस अवस्था में दूसरे के सुख के लिए हम अपने सुख को त्यागने को उद्यत हो जाते हैं, उसे प्रेम कहते हैं। अन्यथा सब लोभ है। रूपवती से रूपवती की लालसा प्रेम नहीं है। भूखे का अन्न के प्रति आकर्षण प्रेम नहीं है। कामातुर का रूपवती के प्रति आकर्षण भी उसी तरह प्रेम नहीं है। सूर्यमुखी के प्रति तुम्हारा पति-प्रेम तुम्हारी आंखों से अदृश्य हो गया था। यही तुम्हारी भ्रांति थी। यह भ्रांति मनुष्य के अन्दर स्वभावसिद्ध है। इसलिए भी मैं तुम्हारा तिरस्कार न करूंगा। मैं तुम्हें राय दूंगा कि जो कुछ शेष है उसी पर संतोष करो।

तुम निराश न होना। सूर्यमुखी अवश्य आएगी। तुम्हें देखे बिना वह रह न सकेगी? जब तक नहीं आती, तब तक तुम कुन्दनन्दिनी से स्नेह करो। तुम्हारे पत्र से मैं जहां तक समझा हूं, वह भी गुणी है। मोह दूर होने पर स्थाई प्रेम का संचार होगा।

यह होने पर तुम उसे लेकर सुखी हो सकोगे। यदि सूर्यमुखी से फिर भेंट न हो, तो उसे भूल भी सकोगे। प्रेम का कभी अनादर न करना, क्योंकि प्रेम ही मनुष्य का एकमात्र सुख है।'

नगेन्द्र ने हरदेव घोषाल के पत्र का उत्तर दिया।

'तुम्हारा पत्र पाया। मानसिक क्लेश के कारण उत्तर देने में विलंब हुआ। तुम्हारी ही सलाह सत्य है, परन्तु मैं घर में मन को स्थिर नहीं कर सकता। सूर्यमुखी मुझे छोड़कर चली गई। उसका कोई समाचार नहीं मिला। वह जिस ओर गई है, मैंने भी उसी ओर जाने का निश्चय किया है। मैं भी गृह-त्याग करूंगा, देश-देश में उसे खोजता फिरूंगा। उसको पाऊंगा, तो लेकर घर आऊंगा, नहीं तो अब न आऊंगा। कुन्दनन्दिनी को लेकर घर में नहीं रह सकता। वह आंखों का कांटा बन गई है। उसका दोष नहीं, दोष मेरा ही है, परन्तु मैं उसका मुंह नहीं देख सकता। वह रोती है, मैं क्या करूं? मैं चला। शीघ्र ही तुमसे भेंट होगी। तुमसे मिलकर ही कहीं जाऊंगा।'

नगेन्द्र ने जो लिखा, वही किया। सम्पत्ति की देख-रेख दीवान पर छोड़कर पर्यटन के लिए निकल पड़े। कमलमणि कलकत्ते चली गई थी। कुन्दनन्दिनी अकेली दत्त-भवन में रह गई। हीरा दासी उसकी सेवा में नियुक्त हुई।

दत्त घराने में अन्धकार छा गया। यह महापुरी सूर्यमुखी और नगेन्द्र के चले जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अन्धकारपूर्ण हो गई। कुन्दनन्दिनी नगेन्द्र के चले जाने पर अकेली उस विस्तृत पुरी में बिना आशय के पड़ी रह गई और नगेन्द्र सूर्यमुखी की खोज में देश-देश घूमने लगे।

हीरा के हृदय में देवेन्द्र के प्रति प्रेम की ज्वाला सुलग रही थी। उसकी ज्वाला कई बार बहुत तीव्र हुई और उसने धर्म तथा लोक-लज्जा को भस्म करना चाहा, परन्तु देवेन्द्र के स्नेहहीन इन्द्रिय दास-चरित्र की स्मृति से वह रुक गई। हीरा चित्त-संयम में विशेष दक्षता रखती थी। इसीलिए वह अब तक सती बनी हुई थी। इसी के प्रभाव से वह देवेन्द्र के प्रति प्रबल अनुराग को दबाए हुए थी। इसीलिए हीरा ने दुबारा दासी का काम करना स्वीकार किया था। उसने सोचा था कि वह काम में लगी रहकर अनुराग के डंक की ज्वाला को भुला सकेगी। नगेन्द्र जब कुन्दनन्दिनी को गोविंदपुर में छोड़कर पर्यटन के लिए चले, तो हीरा ने नौकरी की याचना की। कुन्द की इच्छा समझकर नगेन्द्र हीरा को कुन्दनन्दिनी की दासी नियुक्त कर गए थे।

हीरा के फिर से दासी बनने का एक और भी कारण था। हीरा ने अर्थ की कामना से कुन्द को नगेन्द्र की प्रियतमा समझ अपने वश में करने का यत्न किया था। उसने सोचा था नगेन्द्र का धन कुन्द को मिलेगा और कुन्द के हाथ का अर्थ हीरा का हाथ होगा। अब वही कुन्द नगेन्द्र की गृहणी थी, परन्तु अर्थ पर उसका विशेष अधिकार नहीं था। अब हीरा को अर्थ की विशेष इच्छा भी नहीं थी। वह कुन्द से मिले धन को विष के समान समझने लगी थी।

हीरा अपने निष्फल प्रणय को सहन कर सकती थी, परन्तु कुन्दनन्दिनी के प्रति देवेन्द्र के अनुराग को वह न सह सकी। जब हीरा ने सुना कि नगेन्द्र देश घूमने जाएंगे और कुन्दनन्दिनी घर में गृहिणी होकर रहेगी, तो वह हरिदासी वैष्णवी के आने-जाने की राह में पहरेदारिन बन गई।

हीरा ने कुन्दनन्दिनी के मंगल के लिए यह सब नहीं किया। ईर्ष्यावश हीरा कुन्दनन्दिनी की मंगल-कामना तो दूर रही, उसका मरना देखकर भी प्रसन्न होती। कुन्द के साथ देवेन्द्र की भेंट न हो, इसी ईर्ष्या से हीरा ने कुन्द को अपने पहरे में रखा।

हीरा कुन्द के लिए यन्त्रणा की मूल बन गई। कुन्द ने देखा कि हीरा के आदर-ममता नहीं थी। उसने देखा कि हीरा दासी होकर भी उसके प्रति अश्रद्धा रखती थी। वह उसे अपमानित भी करती थी। कुन्द बहुत ही शांत स्वभाव की थी। हीरा के व्यवहार से दुःखी होकर भी कभी उससे कुछ न कहती थी। कुन्द शीतल और हीरा उग्र प्रकृति की थी। कुन्द मालकिन होकर भी हीरा के आगे दासी की तरह रहने लगी। स्त्री-गृह की अन्य दासी कभी-कभी कुन्द की यन्त्रणा देखकर हीरा का तिरस्कार करतीं, परन्तु हीरा के आगे किसी की न चलती। दीवान जी ने यह सब सुनकर हीरा से कहा, 'तू निकल जा यहां से। मैंने तुझे जवाब दिया।'

हीरा बोली, 'तुम जवाब देने वाले कौन हो ? मुझे मालिक रख गए हैं। मालिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का जवाब न मिलने से मैं न जाऊंगी।' यह सुनकर दीवानजी ने अपमान के भय से फिर कुछ न कहा। हीरा बलात् बनी रही। केवल सूर्यमुखी ही हीरा को शासन में रख सकती थी।

एक दिन हीरा अकेली लता-मण्डप में सोई हुई थी। नगेन्द्र और सूर्यमुखी के जाने के बाद लता-मण्डप हीरा के अधिकार में आ गया था। सन्ध्या को आकाश में पूर्ण चन्द्र शोभा दे रहे थे। उद्यान के वृक्ष और पत्तों पर उसकी चांदनी फैल रही थी। पत्तियों के बीच से छनकर चंद्रिका पत्थरों पर पड़ रही थी। बाग के फूलों का सौरभ आकाश में भरा था। तभी हीरा को लता-मण्डप में एक पुरुष-आकृति दिखाई दी। उसने देखा, वह देवेन्द्र था, नकली वेश में नहीं, अपने असली वेश में।

'आप हैं ! बहुत बड़ा दुःसाहस किया है। कोई देख लेगा तो आप मारे जाएंगे।'

'जहां हीरा है, वहां मुझे कोई भय नहीं।' यह कहकर वह हीरा के पास बैठ गए। हीरा बोली, 'यहां क्यों आए ? जिसकी आशा से आए हो, उससे भेंट न होगी।'

'उसे तो पा चुका हूं। मैं तुम्हारी ही आशा से यहां आया हूं।'

हीरा अप्रतारित हंसकर बोली, 'मैं नहीं जानती थी कि मेरा भाग्य इतना प्रसन्न हुआ है। यदि मेरा ही भाग्य पलटा है, तो ऐसे स्थान पर चलिए जहां निष्कण्टक बैठकर आपसे बातें कर सकूं। यहां बहुत से विघ्न हैं।'

'कहां चलूं ?'

'जहां कोई भय न हो। अपने निकुंज में चलिए।'

'तुम मेरे लिए कोई भय न मानना।'

'आपके लिए भय नहीं। मुझे अपने लिए भय है। मुझे कोई आपके पास देख लेगा, तो मेरी क्या गति होगी ?'

'तो चलो। क्या तुम्हारी नई गृहिणी से कुछ बातचीत न हो सकेंगी ?'

यह सुनकर हीरा का तन-बदन जल उठा, परंतु शांत भाव से बोली, 'उनसे कैसे भेंट होगी ?'

देवेन्द्र विनीत भाव से बोले, 'तुम्हारी कृपा से क्या नहीं हो सकता ?'

'तब आप यहीं बैठें मैं उन्हें बुला लाती हूं।'

यह कहकर हीरा लता-मण्डप से बाहर निकली। कुछ दूर जाकर वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। उसका कण्ठ रुद्ध हो गया और आंखों से आंसू बहने लगे। फिर वह उठकर मकान में गई, परन्तु कुन्दनन्दिनी के पास नहीं गई। वह दरबानों से बोली, 'तुम लोग उधर जाओ। बाग में कोई चोर आया है।'

चौकीदार लोग अन्तःपुर की राह से बाग की ओर दौड़े। देवेन्द्र दूर से ही उन्हें अपनी ओर आते देखकर वहां से निकलकर भागे। चौकीदार कुछ दूर उनके पीछे भागे। उन लोगों ने देवेन्द्र को देखकर भी पकड़ा नहीं, परन्तु देवेन्द्र तिरस्कृत हो गए। दरबानों द्वारा 'ससुरा', 'साला' आदि शब्द उन्होंने सुने।

उस दिन देवेन्द्र ने घर जाकर दो संकल्प किए। प्रथम यह कि हीरा के रहते दत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के घर न जाएंगे। दूसरे, हीरा को इसका आनन्द चखाएंगे।

15

बरसात के दिन थे। सारा दिन वृष्टि हुई थी। आकाश पर मेघ छाए हुए थे। जिधर मार्ग था, उधर फिसलन बहुत थी। मार्ग में कोई आदमी नहीं था। एक व्यक्ति पथ पर चल रहा था। गेरुए कपड़े, गले में रुद्राक्ष, कपाल में चन्दन की रेखा, जटा का आडम्बर नहीं, छोटे-छोटे बाल थे। एक तो बादलों का अंधकार और उस पर फिर रात हो गई थी। रात में कहां राह-कुराह थी, कुछ पता न था। फिर भी पथिक चला जा रहा था।

बहुत रात हो गई। वृक्षों का ऊपरी हिस्सा केवल स्तूप-सा दिखाई देता था। पानी बरस रहा था। बीच-बीच में कभी-कभी बिजली चमक जाती थी।

'माता !' अंधकार में ब्रह्मचारी ने यह शब्द सुना। शब्द मनुष्य के मुंह से निकला जान पड़ा। शब्द बहुत ही व्यथापूर्ण था। ब्रह्मचारी राह में चुपचाप खड़ा हो गया। कुछ देर में फिर बिजली चमकी। बिजली चमकने पर पथिक ने देखा कि राह के किनारे कुछ पड़ा था। 'तुम कौन हो, जो राह में पड़े हो ?'

कोई उत्तर नहीं आया। फिर पूछा। इस बार अस्फुट स्वर सुना। ब्रह्मचारी छाता और छड़ी एक ओर रखकर उधर बढ़ा। शीघ्र ही उसके हाथ से मनुष्य-बदन का स्पर्श हुआ। 'तुम कौन हो ?' यह कहकर उसके जूड़ों का स्पर्श किया। मुंह से निकला, 'दुर्गे ! यह तो स्त्री है।'

ब्रह्मचारी ने उस स्त्री को गोद में उठा लिया। छाता और छड़ी वहीं छोड़े ब्रह्मचारी राह छोड़कर मैदान पार करता हुआ बस्ती की ओर चला। वह प्रदेश की राह, घर और बस्ती से परिचित था।

ब्रह्मचारी एक कुटी में पहुंचे। अचेत स्त्री को लिए कुटी पर आवाज दी, 'बच्चा हर ! तुम घर में हो ?' कुटी के अन्दर से एक स्त्री ने कहा, 'यह तो महाराज जी की आवाज है। महाराज आई ?'

ब्रह्मचारी बोले, 'शीघ्र दरवाजा खोलो।'

हरमणि ने कुटी का द्वार खोला। ब्रह्मचारी ने उससे दीपक जलाने को कहा। स्त्री को जमीन पर लिटा दिया। हरमणि ने दीपक जलाया और स्त्री को देखा।

देखा स्त्री बूढ़ी नहीं थी, परन्तु उसके शरीर की अवस्था से आयु का ज्ञान नहीं होता था। उसका बदन बहुत दुर्बल था। उसका गीला कपड़ा बहुत मैला था और उसमें सैकड़ों छेद थे। आंखें अन्दर को धंस गई थीं। उसकी सांस चल रही है, परन्तु चेतना नहीं थी। जान पड़ता था मृत्यु समीप थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरमणि ने पूछा, 'यह कौन है, कहां थी ?'

ब्रह्मचारी ने परिचय देकर कहा, 'इसकी मृत्यु समीप दिखाई देती है। सेंक करने से बचे, तो बचे। मैं जैसा कहता हूं वैसा करो।'

हरमणि ने ब्रह्मचारी की आज्ञानुसार उसके गीले कपड़े बदले। अपना सूखा वस्त्र पहिनाया। सूखे कपड़े से उसका सिर पोंछा। आग जलाकर सेंका। ब्रह्मचारी बोले, 'जान पड़ता है भूखी है। घर में दूध हो तो थोड़ा दूध पिलाने की चेष्टा करो।'

हरमणि ने दूध गरम करके थोड़ा उस स्त्री को पिलाया। स्त्री ने पिया। पेट में दूध जाने पर उसने आंखें खोलीं। हरमणि ने देखकर पूछा, 'मां, तुम कहां से आ रही थीं ?'

'मैं कहां हूं ?' उसने कहा।

ब्रह्मचारी ने कहा, 'मैं तुम्हें राह में पड़ी देखकर यहां ले आया था। तुम कहां जाओगी ?'

'बहुत दूर।'

'तुम्हारे हाथ में चूड़ियां हैं। क्या तुम सधवा हो ? तुम्हें क्या कहकर बुलाऊं ? तुम्हारा क्या नाम है ?'

'मेरा नाम सूर्यमुखी है।'

ब्रह्मचारी ने दूसरे दिन गांव के वैद्य को बुलाया। वैद्यजी ने बीमारी का लक्षण देखकर कहा, 'इसे कास रोग है। उस पर बुखार आ रहा है। बीमारी संघातिक है, फिर भी बच सकती है।'

ये बातें सूर्यमुखी के सामने नहीं हुईं। वैद्यजी ने दवा की व्यवस्था की। वैद्य के विदा होने पर हर ब्रह्मचारी ने हरमणि को दूसरे काम से भेज दिया और विशेष बातचीत के लिए वह सूर्यमुखी के पास आकर बैठ गए। सूर्यमुखी बोली, 'महाराज, आप मेरे लिए इतनी चेष्टा क्यों कर रहे हैं ? मेरे लिए कष्ट न करें।'

'मुझे कष्ट काहे का ? यह तो मेरा धर्म है। मैं ब्रह्मचारी हूं। परोपकार ही मेरा धर्म है। आज यदि तुम्हारे काम में नियुक्त न रहता तो तुम्हारी जैसी और किसी के काम में होता।'

'तब मुझे छोड़कर आप किसी अन्य के उपकार में नियुक्त हों। आप दूसरों का उपकार कर सकेंगे। मेरा उपकार कर न सकेंगे।'

'क्यों ?'

'बचने में उपकार नहीं है, मरने में ही मेरा मंगल है। कल रात जब राह में पड़ी थी तो बहुत आशा थी कि मैं मर जाऊंगी। आपने मुझे क्यों बचाया ?'

'मैं नहीं जानता कि तुम्हें क्या दुःख है, परन्तु दुःख कितना भी हो, आत्महत्या महापाप है। आत्महत्या कभी न करना। आत्महत्या में पर हत्या जैसा पाप है।'

'मैंने आत्महत्या करने की चेष्टा नहीं की। मेरी मृत्यु स्वयं आकर उपस्थित हुई थी। इसीलिए भरोसा कर रही थी, परन्तु मरने में भी मुझे आनन्द नहीं है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मरने में भी आनन्द नहीं है।' कहते-कहते सूर्यमुखी का कण्ठ रुद्ध हो गया। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

ब्रह्मचारी बोला, 'मैंने देखा कि तुमने जितनी बार मरने की बात कही, उतनी बार तुम्हारी आंखों से आंसू गिरे। फिर भी तुम मरना चाहती हो। मुझे तुम अपनी सन्तान के समान समझो। मुझे पुत्र समझकर मन की बातें कहो। तुम्हारे दुःख-निवारण का कोई उपाय होगा तो मैं उसे करूंगा। यही कहने के लिए मैंने हरमणि को विदा किया था। ज्ञात होता है कि तुम किसी अच्छे घराने की लड़की हो। तुम्हारे मन में जो पीड़ा है, उसे मैं समझता हूं।'

ब्रह्मचारी बोले, 'तुम्हारे पति कहां हैं ? इस समय तुम्हें उनके पास ले जाने का उपाय नहीं, परन्तु यदि समाचार देने से वह यहां आ सकें, तो मैं उन्हें पत्र द्वारा समाचार दूं।'

सूर्यमुखी के चेहरे पर हर्ष का विकास हुआ। वह बोली, 'वह आना चाहें तो आ सकते हैं, परन्तु नहीं जानती कि आएंगे या नहीं। मैं उनके आगे बहुत बड़े अपराध की अपराधिनी हूं। फिर भी वह दयावान हैं। वह क्षमा करना चाहें तो कर सकते हैं, परन्तु वह बहुत दूर हैं। क्या मैं तब तक बचूंगी ?'

'कितनी दूर हैं ?'

'हरिपुर जिले में।'

'बचोगी क्यों नहीं ?'

ब्रह्मचारी कागज-कलम ले आए और सूर्यमुखी के कहने के अनुसार निम्नलिखित पत्र लिखा।

'मैं आपका परिचित नहीं हूं। मैं एक ब्रह्मचारी हूं। मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं। केवल यही जानता हूं कि श्रीमती सूर्यमुखी आपकी भार्या हैं। वह मधुपुर गांव में, रोग ग्रस्त, हरमणि वैष्णवी के मकान पर हैं। उनकी दवा हो रही है, परन्तु बचने की आशा नहीं है। यही समाचार देने के लिए आपको यह पत्र लिखा है। उनकी इच्छा मरने से पूर्व एक बार आपका दर्शन करने की है। यदि आप उनका अपराध क्षमा कर दें तो यहां आएं। मैं उन्हें माता कहता हूं। पुत्र के रूप में उनकी आज्ञा से मैंने यह पत्र लिखा है। उनमें स्वयं लिखने की शक्ति नहीं है।

यदि आप आएं तो रानीगंज की राह से आएं। रानीगंज से श्रीमान माधवचन्द्र गोस्वामी, मेरा नाम लेने पर, आपके साथ आदमी की व्यवस्था कर देंगे। आपको भटकना न पड़ेगा।

आना हो तो शीघ्र आएं। देर होने से कार्य सिद्ध न होगा।

शिवप्रसाद।'

'पता क्या लिखूं ?'

'हरमणि के आने पर कहूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरमणि के आने पर नगेन्द्र दत्त का नाम पता लिखकर ब्रह्मचारी समीप के डाकखाने में पत्र छोड़ने गए।

ब्रह्मचारी जब पत्र लेकर डाकखाने की ओर गए तो सूर्यमुखी ने हाथ जोड़कर परमात्मा से भिक्षा मांगी, 'हे प्रभु ! यदि तुम सत्य हो और मुझमें पति-भक्ति है, तो यह पत्र सफल हो। मैं स्वामी के चरणों के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहती। इसमें पुण्य हो तो उस पुण्य से स्वर्ग नहीं चाहती। केवल यही चाहती हूं कि मरते समय उनका मुंह देखकर मरूं।'

पत्र नगेन्द्र के पास नहीं पहुंचा। जब पत्र गोविन्दपुर पहुंचा तो नगेन्द्र देशाटन के लिए प्रस्थान कर चुके थे। डाकिया दीवानजी को पत्र दे गया।

दीवानजी से नगेन्द्र कह गए थे कि वह जब वहां पहुंचेंगे वहां से पत्र लिखेंगे। उनके पत्र पाने पर उनके नाम का पत्र वहीं भेजना। नगेन्द्र ने पटना से पत्र लिखा था, 'मैं नाव से काशी पहुंचने पर पत्र लिखूंगा। मेरा पत्र पाने पर वहां मेरे नाम के सब पत्र भेज देना।' दीवानजी ने उसी समाचार की प्रतीक्षा में ब्रह्मचारी का पत्र सन्दूक में रख दिया।

नगेन्द्र काशी पहुंचे। उन्होंने दीवानजी को पत्र लिखा। दीवानजी ने अन्य पत्रों के साथ ब्रह्मचारी का पत्र उन्हें भेज दिया। नगेन्द्र ने पत्र पाकर वृत्तान्त समझा और दोनों हाथों से सिर दबाकर कातर स्वर में बोले, 'प्रभु ! उसके दर्शन के लिए मुझे चैतन्य रखो।'

नगेन्द्र में चेतना रही। वह उसी रात्रि को रानीगंज जाने को तैयार हो गए।

16

नगेन्द्र बनारस से मधुपुर पहुंचकर रामकृष्ण वैद्य के मकान पर पहुंचे तो उन्होंने उन्हें आदरपूर्वक कुर्सी पर बिठाया।

कुर्सी पर बैठकर नगेन्द्र ने पूछा, 'ब्रह्मचारीजी कहां हैं ?'

'ब्रह्मचारीजी महाराज यहां नहीं हैं।' सुनकर नगेन्द्र बहुत दुःखी हुए। उन्होंने पूछा, 'वह कहां गए हैं ?'

'कह नहीं गए हैं। हम लोग नहीं जानते कि वह कहां गए हैं। वह एक स्थान पर नहीं रहते। इधर-उधर पर्यटन किया करते हैं।'

'यह भी कोई नहीं जानता कि वह कब आएंगे ?'

'उनसे हम लोगों की कुछ अपनी भी आवश्यकताएं हैं। कोई नहीं कह सकता कि वह कह कहां होंगे।'

नगेन्द्र बहुत दुःखी हुए। फिर बोले, 'यहां से गए कितने दिन हो गए ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'श्रावण मास में यहां थे। भादों में गए थे।'

'इस गांव में हरमणि वैष्णवी का कौन-सा मकान है ? क्या मुझे कोई दिखा सकता है ?'

'हरमणि का घर रास्ते के किनारे पर ही है, परन्तु इस समय वह वहां नहीं है। आग लगने से वह मकान जल गया था।'

नगेन्द्र ने पूछा, 'हरमणि कहां है ?'

'यह भी कोई नहीं कह सकता। जिस रात उसकी झोंपड़ी में आग लगी, उसी रात से वह गायब है। कोई-कोई कहता है कि वह अपने घर में स्वयं आग लगाकर भाग गई थी।'

'क्या उसके घर में कोई स्त्री रहती थी ?'

'सावन के महीने में एक स्त्री बीमार होकर उसके घर पर आई थी। उसे ब्रह्मचारी ने उसके घर में रखा था। उसका नाम सूर्यमुखी था। मैंने ही उसकी चिकित्सा की थी। मैंने उसे निरोग कर दिया था, परन्तु उसी समय हरमणि वैष्णवी के घर में आग लगने से वह स्त्री जलकर मर गई।

यह सुनकर नगेन्द्र कुर्सी से गिर पड़े। उनके माथे में भयानक चोट आई। वह मूर्छित हो गए।

वैद्यजी उनकी सेवा से लग गए।

सन्ध्या-समय जब नगेन्द्रदत्त मधुपुर से पालकी पर सवार हुए तो उन्होंने मन में कहा, 'इतने दिन में मेरा सब कुछ समाप्त हो गया।'

'क्या समाप्त हुआ ? सुख ? वह तो जब सूर्यमुखी ने गृह-त्याग किया था, उसी दिन समाप्त हो गया था। तब अब क्या समाप्त हुआ ? आशा ? जब तक मनुष्य को आशा रहती है, तब तक उसका कुछ समाप्त नहीं होता। आशा समाप्त होने पर सब कुछ समाप्त हो जाता है।'

नगेन्द्र का आज सब कुछ समाप्त हो गया। इसीलिए वह अब गोविन्दपुर जाएंगे, परन्तु वह गोविन्दपुर के घर में रहना न चाहेंगे। उन्होंने जन्म भर के लिए गृहस्थ-धर्म को त्याग दिया। वहां उन्हें बहुत से काम थे। धन-सम्पत्ति की व्यवस्था करनी थी। उन्होंने जमींदारी, मकान और अन्य सम्पत्ति अपने भांजे सतीशचन्द्र के नाम करने का विचार किया। यह काम बिना वकील के नहीं हो सकता था। अस्थावर सम्पत्ति कमलमणि को लिख देंगे। कुछ अपने पास भी रखेंगे। इसलिए कि अभी जितने दिन जियेंगे उनके खर्च का काम चले। कुन्दनन्दिनी को कमलमणि के पास भेज देंगे। धन-सम्पत्ति और आय-व्यय के कागज श्रीशचन्द्र को समझा देने पड़ेंगे। सूर्यमुखी जिस चारपाई पर सोती थीं, उसी पर एक बार सोयेंगे। सूर्यमुखी के जेवर स्वयं लेंगे, उन्हें कमलमणि को न देंगे। उन्हें अपने साथ रखेंगे। जहां जाएंगे, उन्हें साथ ले जाएंगे। जब समय आएगा तो उन्हें देखते हुए मरेंगे। यह सब आवश्यक काम करके नगेन्द्र जन्म भर के लिए गृहस्थाश्रम छोड़कर फिर देश-पर्यटन करेंगे। जब तक जिएंगे, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक पृथ्वी के किसी कोने में छिपकर समय बिताएंगे।

यह सोचते हुए पालकी पर सवार होकर नगेन्द्र चल पड़े। पालकी का दरवाजा खुला था। चांदनी रात थी। चांदनी बहुत कर्कश जान पड़ने लगी। दिखाई देने पर पदार्थ आंखों में शूल से लगे।

नगेन्द्र ने सोचकर देखा कि सब दोष उनका अपना ही था। उनकी कुल तैंतीस वर्ष की आयु थी। इसी में उन्होंने अपना सब कुछ, जिन चीजों से मनुष्य सुखी होता है, खो दिया। विधाता ने जिस परिमाण में यह सब उन्हें दिया था, उतने परिमाण में शायद और किसी को नहीं दिया। धन, ऐश्वर्य सम्पत्ति और मान यह सब उनके पास था। बुद्धि न होने से उससे सुख नहीं मिला। उसमें भी विधाता ने कृपणता नहीं की थी। शिक्षा भी माता-पिता ने दी थी। रूप, बल, स्वास्थ्य, प्रणयशीलता सभी कुछ उन्हें प्राप्त हुआ। इन्द्रिय-दमन कर सकते तो सूर्यमुखी विदेश में जाकर क्यों मरती ? मैंने सूर्यमुखी का वध किया। मुझसे अधिक पापी कौन है ? क्या सूर्यमुखी केवल मेरी स्त्री नहीं थी ? सूर्यमुखी मेरे सब कुछ थी। सम्बन्ध से स्त्री, सौहार्द्र में भाई, आदर में बहन, सन्तोष में कुटुम्बिनी, स्नेह में माता, भक्ति में कन्या, प्रमोद में मित्र, परामर्श, शिक्षक, क्या नहीं थी वह ? मेरी सूर्यमुखी जैसी कौन थी ? मेरी आंखों की तारा, हृदय का रक्त, शरीर का जीवन, सभी कुछ थी वह।

एकाएक उन्हें याद आया कि वह आराम से पालकी पर सवार होकर जा रहे थे और सूर्यमुखी पैदल चल-चलकर बीमार हुई। नगेन्द्र उसी समय पालकी से उतरकर पैदल चलने लगे। कहार खाली पालकी लेकर पीछे-पीछे चले। वह सवेरे जिस नगर में पहुंचे, वहां पालकी को छोड़कर कहारों को विदा कर दिया। बाकी रास्ता उन्होंने पैदल ही समाप्त किया।

उन्होंने मन में सोचा कि मैं अपने जीवन को सूर्यमुखी के वध-प्रायश्चित में उत्सर्ग कर दूंगा। कैसा प्रायश्चित ? सूर्यमुखी घर छोड़कर जिन सुखों से वंचित हुई, मैं उन सबका त्याग करूंगा। ऐश्वर्य, सम्पदा, दास-दासी, बन्धु-बान्धव से कोई मतलब न रखूंगा। सूर्यमुखी ने गृहत्याग के समय से जिन क्लेशों को भोगा, मैं उन्हीं क्लेशों को भोगूंगा। जिस दिन गोविन्दपुर से यात्रा करूंगा, उस दिन पैदल चलूंगा। जहां-जहां अनाथ स्त्रियों को देखूंगा, उनका उपकार करूंगा। जो रुपये मैंने अपने खर्च के लिए रखे हैं, उन रुपयों से अपने प्राण मात्र को धारण कर शेष स्त्रियों की सेवा में खर्च करूंगा। जिस सम्पत्ति का हक त्यागकर सतीश को दूंगा, उसका भी आधा हिस्सा मेरे जीवन भर सतीश सहायताहीन स्त्रियों की सहायता के लिए खर्च करेगा, यह भी दान-पत्र में लिख दूंगा। प्रायश्चित ! इस पाप का यही प्रायश्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17

श्रीशचन्द्र अकेले बैठक में बैठे थे। उसी समय नगेन्द्र वहां पहुंचे। वह चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गए।

श्रीशचन्द्र उनकी, मलिन मुखकान्ति को देखकर भयभीत हो उठे। समझ में ही न आया कि क्या पूछें। श्रीशचन्द्र जानते थे कि काशी में नगेन्द्र को ब्रह्मचारी का पत्र मिला और पत्र पाने पर वह मधुपुर गए थे। ये सब बातें उन्हें लिखकर नगेन्द्र ने काशी से यात्रा की थी। जब नगेन्द्र ने अपनी ओर से कोई बात नहीं कही तो श्रीशचन्द्र नगेन्द्र के पास जाकर बैठे और उन्होंने उनका हाथ पकड़कर कहा, 'भाई नगेन्द्रदत्त को चुप देखकर मैं बहुत घबरा रहा हूं। क्या तुम मधुपुर नहीं गए।'

'गया था।'

'ब्रह्मचारी से भेंट नहीं हुई ?'

'नहीं।'

'सूर्यमुखी का कोई समाचार मिला ?'

'वह स्वर्ग में हैं।'

श्रीशचन्द्र चुप रहे। नगेन्द्र भी चुपचाप सिर झुकाए रहे। फिर बोले, 'तुम स्वर्ग को नहीं मानते, मैं जानता हूं।'

श्रीशचन्द्र जानते थे कि पहिले नगेन्द्र स्वर्ग को नहीं मानते थे। वह समझ गए कि अब मानते हैं। वह बोले, 'मानते हैं। स्वर्ग प्रेम और वासना की सृष्टि है, परन्तु सूर्यमुखी कहीं नहीं है, यह बात सही नहीं लगती। सूर्यमुखी स्वर्ग में है, इस विचार में भी सुख नहीं।'

दोनों चुपचाप बैठे रहे। श्रीशचन्द्र जानते थे कि वह समय धैर्य-बंधाने का नहीं था। पराई बात विष के समान जान पड़ेगी। वह समझकर श्रीशचन्द्र ने नगेन्द्र के लिए शय्या आदि का प्रबन्ध किया। भोजन के लिए पूछने का साहस न हुआ। सोचा यह भार कमल पर रहेगा।

कमल ने सुना कि सूर्यमुखी नहीं रही तो वह जड़ हो गई। सतीश को अकेला छोड़ उस रात कमलमणि बाहर आ गई। कमलमणि को बाल खोले रोती हुई देख दासी ने सतीशचन्द्र को संभाल लिया।

श्रीशचन्द्र लाचार होकर अपनी बुद्धि पर निर्भर कर कुछ खाना लेकर नगेन्द्र के सामने आए। नगेन्द्र बोले, 'इसकी आवश्यकता नहीं है। तुम बैठो। तुम्हारे लिए अनेक बातें हैं, वे ही कहने यहां आया हूं।'

नगेन्द्र ने रामकृष्ण वैद्य से जो-जो सुना था, वह सब श्रीशचन्द्र से कहा। फिर भविष्य के सम्बन्ध में जो-जो कल्पना की थी, वह सब बतलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ब्रह्मचारी के साथ राह में तुम्हारी भेंट नहीं हुई, यह आश्चर्य है। वह कलकत्ते से तुम्हारी खोज में मधुपुर गए हैं।'

'तुमने ब्रह्मचारी का पता कैसे पाया ?'

'वह बहुत ही महान् पुरुष हैं। तुम्हारे पत्र का उत्तर न पाकर वह गोविन्दपुर गए। गोविन्दपुर में तुम्हें नहीं पाया। उन्हें पता चला कि काशी में तुम्हारा पता मिलेगा। काशी जाकर उन्होंने सुना कि मेरे यहां तुम्हारा पता लगेगा। तब वह मेरे पास आए। वह परसों मेरे पास आए थे। मैंने उन्हें तुम्हारा पत्र दिखाया तो वह मधुपुर गए हैं। कल रात रानीगंज में तुमसे भेंट होने की सम्भावना थी।'

'मैं कल रानीगंज में नहीं था। उन्होंने सूर्यमुखी की कोई बात तुमसे कही थी?'

'यह सब कल बताऊंगा।'

'तुम समझते हो कि सुनने से मेरा क्लेश बढ़ेगा। यह क्लेश अब बढ़ने वाला नहीं है, तुम कहो।'

तब श्रीशचन्द्र ने ब्रह्मचारी के कहने के अनुसार उनसे सूर्यमुखी का रास्ते में मिलना, बीमारी का हाल और चिकित्सा तथा अपेक्षाकृत निरोग होने का हाल कहा। बहुत कुछ छोड़कर उन्होंने यह भी बताया कि सूर्यमुखी ने कितना दुःख उठाया।

यह सुनकर नगेन्द्र घर से निकले। श्रीशचन्द्र साथ-साथ चले। श्रीशचन्द्र को साथ आते देख नगेन्द्र कुछ क्रुद्ध हुए और उन्हें मना किया। नगेन्द्र रात के दो प्रहर तक पागलों की तरह इधर-उधर घूमते रहे। इच्छा थी कि उस भीड़ में अपने को भुला दें। तब फिर नगेन्द्र और श्रीशचन्द्र घर लौट आए। श्रीशचन्द्र फिर उनके पास बैठे। नगेन्द्र ने कहा, 'और भी बातें हैं। वह कहां गई थीं और क्या था उसे ब्रह्मचारी ने अवश्य उनसे सुना होगा। ब्रह्मचारी ने तुमसे कुछ कहा क्या ?'

'क्या आज ही इन बातों की आवश्यकता है ? आज थके हो, थोड़ा विश्राम करो।'

नगेन्द्र ने भौंहें चढ़ाकर कर्कश स्वर में कहा, 'कहो ?'

श्रीशचन्द्र ने देखा नगेन्द्र पागल जैसे हो गए थे। बिजली भरे मेघ की तरह उनका मुंह काला हो रहा था। डरकर श्रीशचन्द्र ने कहा, 'कहता हूं।' यह सुनकर नगेन्द्र का मुख प्रसन्न हुआ। श्रीशचन्द्र ने संक्षेप में कहा, 'गोविन्दपुर से सूर्यमुखी सड़क-सड़क चलकर उस ओर पैदल आई थीं।'

'नित्य कितना रास्ता चलती थीं ?'

'कोस, डेढ़ कोस।'

'वह तो एक पैसा भी मकान से लेकर नहीं गई थीं। उनके दिन कैसे बीते ?'

'किसी दिन उपवास में, किसी दिन भिक्षा में। तुम पागल हो क्या ?'

यह कहकर श्रीशचन्द्र ने नगेन्द्र को डांटा। वह अपने हाथ से अपना गला रुद्ध कर रहे थे। श्रीशचन्द्र ने कहा, 'मरने से सूर्यमुखी को पा जाओगे ?' यह कहकर नगेन्द्र का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कहो ?'

'तुम स्थिर होकर न सुनोगे तो मैं आगे कुछ न कहूंगा।'

श्रीशचन्द्र की बात नगेन्द्र के कान तक न पहुंची। उनकी चेतना लुप्त हो गई थी ? नगेन्द्र आंखें मूंदकर सूर्यमुखी के रूप का ध्यान कर रहे थे। वह देख रहे थे कि सूर्यमुखी राजरानी होकर स्वर्ग में बैठी थी। चारों ओर से शीतल सुगन्धिपूर्ण पवन उनकी अलकों को हिलोरें दे रहा था।

प्रयत्न से श्रीशचन्द्र ने नगेन्द्र को सचेत किया। चैतन्य होने पर नगेन्द्र ऊंचे स्वर में बोले, 'सूर्यमुखी ! प्राणाधिके ! तुम कहां हो ?' चिल्लाहट सुनकर श्रीशचन्द्र स्तम्भित और भयभीत होकर चुपचाप बैठे रहे। धीरे-धीरे नगेन्द्र ने फिर अपनी स्वाभाविक दशा में आकर कहा, 'कहो ?'

श्रीशचन्द्र ने डरकर कहा, 'अब क्या कहूं ?'

'कहो, नहीं तो मैं अभी प्राण त्याग दूंगा।'

भयभीत होकर श्रीशचन्द्र कहने लगे, 'सूर्यमुखी ने अधिक दिन तक कष्ट नहीं पाया। एक धनाढ्य ब्राह्मण सपरिवार काशी जा रहा था। एक नदी किनारे सूर्यमुखी वृक्ष के नीचे सो रही थीं। ब्राह्मण वहीं रसोई बनाने को रुक गए। उनकी गृहिणी के साथ सूर्यमुखी की बातें हुईं। सूर्यमुखी की अवस्था देखकर उनके चरित्र से प्रसन्न हो ब्राह्मण-गृहिणी ने उन्हें नाव पर चढ़ा लिया। सूर्यमुखी ने उनसे कहा था कि वह भी काशी जाएंगी।'

'उस ब्राह्मण का नाम क्या था ? उसका मकान कहां है ?' नगेन्द्र ने कुछ प्रतीक्षा करके फिर पूछा, 'उसके बाद ?'

ब्राह्मण के परिवार के ही साथ सूर्यमुखी वहां तक गईं। कलकत्ते तक नाव में, कलकत्ते से रानीगंज तक रेल में। रानीगंज से बुलन्दशहर ट्रेन से गईं। यहां तक उन्हें चलने का कष्ट नहीं हुआ।

'उसके बाद क्या ब्राह्मण ने उन्हें विदा कर दिया ?'

सूर्यमुखी ने स्वयं विदा ले ली। वह फिर काशी नहीं गईं। कितने दिन तुम्हें बिना देखे रहतीं ? तुम्हें देखने की इच्छा से वह फिर पैदल लौटीं।'

बात कहते-कहते श्रीशचन्द्र की आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने नगेन्द्र के मुंह की ओर देखा। श्रीशचन्द्र की आंखों के आंसुओं से नगेन्द्र का विशेष उपकार हुआ। वह श्रीशचन्द्र को गले लगाकर उनके कंधे पर सिर रख खूब रोए। वहां जाकर अब तक वह रोए नहीं थे। उनका रुका हुआ शोक बह गया। नगेन्द्र श्रीशचन्द्र के कंधे पर मुंह रखकर बालकों की भांति रोते रहे। उससे उनकी तकलीफ कुछ कम हो गई।

नगेन्द्र के कुछ शांत होने पर श्रीशचन्द्र ने कहा, 'इन सब बातों की आवश्यकता नहीं है।'

'और कहोगे भी क्या ? बाकी जो हुआ, वह मैं आंखों से देख आया हूं। वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वह अकेली पैदल मधुपुर गईं। रास्ता चलने से श्रम, अनाहार, धूप, वृष्टि में, निराश्रय और मन के अनेक क्लेशों से सूर्यमुखी रोगग्रस्त होकर मरने के लिए राह में पड़ी थीं।'

श्रीशचन्द्र चुप रहे, फिर बोले, 'भाई, अब क्यों व्यर्थ इन सब बातों की चिन्ता कर रहे हो ? तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुमने उनकी बिना राय अपने मन से कोई काम नहीं किया। जिसमें अपना दोष नहीं होता, उसके लिए बुद्धिमान अनुताप नहीं करते।'

नगेन्द्र समझे नहीं। वह जानते थे कि सब दोष उनका ही है। उन्होंने क्यों विष-वृक्ष के बीज को अपने हृदय से उखाड़कर नहीं फेंका ?

18

देवेन्द्र को चौकीदारों से भगवाकर हीरा मन-ही-मन खूब हंसी थी, परन्तु उसके बाद उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। हीरा मन में सोचने लगी, 'मैंने उन्हें अपमानित कराके उचित नहीं किया। उन्होंने मुझ पर न जाने कितना क्रोध किया होगा।'

देवेन्द्र भी हीरा को दण्ड देने का प्रपंच रच रहे थे। उन्होंने मालती द्वारा हीरा को बुलवाया। हीरा वहां चली गई। देवेन्द्र ने तनिक भी क्रोध प्रकट नहीं किया। बीती घटना का जिक्र भी न किया। उसके साथ मीठी-मीठी बातें करते रहे। देवेन्द्र हीरा के लिए मकड़ी जैसा जाला बुनने लगे। लोभिन हीरा सहज ही उस जाले में फंस गई। वह देवेन्द्र पर मुग्ध हो उठी। उसने सोचा यही प्रणय है। हीरा की सारी चतुराई मिट्टी में मिल गई।

देवेन्द्र ने सब बातें छोड़कर तानपूरा उठाया और गाना आरम्भ किया। देवेन्द्र ने ऐसी मधुमय तान छेड़ी कि हीरा मंत्रमुग्ध होकर मोहित हो उठी। उसका हृदय और मन देवेन्द्र के प्रेम में डूब गए। उसकी दृष्टि में देवेन्द्र संसार में सबसे सुन्दर और आदरणीय जान पड़े। हीरा की आंखों से प्रेम के आंसू निकल पड़े।

देवेन्द्र ने तानपूरा एक ओर रख, बड़े आदर से हीरा के आंसू पोंछ दिए। हीरा रोमांचित हो उठी। देवेन्द्र ने सरस बातचीत आरम्भ कीं। हीरा ने मन में कहा, 'यही स्वर्ग का सुख है।' हीरा ने पहले कभी ऐसी बातें नहीं सुनी थीं। यदि हीरा विशुद्ध हृदया होती, तो समझती कि यह नरक था, पाप था। देवेन्द्र प्रेम-वर्णन में बहुत चतुर थे। उनके मुंह से प्रेम की महिमा सुनकर हीरा उन्हें देवतुल्य समझ स्वयं सिर से पैर तक प्रेम-रस में डूब गई। देवेन्द्र ने फिर संगीत उठाया। हीरा भी उनके साथ अपनी कल-कण्ठ ध्वनि को मिलाने लगी। देवेन्द्र ने हीरा से गाने को कहा। हीरा ने संगीत आरम्भ किया। हीरा के गले से ऊंची आवाज निकली। हीरा ने मुग्ध होकर प्रेमराग गाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर दोनों ने पापाभिलाषा के वशीभूत होकर एक-दूसरे पर अपना प्रेम प्रकट किया। हीरा देवेन्द्र की अंक में जाकर भी हंसते-हंसते उन्हें प्रेम की स्वीकृति देकर अनायास ही उनसे विमुख हो गई, परन्तु जब उसे जान पड़ा कि देवेन्द्र प्रणयशील नहीं हैं, तो फिर उसकी प्रवृत्ति उधर न हुई। इसी अप्रवृत्ति के कारण विष-वृक्ष में उसके भोग का फल उत्पन्न हुआ।

हीरा अवसर पाकर वहां से भाग आई।

धर्म की बड़े कष्ट से रक्षा की जाती है। वह तनिक-सी एक पल की असावधानी से नष्ट हो जाता है। हीरा की भी ऐसी ही दशा हुई। जिस धन के लोभ में हीरा ने यह महारत्न बेचा, वह कानी कौड़ी थी। देवेन्द्र का प्रेम बाढ़ के पानी की तरह था। हीरा उसमें बह गई। जैसे मनुष्य बहुत दिन के संचित धन को पुत्र के विवाह या अन्य उत्सव पर एक दिन के सुख के लिए नष्ट कर डालता है, वैसे ही हीरा इतने दिन से बड़े यत्न से धर्म की रक्षा कर एक दिन के सुख के लिए उसे नष्ट कर, जीवन भर के पछतावे की राह पर जा खड़ी हुई। हीरा ने देवेन्द्र द्वारा परित्यक्त होने पर पहिले तो हृदय में बहुत व्यथा पाई, परन्तु केवल परित्यक्ता नहीं, वह देवेन्द्र द्वारा ऐसी अपमानित की गई कि वह उसके लिए असहनीय हो उठा।

जब भेंट में अंतिम दिन हीरा ने देवेन्द्र के पैरों पर लेटकर कहा, 'दासी का परित्याग न करना।' तब देवेन्द्र ने उससे कहा, 'मैंने केवल कुन्दनन्दिनी के लोभ में तुम्हारा इतना सम्मान किया था। यदि कुन्द के साथ मेरी भेंट करा सको तो तुमसे मेरी बातचीत रहेगी, वरना नहीं। तुम जैसी गर्विता हो, वैसा ही मैंने तुम्हें प्रतिफल दिया। तुम इस कलंक की टोकरी को सिर पर रखकर अपने घर जाओ।'

हीरा की आंखों में अन्धकार छा गया। जब उसका मस्तक ठीक हुआ तो वह देवेन्द्र के सामने खड़ी होकर भौंहें टेढ़ी करके और आंखें लाल कर सैकड़ों मुंह देवेन्द्र का तिरस्कार करने लगी। मुंह की तेज पापिष्ठा स्त्रियां जैसा करना चाहती हैं, वैसा ही उसने किया। देवेन्द्र का भी धैर्य छूट गया। उन्होंने हीरा को लात मारकर प्रमोद-उद्यान से, बाहर निकाल दिया। हीरा पापिष्ठा थी और देवेन्द्र पापिष्ठ तथा पशु। इस प्रकार दोनों का प्रेम पूर्ण हुआ।

हीरा लात खाकर घर नहीं गई। गोविन्दपुर में एक डोम चिकित्सा करता था। चिकित्सा या दवा वह कुछ नहीं जानता था, केवल विष की गोलियों की सहायता से लोगों का प्राण-संहार करता था। हीरा ने उस रात उसके घर जाकर उसे आवाज देकर चुपके से कहा, 'एक सियार नित्य मेरी रसोई खा जाता है। मैं उसे बिना मारे नहीं रह सकती। सोचा है भात में विष मिलाकर रख दूं। वह आज रसोई खाने आए तो विष खाकर मर जाए। तुम्हारे पास बहुत-से विष हैं क्योंकि मुझे ऐसा विष दो, जिससे वह तुरन्त मर जाए।'

डोम ने हीरा की बात पर विश्वास न किया। वह बोला, 'मेरे पास सब कुछ है, परन्तु मैं उसे बेच नहीं सकता क्योंकि मुझे पुलिस पकड़ लेगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम कोई चिन्ता न करो। यह कोई न जानने पाएगा। मैं इष्ट-देव और गंगा की शपथ खाकर कहती हूं। मुझे ऐसा जहर दो, जिससे सियार मर जाए। मैं तुम्हें पचास रुपये दूंगी।'

चाण्डाल समझ गया कि वह किसी का प्राण लेगी, परन्तु पचास रुपये का लोभ वह संवरण न कर सका। वह विष देने को तैयार हो गया। हीरा ने घर से रुपये लाकर उसे दिए। उसने घातक हलाहल हीरा को दे दिया। हीरा से उसने कहा, 'देखना, यह बात किसी से मत कहना। इसमें हम दोनों पकड़े जाएंगे।'

हीरा अपने घर चली गई।

घर जाकर विष की पुड़िया हाथ में लेकर पहिले वह बहुत रोई। फिर उसने आंखें मूंदकर कहा, 'मैं किस दोष पर विष खाकर मरूं ? जिसने मुझे मारा है, उसे न मारकर मैं मरूं ? यह जहर मैं न खाऊंगी। जिसने मेरी यह दशा की है या तो वह इसे खाएगा या उसकी प्रेमिका कुन्दनन्दिनी इसे खाएगी। उनमें से एक को मारकर बाद में मरना होगा, तो मरूंगी।'

हीरा की दशा विचित्र पगली जैसी हो गई।

19

गोविन्दपुर के दत्त-घराने का छः-मंजिला मकान नगेन्द्र और सूर्यमुखी के बिना अंधकारपूर्ण हो गया था। कचहरी के घर में कारिन्दा और अन्तःपुर में अकेली कुन्दनन्दिनी बैठती थी। कोने-कोने में मकड़ियों के जाले पुर गए थे। हर कोठरी में धूल भरी थी। कार्निसों पर कबूतरों की बीटें पड़ी थीं। बाग में सूखे पत्तों के ढेर थे। पुष्करिणी में काई जम गई थी। सूर्यमुखी की पाली हुई चिड़ियों को प्रायः बिल्ली खा गई थी। बत्तखों को सियार खा गए थे। गौओं की हड्डियां निकल आई थीं। नगेन्द्र के कुत्ते दिन भर बंधे रहते थे।

बाग में माली के न रहने पर जो गुलाब की दशा होती है वैसी ही घर में कुन्दनन्दिनी की थी। जैसा और चार-पांच आदमी खाते-पीते थे, वैसा ही कुन्द भी खाती थी। यदि कोई उसे गृहिणी समझकर कोई बात कहता, तो कुन्द कहती, 'उपहास न करो।' दीवानजी कोई बात पुछवा बैठते तो भय से कुन्द की छाती धड़कने लगती थी। कुन्द दीवानजी से बहुत डरती थी। इसका कारण यह था कि नगेन्द्र कुन्द को पत्र नहीं लिखते थे, इसलिए नगेन्द्र दीवानजी को जो पत्र लिखते थे कुन्द उन्हीं को मंगाकर पढ़ती थी। पत्र पढ़कर लौटा देती थी। यही पढ़ना उसके लिए पर्याप्त था। दीवानजी का नाम सुनकर वह भयभीत हो जाती थी। हीरा ने ये सब बातें जान ली थीं। वह पत्र वापस न मांगते थे। वह उसकी नकल करके पढ़ने को भेजते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यमुखी ने यंत्रणा पाई, परन्तु क्या कुन्द यंत्रणा नहीं पा रही थी ? सूर्यमुखी पति से प्रेम करती थी तो क्या कुन्द नहीं करती थी ? उसके हृदय में अपरिमित प्रेम था। विवाह से पहिले भी कुन्द नगेन्द्र को चाहती थी। उसने किसी से कहा नहीं, कोई जान न पाया। उसने नगेन्द्र को पाने की कोई इच्छा नहीं की, उसे आशा भी नहीं थी। वह अपनी निराशा को स्वयं सहती रही। उसे बिना मांगे आकाश का चांद पकड़ा दिया गया। फिर किस दोष से नगेन्द्र ने उसे ठुकराया ? कुन्द दिन-रात इस बात पर चिन्ता करती और रोती थी।

कितने कुसमय में नगेन्द्र ने कुन्द से विवाह किया था ? जहरीले वृक्ष की छाया में जो जा बैठता है, वही मरता है। इसी तरह विवाह की छाया ने जिसे भी छू दिया, वही मारा गया।

कुन्द सोच रही थी, 'मेरे कारण सूर्यमुखी की यह दशा हुई। सूर्यमुखी ने मेरी रक्षा की, मुझे अपनी बहिन की तरह रखा। मैंने उसे राह की भिखारिन बना दिया। मेरे जैसी अभागिन कौन है ? मैं क्यों न मरी ? अब भी क्यों नहीं मरती ' फिर सोचती, 'अभी न मरूंगी। वह आ जाएं, उन्हें और एक बार देखकर मरूंगी ? क्या वह अब न आएंगे ?' कुन्द को सूर्यमुखी की मृत्यु का समाचार नहीं मिला था। इसलिए वह सोचती थी कि अभी मरकर क्या करूंगी ? जब सूर्यमुखी लौट आएंगी तब ही मरूंगी। मैं उनकी राह का कांटा न बनूंगी।

उधर नगेन्द्र ने कलकत्ते का आवश्यक कार्य समाप्त किया। दान-पत्र लिखा गया। उस पर ब्रह्मचारी और अज्ञात ब्राह्मण के पुरस्कार की विशेष विधि शेष रही। उसकी रजिस्ट्री गोविन्दपुर में होगी। वह दान-पत्र साथ लेकर नगेन्द्र ने गोविन्दपुर के लिए प्रस्थान किया। वह श्रीशचन्द्र को यथोचित सवारी पर चढ़ने का आदेश दे गए। श्रीशचन्द्र ने दान-पत्र की व्यवस्था और पैदल चलने आदि को मना किया, परन्तु असमर्थ रहे। लाचार वह नदी की राह से उनके साथ चले। कमलमणि भी बिना पूछे ही सतीश को साथ लेकर श्रीशचन्द्र की नाव पर सवार हो गई।

कमलमणि के गोविन्दपुर आने पर कुन्दनन्दिनी को लगा कि फिर आकाश में एक तारा निकल आया। जब से सूर्यमुखी गई थीं, तब से कुन्दनन्दिनी के ऊपर कमलमणि को बहुत क्रोध था, परन्तु इस बार कुन्दनन्दिनी की दुर्बल मूर्ति देखकर कमलमणि को दुःख हुआ। वह अब कुन्दनन्दिनी को प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगी। नगेन्द्र का समाचार प्राप्त कर कुन्द का चेहरा खिल गया। सूर्यमुखी की मृत्यु का समाचार उसे देना पड़ा। वह सुनकर कुन्द बहुत रोई। कुन्द सौतिन के लिए भी रोई।

कमलमणि ने कुन्द को धैर्य बंधाया। कमलमणि स्वयं भी शांत हो गई। पहिले कमल बहुत रोई थी, परन्तु बाद में सोचा कि रोने से क्या लाभ ? मेरे रोने से श्रीशचन्द्र दुःखी होते हैं, सतीश रोता है, सूर्यमुखी मिलेगी नहीं, तब क्यों इन लोगों को रुलाऊं? मैं सूर्यमुखी को कभी न मिलूंगी, परन्तु मेरे हंसने से सतीश हंसे तब क्यों न हंसूं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समझकर कमलमणि रोना छोड़कर हंसने लगी।

कमलमणि श्रीशचन्द्र से बोली, 'बैकुण्ठ की लक्ष्मी बैकुण्ठ को छोड़ गई। भैया बैकुण्ठ में आकर क्या करेंगे ?'

श्रीशचन्द्र बोले, 'आओ हम लोग सब इस घर को साफ करा दें।'

श्रीशचन्द्र ने राज मजदूर, माली जहां जिसका प्रयोजन था, वहां उसे लगा दिया। कमलमणि के उपद्रव से चमगादड़ों में भगदड़ मच गई। दासियां हाथों में झाड़ू लेकर कोना-कोना साफ करने लगीं। शीघ्र ही अट्टालिका फिर साफ-सुथरी हो गई।

नगेन्द्र भी आ पहुंचे। संध्या हो रही थी। जैसे नगेन्द्र का सम्पूर्ण शोक-प्रवाह उस समय गम्भीर शांति के रूप में परिणत हो गया था। दुःख कम नहीं हुआ, अधैर्य में कमी होती जा रही थी। उन्होंने स्थिर भाव से पुर-वासियों से बातचीत की। सबको बुलाकर कुशल पूछा। किसी के आगे उन्होंने सूर्यमुखी की बात नहीं की, परन्तु सभी उनके दुःख से दुःखी हुए। पुराने नौकर उन्हें प्रणाम करने जाकर आप-ही-आप रो दिए। नगेन्द्र ने केवल एक व्यक्ति को पीड़ा दी। उन्होंने कुन्दनन्दिनी से भेंट नहीं की।

नगेन्द्र की आज्ञानुसार सूर्यमुखी के कमरे में उनका बिस्तर लगाया गया। यह सुनकर कमलमणि ने गर्दन झुका ली।

रात्रि के समय, घर के सब लोगों के सो जाने पर नगेन्द्र सूर्यमुखी के शयन-गृह में गए। वह शयन करने नहीं, रोने के लिए गए थे। सूर्यमुखी का कमरा बहुत मनमोहक था। वह नगेन्द्र के सब सुखों का मंदिर था। उन्होंने उसे बड़े यत्न से बनवाया था।

नगेन्द्र ने जब कमरे में प्रवेश किया तो आधी रात बीत रही थी। रात बहुत भयानक थी। हल्की वृष्टि हो रही थी और हवा चल रही थी। पानी बरस रहा था। वायु ने प्रचण्ड वेग धारण किया हुआ था। घर की खिड़कियां खुली थीं। वायु का शब्द हो रहा था। शीशे बज रहे थे। नगेन्द्र ने शयन-गृह में प्रवेश कर द्वार बन्द कर लिया। हवा का स्वर कम हुआ। चारपाई के पास एक ओर का द्वार खुला था। उधर से हवा नहीं आ रही थी। वह खुला ही रहा।

नगेन्द्र शयन-गृह में जाकर दीर्घ निश्वास छोड़कर बेंच पर लेट गए। वह बहुत रोए, उसे कोई न जान पाया।

नगेन्द्र ने दृष्टि फेरकर सूर्यमुखी के प्रिय चित्रों को देखा। घर में एक दीपक जल रहा था। उसकी रश्मियों में चित्र सजीव जान पड़ते थे। हर चित्र में नगेन्द्र सूर्यमुखी को देख रहे थे। उन्होंने देखा कि दीपक बुझने वाला था। नगेन्द्र निश्वास छोड़कर शय्या पर सोने लगे। शय्या पर बैठते ही प्रबल आंधी चलने लगी। चारों ओर से दरवाजों की आवाजें आने लगीं। उसी समय दीपक बुझ गया। उन्हें एक विचित्र बात दिखाई दी। जो द्वार खुला था, उस ओर उनकी दृष्टि गई। उन्हें उन खुले द्वार की क्षीण रोशनी में एक छाया जैसी मूर्ति दिखाई दी। छाया स्त्री-रूपिणी थी, परन्तु उसे देखकर उन्हें कंपकंपी आ गई। स्त्री सूर्यमुखी के आकार की जैसी थी। नगेन्द्र ने जब पहिचाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वह सूर्यमुखी की छाया अदृश्य हो गई। दीपक बुझ गया। नगेन्द्र जमीन पर गिरकर अचेत हो गए।

जब नगेन्द्र सचेत हुए तो वहां घोर अंधकार था। धीरे-धीरे उनका चित्त ठीक होने लगा। मूर्च्छा की बात याद आई तो विस्मय से इधर-उधर देखा। जब वह जमीन पर मूर्च्छित पड़े थे तो उनके सिर के नीचे तकिया कहां से आया ? फिर संदेह हुआ कि क्या वह तकिया था ? छूकर देखा तो वह तकिया नहीं, किसी स्त्री की जांघ थी। मूर्च्छित अवस्था में उसके सिर को किसने इस प्रकार जांघ पर रखा ? क्या वह कुन्दनन्दिनी थी ? उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो ?' उसने कोई उत्तर नहीं दिया ? केवल दो-तीन बूंदें गर्म आंसू नगेन्द्र के मस्तिष्क पर गिर पड़ीं। नगेन्द्र समझ गए कि कोई स्त्री रो रही थी। नगेन्द्र भ्रष्टबुद्धि हो गए। उनका बदन रोमांचित हो उठा। वह चुपचाप जड़ की तरह पड़े रहे। फिर धीरे-धीरे रमणी की जंघा पर से सिर उठाकर बैठ गए।

अब आंधी-पानी रुक गया था। आकाश में बादल नहीं थे। सवेरा हो रहा था। बाहर प्रकाश फैल रहा था। घर में भी प्रकाश आ रहा था। नगेन्द्र ने देखा, वह रमणी उठी और द्वार की ओर चली। नगेन्द्र ने देखा वह कुन्दनन्दिनी नहीं थी। नगेन्द्र ने कुछ देर तक देखा। वह स्त्री उनके पैरों पर गिरकर कातर वाणी में बोली, 'देव ! तुम्हारे पैर पड़ती हूं! मुझसे बातें करो, नहीं तो मैं मर जाऊंगी।'

वह उस स्त्री को छाती से लगाने चले और फिर पेड़ की कटी टहनी की तरह उसके पैरों पर गिर पड़े और कुछ न बोले।

रमणी फिर उनके सिर को जांघ पर रखकर बैठ गई और जब नगेन्द्र निद्रा से उठे तो दिन निकल आया था। घर में उजाला था। घर के बाग में वृक्षों पर पक्षी कलरव कर रहे थे। बाल-सूर्य की किरणें घर में पड़ रही थीं। नगेन्द्र ने देखा कि किसकी जांघ पर उनका माथा था। उन्होंने आंखों से बिना देखे ही कहा, 'कुन्द, तुम कब आईं ? आज मैंने सारी रात सूर्यमुखी का स्वप्न देखा है ? स्वप्न में देखा कि मैं सूर्यमुखी की गोद में माथा रखे सोया हुआ हूं। यदि तुम सूर्यमुखी हो सकतीं तो मुझे कितना सुख मिलता ?'

'यदि उसे देखने से तुम सुखी होगे पतिदेव ! तो मैं वही अभागिन सूर्यमुखी हूं।'

नगेन्द्र चौंककर उठ बैठे। उन्होंने आंखें मूंद लीं। फिर देखा तो सिर पकड़कर बैठ गए। फिर आंखें खोलकर देखा और सिर झुकाकर आप-ही-आप बोले, 'मैं पागल हो गया हूं या सूर्यमुखी जीवित हैं। अन्त में यही भाग्य में बदा था ? क्या पागल हो गया हूं मैं ?' यह कहकर नगेन्द्र भूमि पर गिरकर रोने लगे।

रमणी ने उनके पैर पकड़े और कहा, 'उठो, मेरे जीवन-सर्वस्व ! मैंने जितने दुःख सहे हैं, आज वे सब समाप्त हो गए हैं। उठो, मैं मरी नहीं हूं। मैं तुम्हारी चरण-सेवा के लिए बच गई हूं।'

क्या तब भी भ्रम रह सकता था ? नगेन्द्र ने सूर्यमुखी का आलिंगन किया। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोद में सिर रखकर बोले नहीं, खूब रोए। दोनों एक दूसरे के कंधे पर सिर रखकर रोते रहे ? किसी ने कोई बात न कही।

20

सूर्यमुखी ने नगेन्द्र को बताया, 'मैं मरी नहीं थी। कविराज ने मेरे मरने की बात गलत कही। मैं जब सचेत हुई तो तुम्हें देखने के लिए मैं आतुर हो उठी थी। मैं ब्रह्मचारी को साथ लेकर गोविन्दपुर आई। यहां आकर सुना कि तुम यहां नहीं थे। ब्रह्मचारी ने मुझे यहां से तीन कोस दूर एक ब्राह्मण के घर अपनी कन्या बनाकर रखा। फिर वह तुम्हारी खोज में गए। उन्होंने पहिले कलकत्ते जाकर श्रीशचन्द्र से भेंट की। श्रीशचन्द्र ने बताया कि तुम मधुपुर गए हो। वह फिर मधुपुर गए। मधुपुर में ज्ञात हुआ कि जिस दिन हम हरिमणि के घर से आए, उसी दिन उसकी झोंपड़ी में आग लग गई। हरिमणि घर में जल मरी। सवेरे लोग जली हुई स्त्री को पहिचान न सके। उन लोगों ने समझा कि घर की दो स्त्रियों में से एक भाग कर बच गई और एक जल गई। जो भागी वह स्वस्थ थी और जो रोगिणी थी वह भाग न सकी। इस प्रकार उन लोगों ने निश्चय किया कि हरिमणि भाग गई और मैं मर गई। अफवाह गांव भर में फैल गई। रामकृष्ण ने वही सुनकर तुमसे कहा। ब्रह्मचारी ने सुना कि तुम मधुपुर में गए थे और मेरी मृत्यु का समाचार सुन आए थे। वह उसी समय घबराहट के साथ तुम्हारी खोज में चले। कल शाम वह प्रतापपुर पहुंचे। उन्होंने बताया कि तुम दो-एक दिन में यहां आओगे। उसी आसरे से मैं परसों यहां आई थी। अब तीन कोस चलने में कष्ट नहीं होता। मैं राह चलना सीख गई हूं। परसों आने की आशा न पाकर लौट गई।

आज जब यहां पहुंची, तो एक पहर रात थी। देखा कि खिड़की-दरवाजे खुले थे। मैंने घर में प्रवेश किया। किसी ने मुझे देखा नहीं। मैं सीढ़ी के नीचे छिपकर खड़ी हो गई। फिर सबके सो जाने पर सीढ़ी के ऊपर आई। मन में सोचा कि तुम अवश्य इसी कमरे में सोए होंगे। मैंने देखा, यह दरवाजा खुला था। मैंने दरवाजे से झांककर देखा तो तुम सिर पर हाथ रखे बैठे थे। सोचा, तुम्हारे पैरों पड़ूं, परन्तु कुछ भय जान पड़ा तुम्हारे सामने। मैंने जो अपराध किया है, क्या उसे क्षमा न करोगे ? मैं तो केवल तुम्हें देखकर ही तृप्त हूं। मैं मिलने आ रही थी, परन्तु मुझे देखकर तुम बेहोश हो गए। तबसे मैं तुम्हें गोद में लिए बैठी हूं। मैं नहीं जानती थी कि मेरे भाग्य में यह भी सुख होगा। मैंने सोचा, तुम मुझसे प्रेम नहीं करते। तुम मेरे बदन पर हाथ रखकर भी मुझे पहिचान नहीं पाए। मैं तुम्हारी हवा को भी पहिचान सकती हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय नगेन्द्र और सूर्यमुखी इस प्रकार प्रेमपूर्ण बातचीत कर रहे थे। उस समय उस कोठी के दूसरे भाग में प्राण-संहारक बातें चल रही थीं।

घर आने पर नगेन्द्र ने कुन्द से भेंट नहीं की थी। कुन्द अपने शयनागार में सारी रात रोती रही थी। कुन्द पछतावा करने लगी कि क्यों मैंने स्वामी के दर्शन की लालसा की ? सोचा, 'अब किस सुख की आशा से प्राण रखूं ?'

सारी रात जगने और रोने के पश्चात् सवेरे कुन्द को नींद आ गई। कुन्द ने निद्रा में भयानक स्वप्न देखा। चार वर्ष पूर्व पिता के मरने के समय, जिस ज्योतिर्मयी मूर्ति को अपनी माता का रूप धारण किए देखा था, वही उस समय उसके निकट खड़ी थी। उस समय वह चन्द्र-मण्डल-मध्य-वर्तिनी नहीं थी, बल्कि बादल से धीरे-धीरे नीचे उतर रही थी। उसके चारों ओर अन्धकार था। अन्धकार में एक मनुष्य-मूर्ति थी। उसके दांत बिजली जैसे चमक रहे थे। कुन्द ने भयभीत होकर देखा कि वह हंसता हुआ चेहरा हीरा का था और माता की कांति गम्भीर थी। माता ने कहा, 'कुन्द ! उस समय तूने मेरी बात नहीं सुनी। मेरे साथ नहीं चली। अब तू बहुत दुःख भोग चुकी है ?'

कुन्द रोने लगी। उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे।

माता बोली, 'मैंने तुझसे कहा था कि मैं एक बार फिर आऊंगी। इसीलिए आज आई हूं। यदि तेरी सुख से तृप्ति हो गई हो तो तू मेरे साथ चल।'

कुन्द रोकर बोली, 'मां मुझे साथ ले चलो। मैं अब यहां नहीं रह सकती। मैं यहां नहीं रहना चाहती।'

माता प्रसन्न होकर बोली, 'तब चलो। मैं तुम्हें लेने के लिए ही आई हूं इस समय।'

यह कहकर तेजोमयी लुप्त हो गई। जाग्रत होने पर कुन्द ने प्रभु से भिक्षा मांगी, 'प्रभु मेरा स्वप्न सफल हो।'

प्रातःकाल हीरा कुन्द के पास आई। उसने देखा वह रो रही थी।

कमलमणि के आने पर हीरा कुन्द के सामने विनीत हो गई। नगेन्द्र के आने का समाचार पाकर हीरा कुन्द की बहुत अधिक आज्ञाकारिणी बन गई थी। कुन्द हीरा के कपट को न समझ सकी। कुन्द ने हीरा को पहिले ही जैसी विश्वासिनी समझा।

हीरा ने पूछा, 'तुम रोती क्यों हो ?'

कुन्द कुछ बोली नहीं। वह हीरा की ओर देखती-भर रही। कुन्द की आंखें सूजी हुई थीं।

'यह क्या ? क्या सारी रात रोती रही हो ? क्या बाबू यहां नहीं आए ?'

वह फिर भी मौन रही। फिर बड़े वेग से रोने लगी। हीरा ने मुंह मलिन कर उससे पूछा, 'तुमसे क्या बातचीत की ? तुम्हें मुझसे स्पष्ट बताना चाहिए।'

'कोई बात नहीं की।' कुन्द ने उत्तर दिया।

हीरा विस्मय से बोली, 'यह कैसी बात ? इतने दिन बाद भेंट हुई और फिर भी नहीं बोले !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुझसे भेंट ही नहीं हुई।' यह कहकर कुन्द फिर रो पड़ी।

हीरा बहुत प्रसन्न हुई। वह हंसकर बोली, 'इस पर रोना क्या ? जरा भेंट होने में देर होने से तुम इतनी क्यों रोती हो ?'

'बड़ा दुःख है।' और दुःख वह कह न सकी।

हीरा बोली, 'मेरी तरह यदि तुम्हें सहना पड़े तो तुम आत्महत्या कर लो।'

'आत्महत्या !' इस शब्द ने कुन्दनन्दिनी के कानों पर गहरी चोट की। वह कांपकर उठ बैठी। रात में उसने कई बार आत्महत्या की बात अपने मन में सोची थी।

हीरा बोली, 'तुमसे अपने दुःख की बात कहती हूं, सुनो। मैं भी एक आदमी को प्राणों से अधिक चाहती थी। वह मेरा पति नहीं था, मैंने पाप किया था।'

ये बातें कुन्द ने नहीं सुनीं। उसके कानों में एक ही शब्द गूंजता रहा था। कोई उसके कानों में कह रहा था, 'क्या तू आत्मघातिनी हो सकेगी ? यह कष्ट सहन करना अच्छा है या मरना ?'

हीरा बोली, 'वह मेरा पति नहीं, परन्तु मैं उसे लाख पतियों से भी अधिक प्रेम करती थी। मैं जानती थी कि वह मुझसे प्रेम नहीं करता और एक पापिष्ठा से प्रेम करता है।' यह कहकर हीरा ने नीची दृष्टि से कुन्द की ओर देखा। फिर बोली, 'मैं यह जानकर उसकी ओर बढ़ी, परन्तु एक दिन हम दोनों दुर्बुद्धि हुए।' इस प्रकार हीरा ने संक्षेप में कुन्द के सामने अपनी व्यथा स्पष्ट की। उसने किसी का नाम नहीं बताया। अन्त में बोली, 'फिर पूछा, मैंने क्या किया ?'

कुन्द ने पूछा, 'क्या किया ?'

'मैं चाण्डाल कविराज के यहां गई। उसके पास ऐसे विष हैं, जिनके खाते ही आदमी मर जाता है।'

'फिर ?'

'मैंने मरने के लिए विष खरीदा, परन्तु मैं किसी के लिए प्राण क्यों दूं ? मैंने विष को डिबिया में बन्द करके रख लिया।'

यह कहकर हीरा ने वह डिबिया कुन्द के सामने रखकर कहा, 'यही है वह डिबिया।'

कुन्द डिबिया को देखने लगी। नगेन्द्र के महल में मंगलजनक शंख की ध्वनि हुई। कुन्दनन्दिनी ने उसी समय डिबिया से विष की पुड़िया निकाली।

हीरा ने जाकर शंख-ध्वनि का कारण देखा। एक बड़े कमरे के अन्दर घर की सभी स्त्रियां थीं। वे किसी को घेरे हुए थीं।

हीरा ने स्त्रियों के बीच उचककर देखा। देखकर वह विस्मय से पागल हो उठी। उसने देखा कि सूर्यमुखी फर्श पर बैठी थी। कौशल्यादि उनके बालों को संवार रही थीं। उनका शरीर पोंछ रही थीं। कोई उन्हें जेवर पहिना रही थीं। सूर्यमुखी सबसे मीठी-मीठी बातें कर रही थीं। उसके गालों पर स्नेह के आंसू ढुलक रहे थे।

सूर्यमुखी तो मर गई थी। वह फिर घर में कैसे आ गई ? यह देखकर विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ। हीरा ने अस्फुट स्वर में कहा, 'यह कौन हैं ?'

आवाज कौशल्य के कानों में पहुंची, कौशल्या बोली, 'क्या पहिचानती भी नहीं? मेरे घर की लक्ष्मी और तुम्हारी यम।' अब तक वह हीरा के डर से चोर की तरह रहती थी।

सिर आदि गुंथ जाने पर सूर्यमुखी ने कमल के कान में कहा, 'चलो अब कुन्द को देख आएं। उसने मेरा कोई दोष नहीं किया है और उस पर मेरा क्रोध भी नहीं है। वह अब मेरी छोटी बहिन है।'

कमल और सूर्यमुखी कुन्द से मिलने गईं। उन्हें बहुत देर लगी। अन्त में कमलमणि भयभीत कुन्द की कोठरी से निकली और उसने घबराहट से नगेन्द्र को बुलाया। नगेन्द्र को वह कुन्द की कोठरी में ले गई ? नगेन्द्र की द्वार पर सूर्यमुखी से भेंट हुई। सूर्यमुखी रो रही थीं। नगेन्द्र ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

'सर्वनाश ! मैंने अब जाना कि मेरे भाग्य में सुख नहीं है। सुख होता तो यह सर्वनाश क्यों होता ?'

'क्या हुआ ?'

'कुन्द को मैंने सयानी किया, वह मेरी छोटी बहिन थी। मैं आई कि बहिन के समान उसे प्यार करूंगी, परन्तु सब पर धूल पड़ गई। कुन्द ने जहर खा लिया।'

'वह कैसे ?'

'तुम उसके पास रहो, मैं डॉक्टर को बुलाती हूं।'

यह कहकर सूर्यमुखी बाहर निकलीं और नगेन्द्र अकेले कुन्दनन्दिनी के पास गए।

उन्होंने देखा कुन्दनन्दिनी के चेहरे पर कालिमा छा गई थी। उसका बदन शिथिल पड़ गया था।

नगेन्द्र को समीप खड़े देखकर कुन्द टूटी लता के समान उनके पैरों पर गिर पड़ी। नगेन्द्र गद्‌गद् स्वर में बोले, 'यह क्या कुन्द ! तुम किस दोष से मुझे छोड़कर जा रही हो ?' कुन्द नगेन्द्र के सामने नहीं बोलती थी। आज उसने कहा, 'तुमने किस दोष से मेरा त्याग किया था ?'

नगेन्द्र के पास कोई उत्तर नहीं था। वह सिर झुकाए खड़े रहे।

कुन्दनन्दिनी पास बैठकर फिर बोली, 'कल यदि तुम इसी प्रकार कुन्द कहकर बुलाते, यदि एक बार भी मेरे पास आते, तो मैं न मरती। क्या मैं मरना चाहती थी?'

नगेन्द्र अपने घुटने पर सिर रखकर मौन बैठे रहे।

कुन्द फिर बोली, 'तुम इस तरह चुप न हो। यदि मैं तुम्हारे हंसते हुए चेहरे को देखकर न मर सकी, तो मेरे मन में सुख न होगा।'

नगेन्द्र कातर वाणी में बोले, 'तुमने ऐसा काम क्यों किया ? तुमने एक बार मुझे बुलवाया क्यों नहीं ?'

कुन्द दिव्य हंसी हंसकर बोली, 'ऐसा न सोचना। मैंने जो कुछ कहा, वह मन के आवेग से कहा है। तुम्हारे आने के पूर्व ही मैंने स्थिर कर लिया था कि तुम्हें देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरूंगी। यदि दीदी कभी लौटकर आईं, तो मैं तुम्हें उनको सौंपकर मरूंगी। अब उनके सुख की राह में कांटा बनकर न रहूंगी। मैंने मरने का ही निश्चय किया था, फिर भी तुम्हें देखकर मेरी मरने की इच्छा नहीं होती।'

नगेन्द्र कोई उत्तर न दे सके। आज वह कुन्द के सामने निरुत्तर थे।

कुन्द एक क्षण चुप रही। उसकी बात करने की शक्ति लुप्त हो रही थी। मृत्यु ने उस पर अधिकार कर लिया था।

नगेन्द्र कुन्द के चेहरे पर स्नेह की प्रसन्नता देख रहे थे। उसके मुंह पर जो हंसी उस समय दिखाई दे रही थी वह नगेन्द्र के हृदय में समा रही थी।

कुन्द कुछ देर बाद बोली, 'मैं तुम्हें देवता समझती थी। साहस के साथ कभी मुंह खोलकर मैंने बातें नहीं कीं। मेरा शौक नहीं मिटा, मेरा मुंह सूख रहा है; जुबान ऐंठ रही है।' यह कहकर कुन्द नगेन्द्र की जांघ पर सिर रखकर आंखें मूंदकर चुप हो गई।

डॉक्टर आया। देखकर दवा नहीं दी। 'अब भरोसा नहीं' कहकर मुंह लटका लिया।

कुन्द ने सूर्यमुखी और कमलमणि को देखना चाहा। कुन्द ने दोनों के पैरों की धूलि ली। वे दोनों उच्च स्वर में रो पड़ीं।

कुन्दनन्दिनी ने स्वामी के पैरों में मुंह छिपा लिया। उसे चुप देख दोनों फिर रो उठीं। कुन्द फिर कुछ न बोली। कुसुम मुर्झा गया।

सूर्यमुखी सौत की ओर देखकर बोली, 'भाग्यवती ! तुम्हारे जैसा भाग्य मेरा भी हो। मैं भी इसी प्रकार स्वामी के चरणों में माथा रखकर प्राण त्यागूं।'

यह कह सूर्यमुखी रोते हुए पति का हाथ पकड़कर दूसरी जगह ले गई। बाद में कुन्द का नदी में विसर्जन किया।

× × ×

कुन्दनन्दिनी की मृत्यु के बाद सभी ने जानना चाहा कि कुन्दनन्दिनी ने जहर कहां पाया ? सबका सन्देह हीरा पर हुआ। हीरा को वहां न देख नगेन्द्र ने उसे बुलवाया, परन्तु हीरा से भेंट नहीं हुई। कुन्दनन्दिनी की मृत्यु के समय ही हीरा लापता हो गई थी।

हीरा को फिर किसी ने वहां नहीं देखा। गोविन्दपुर से हीरा का नाम लुप्त हो गया। एक वर्ष पश्चात् वह एक बार देवेन्द्र को मिली थी।

देवेन्द्र का बोया विष-वृक्ष फला। वह बहुत बुरे रोग से ग्रस्त हुए। शराब न छोड़ने के कारण रोग असाध्य हो गया। देवेन्द्र मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। कुन्दनन्दिनी की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् देवेन्द्र का मृत्यु-काल आ गया। मरने से दो-चार दिन पूर्व उनके द्वार पर बड़ा शोर हुआ। देवेन्द्र ने पूछा, 'यह सब क्या है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकर बोला, 'एक पगली आपको देखना चाहती है।'

देवेन्द्र बोले, 'उसे आने दो।'

पगली घर में आई। देवेन्द्र ने देखा, वह बहुत ही दीन स्त्री थी। उसके उन्माद का लक्षण समझ में न आया। वह गरीब भिखारिणी थी। आयु अधिक नहीं थी उसकी, परन्तु बहुत बुरी दशा थी।

भिखारिणी देवेन्द्र को तीव्र दृष्टि से देखने लगी। देवेन्द्र समझे कि वह कोई पगली थी।

पगली बोली, 'मुझे पहिचानते नहीं ? मैं हीरा हूं।'

देवेन्द्र ने पहिचाना। वह चौंककर बोले, 'तुम्हारी यह दशा किसने की हीरा ?'

हीरा ओंठ काटती हुई देवेन्द्र को मारने दौड़ी, परन्तु फिर स्थिर होकर बोली, 'मुझसे पूछते हो कि किसने मेरी यह दुर्दशा की ? मेरी यह दुर्दशा तुमने की। अब पहिचानते भी नहीं। एक दिन, इसी घर में मेरे पैर पकड़कर तुमने कुछ कहा था।'

'फिर तुमने मुझे लात मारकर यहां से निकाल दिया था। मैं उसी दिन पागल हो गई थी। मैं विष खाने चली थी, परन्तु सोचा कि वह विष तुम्हें या तुम्हारी कुन्द को खिलाऊंगी। अन्त में तुम्हारी कुन्द को विष खिलाकर मैंने अपने मन को शान्त किया। उसकी मृत्यु देखकर मेरा रोग बढ़ गया। मैं देश छोड़ गई। तब से भीख मांगकर खाती हूं। जब अच्छी रहती हूं तो भीख मांगती हूं, जब रोग बढ़ता है तब पेड़ के नीचे पड़ी रहती हूं। इस समय तुम्हारी मृत्यु समीप देखकर, प्रसन्न होकर, तुम्हें देखने आई हूं। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूं कि नरक में भी तुम्हें स्थान न मिले।'

यह कहकर वह बहुत जोर से हंसी। देवेन्द्र डरकर शय्या पर दूसरी ओर को फिर गए। वह नाचती हुई घर से बाहर निकल गई।

हीरा कुछ देर बाग में नाचती रही। वह फिर लौटकर देवेन्द्र के पास आई।

देवेन्द्र रो रहे थे। हीरा उन्हें रोते देखकर हंस पड़ी। वह बोली, 'पगले ! अब क्यों रोता है ? मेरी तरह हंस तू भी। जैसे मैं अपना सर्वनाश करके हंस रही हूं, वैसे ही तू अपनी प्रेमिका कुन्दनन्दिनी का सर्वनाश कराकर हंस।'

देवेन्द्र ने क्रोध नहीं किया। वह दीन वाणी में बोले, 'हीरा ! कुन्द के प्राण तूने नहीं नगेन्द्र ने लिए। फिर भी कुन्द ने नगेन्द्र की जंघा पर सिर रखकर प्राण-त्याग किया।'

हीरा बड़े ध्यान से सुन रही थी।

देवेन्द्र फिर बोले, 'हीरा ! मैं मर रहा हूं, यह सच है, परन्तु मेरे भी मरने का कारण तू नहीं है। मैं उसी विष-वृक्ष का फल खाकर मर रहा हूं जिसे मैंने स्वयं बोया था, परन्तु तेरी यह दशा मेरे कारण हुई। मैंने तेरे प्राण लिए हैं। मैं उतना ही बड़ा पापी हूं जितना नगेन्द्र।

यदि तू सचमुच मुझे प्रेम करती है तो क्या तू मुझे अपनी जांघ पर सिर रखकर मरने देगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीरा चुपचाप देवेन्द्र के पलंग पर जा बैठी। उसने देवेन्द्र का सिर अपनी जांघ पर रखकर उसके नेत्रों में झांका।

देवेन्द्र का हृदय आह्लाद से भर उठा, परन्तु उसे संभालने की शक्ति अब उसमें नहीं रही थी। उसका श्वांस उखड़ गया और प्राणान्त हो गया।

हीरा एक क्षण देवेन्द्र के शव को अपनी जांघ पर टिकाए बैठी मुस्कराती रही। फिर उसने अपने फटे चिथड़े की एक गांठ खोली और उसमें से कुछ निकालकर अपने मुंह में रख लिया।

कुछ देर पश्चात् देवेन्द्र के नौकरों ने अन्दर जाकर देखा तो पलंग पर दो शव पड़े थे, एक देवेन्द्र का और दूसरा हीरा का।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

राजसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसिंह

1

राजस्थान में रूपनगर नाम का एक नितान्त छोटा-सा राज्य था। वहां के राजा का नाम विक्रमसिंह था। यह राज्य की छोटी-सी राजधानी का छोटा-सा नगर था। उसमें एक सुन्दर महल था। गलीचे के स्थान पर सफेद और काले पत्थर फर्श पर लगे थे। सफेद पत्थर पर बनी रंग-बिरंगे रत्नों से जटिल कोठरियों की दीवारें थीं। वहां कुछ स्त्रियां बैठी हुई थीं। लगभग दस-पंद्रह स्त्रियां थीं। वे रंग-बिरंगे वस्त्रों और भांति भांति के रत्न-जटित आभूषणों से सुसज्जित थीं। उनके उज्जवल कोमल-कनकमय बदन दमदमा रहे थे। उनमें कोई चमेलीं के रंग की, कोई लाल कमल जैसी, कोई चम्पे जैसी और कोई दूब जैसी थी। एक पान खा रही थी, एक नाक की मोतीदार नथ को हिलाकर रानी पद्मिनी की कहानी कह रही थी, एक कान के कर्णफूल को ही हिला रही थी। उनमें से अधिकांश युवतियां थीं। हास-उपहास की छटा छाई हुई थी। विचित्र रंग जमा हुआ था।

वहां एक वृद्धा कुछ चित्र बेचने के लिए आई। हाथी-दांत की पट्टियों पर अंकित छोटे-छोटे सुन्दर चित्र थे। वृद्धा के चित्र निकालते ही एक युवती ने पूछा। यह किसका चित्र है। ?'

वृद्धा ने कहा, 'यह शहंशाह शाहजहां का चित्र हैं।'

युवती ने कहा,'मैं इसकी दाढ़ी को खूब पहिचानती हूं। यह तो तेरे नाना की दाढ़ी है री वृद्धा !'

दूसरी ने कहा, 'तुम अपने प्यार नाना के नाम पर पर्दा क्यों डालती हो ? यह तेरे दूल्हे की दाढ़ी है। इस दाढ़ी में एक दिन बिच्छू छिप गया था। मेरी सखी ने उसे झाड़ू मारकर गिराया था।'

यह सुनकर हंसी का कहकहा लग गया। वृद्धा ने एक ओर चित्र दिखाकर कहा, 'यह शहंशाह जहांगीर का चित्र है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक युवती ने पूछा, 'इसका मूल्य कितना है ?'

वृद्धा ने मूल्य बताया तो वह बोली, 'यह तो तुमने चित्र का मूल्य बताया है। अब यह बताओ इन्हें बेगम नूरजहां ने कितने दामों में खरीदा था ?'

वृद्धा ने रसिकता से उत्तर दिया, 'बिना मूल्य।'

'जब वास्तविक वस्तु का कोई मूल्य नहीं है तब नकल का क्या मूल्य ?' एक युवती बोली।

वृद्धा ने चिढ़कर चित्रों को समेट लिया। वह बोली, 'उपहास में चित्र नहीं खरीदे जाते हैं। मैं अब राजकुमारी जी के आने पर ही चित्र दिखाऊंगी।'

'अजी मैं ही तो राजकुमारी हूं।' उन युवतियों में से एक ने कहा और वह ठहाका लगाकर हंस पड़ी, परन्तु तभी अचानक उनकी हंसी रुक गई। केवल सरल मुस्कान भर रह गई। वृद्धा ने कारण जानने के लिए पीछे की ओर देखा।

उसने टकटकी लगाकर एक स्फटिक शिला जैसी कांतिपूर्ण प्रतिमा के दर्शन किए। अनुपम सुन्दरी थी। फूल में भी वह सुन्दर रंग-रूप कहां जो उस युवती में था। वृद्धा ने देखा कि वह प्रतिमा मुस्कुरा रही थी। उसने विचार किया कि क्या प्रतिमा भी हंसती है ?'

वृद्धा चकित होकर उसकी ओर देखने लगी। उसके मुख से हंसी का फव्वारा फूट पड़ा। वह हंसते-हंसते लोट-पोट हो गई। उसकी हंसी से खीजकर वृद्धा रो पड़ी।

वृद्धा को रोती देखकर उस प्रतिमा ने मीठे स्वर में पूछा, 'वृद्धा ! तुम रोती क्यों हो ?'

अब वृद्धा की समझ में आया कि वह प्रस्तर-मूर्ति नहीं, जीवित स्त्री थी। उसने उन्हें प्रणाम किया। वह प्रणाम राज-कुल के लिए नहीं, उसकी अनुपमेय सुन्दरता के लिये था। वृद्धा ने जो सौंदर्य अपने समक्ष देखा, उसे देखकर वह मुग्ध हो गई।

वह रूपनगर की राजकन्या चंचलकुमारी थी। जो युवतियां अब तक वृद्धा से उपहास कर रही थीं, वे सब सखियां और दासियां थीं। चंचलकुमारी उस परिहास को देखकर मुस्कुरा रही थी। उन्होंने मधुर स्वर में पूछा, 'यह वृद्धा कौन है ?'

'यह चित्र बेचने आई है।' एक युवती ने कहा।

'तुम लोग हंस क्यों रही थीं ?'

'वृद्धा हमें पुराने बदमाशों के चित्र दिखा रही थी। उन्हें देखकर हमें हंसी आ गई। रजवाड़ों के घरों में क्या शाहजहां और जहांगीर के चित्र नहीं है ?'

'वृद्धा ने कहा, 'होंगे क्यों नहीं बेटी ! परन्तु एक चित्र के रहते दूसरा भी तो खरीदा जा सकता है। आप न खरीदेंगी तो हम गरीबों का क्या होगा ?'

राजकुमारी ने वृद्धा से चित्र दिखाने को कहा। उसने एक-एक चित्र राजकुमारी को दिखाया। बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां, नूरजहां, नूरमहल के चित्र दिखाए। राजकुमारी ने वे सब चित्र लौटाकर कहा, 'हमारे यहां इन लोगों के चित्र हैं। किसी हिन्दू राजा का चित्र दिखाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृद्धा ने राजा मानसिंह, बीरबल, जयसिंह इत्यादि के चित्र दिखाए। राजकुमारी ने उन्हें भी लौटा दिया और कहा, 'मैं ये चित्र भी नहीं लूंगी। ये हिन्दू नहीं है। ये मुसलमानों के दास है।'

वृद्धा हंसकर बोली, 'मैं क्या जानूं, कौन किसका दास है राजकुमारी जी ? मेरे पास जो चित्र हैं, वे दिखा रही हूं। आपको जो रुचें, आप उन्हें ले लें।'

वृद्धा अन्य चित्र दिखाने लगी। राजकुमारी ने महाराणा प्रताप, राणा अमरसिंह, राणा कर्णसिंह इत्यादि के चित्र खरीदे। एक चित्र वृद्धा ने छिपा रखा था। राजकुमारी ने पूछा, 'तुमने यह चित्र क्यों छिपा रखा है वृद्धा ?'

वृद्धा ने भयभीत स्वर में हाथ जोड़कर कहा, 'मेरा अपराध क्षमा करें राजकुमारी जी ! यह चित्र असावधानी से यहां आ गया है।'

राजकुमारी ने कहा, 'तुम इतनी भयभीत क्यों हो ? यह किसका चित्र है ? मुझे दिखाओ, मैं इसे देखना चाहती हूं।'

'इसे देखने की आश्वकता नहीं है। यह आपके घराने के पुराने शत्रु का चित्र है राजकुमारी जी !'

'किसका है यह चित्र ? मेरे पास लाओ।

'यह राणा राजसिंह का चित्र है।' वृद्धा बोली।

राजकुमारी मुस्कुराकर बोली, 'वीर पुरुष स्त्रियों के शत्रु नहीं होते। लाओ, मैं यही चित्र लूंगी।'

वृद्धा ने राजसिंह का चित्र राजकुमारी के हाथों में दिया। चित्र हाथ में लेकर राजकुमारी बहुत देर तक उसे अपलक देखती रहीं। उनका चेहरा खिल उठा और नेत्र फैल गए।

एक युवती ने उनका भाव देखकर चित्र देखना चाहा। राजकुमारी ने चित्र उसके हाथ में देते हुए कहा, 'देखो, यह चित्र देखने योग्य है। ?'

राजकुमारी की सखियों के हाथ में चित्र घूमने लगा। राजसिंह के चित्र को देखकर सभी ने प्रशंसा की।

वृद्धा ने यह देखकर उस चित्र का मूल्य दूना कहा। उसके पश्चात् उसने ललचाकर कहा, 'राजकुमारी जी ! यदि वीरों के ही चित्र लेना चाहती हैं तो एक और चित्र दिखाती हूं। इन जैसा वीर संसार में अन्य कौन होगा ?' यह कहकर वृद्धा ने एक चित्र निकालकर राजकुमारी के हाथ में दिया।

'यह किसका चित्र है ?' राजकुमारी ने पूछा।

'आलमगीर औरंगजेब का।'

'मैं इसे भी लूंगी।' यह कहकर राजकुमारी ने एक परिचारिका को चित्रों का मूल्य देकर वृद्धा को विदा करने को कहा। परिचारिका मूल्य लाने चली गई। इसी बीच राजकुमारी ने अपनी सखियों से कहा, 'अभी तनिक खेल करें।'

'क़ौन-सा खेल ?' सखियां बोलीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं आलमगीर के इस चित्र को भूमि पर रख देती हूं। तुम सब मिलकर इसके मुंह पर एक-एक लात मारना। देखूं, किसकी लात से उसकी नाक टूटती है।' राजकुमारी ने कहा।

भय से सखियों के गाल लाल हो गए। उनमें से एक ने भयभीत स्वर में कहा, 'ऐसे वचन न कहें राजकुमारी जी ! यदि कोई सुन लेगा तो रूप-नगर के गढ़ का एक भी पत्थर शेष न बचेगा।'

राजकुमारी ने हंसकर चित्र जमीन पर पटक दिया और कहा, 'पहले लात कौन मारेगा ?'

कोई आगे न बढ़ी। निर्मल नाम की एक सखी ने आगे बढ़कर कहा, 'ऐसी बात मुंह से न निकालो राजकुमारी जी !'

चंचलकुमारी ने अपना बायां पैर औरंगजेब के चित्र पर रख दिया। चुरमुर कर स्वर हुआ और औरंगजेब का चित्र राजकुमार के पैर के नीचे दबकर चूर-चूर हो गया। यह देखकर सब सखियां कांप उठीं।

राजकुमारी ने हंसकर कहा, 'मैंने अपनी मुगल-बादशाह के मुंह पर लात मारने की इच्छा पूर्ण की।' राजकुमारी ने निर्मल की ओर देखकर कहा, 'निर्मल ! क्या मेरी यह इच्छा कभी पूर्ण न होगी ! क्या मैं कभी इस जीवन में औरंगजेब के मुख पर इस प्रकार....।'

निर्मल ने राजकुमारी के मुख पर हाथ रख दिया।

वृद्धा का हृदय धड़-धड़ करने लगा। दासी चित्रों का मूल्य देकर आ गई, जिसे पाते ही वृद्धा वहां से चल दी। वह जैसे ही कमरे से बाहर गई, तो निर्मल उसके पास पहुंची। उसने एक स्वर्ण-मुद्रा वृद्धा के हाथ पर रखकर कहा, 'तुमने यहां जो कुछ देखा, उसे किसी से न कहना। राजकुमारी अभी अनजान है।'

वृद्धा ने स्वर्ण-मुद्रा लेकर कहा, 'यह भी भला कुछ कहने की बात है। मैं तो आप लोगों की दासी हूं। मैं ये बातें कहीं मुख पर भी नहीं ला सकती।'

निर्मल सन्तुष्ट होकर लौट आई।

दूसरे दिन चंचलकुमारी एकान्त में बैठकर ध्यानपूर्वक चित्रों को देख रहीं थी। निर्मल ने चंचलकुमारी से कहा, 'तुम्हारी इच्छा इनमें से किसके साथ विवाह करने की है निर्मल ?'

'जिसके साथ विवाह करने की मेरी इच्छा है, उसके चित्र को तो आपने अपने पैर से कुचल डाला।' निर्मल बोली।

'औरंगजेब से ? आश्चर्यचकित होकर राजकुमारी ने कहा।

'क्यों, क्या कोई आश्चर्य की बात है इसमें ?'

'ऐसा पाखण्डी बादशाह आज तक संसार में पैदा नहीं हुआ।'

'उसी को ही वश में लाने में मुझे आनन्द आएगा। क्या आपको याद नहीं हैं कि मैंने बचपन में एक बाघ पाला था ? मेरी इच्छा है कि मैं औरंगजेब से विवाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूं।'

'तुम मुसलमान से विवाह करोगी निर्मल ?'

'मेरे हाथों में आकर औरंगजेब भी हिन्दू हो जाएगा।'

'यह तुम्हारा भ्रम है निर्मल !'

निर्मल बात बदलकर बोली, 'यह किसका चित्र है जिस आप देख रही हैं ?'

चंचलकुमारी ने अन्य चित्रों में उस चित्र को मिलाकर कहा, मैं तो किसी विशेष चित्र को नहीं देख रही निर्मल ! तू मुझे व्यर्थ कलंक क्यों लगाना चाहती है ?'

'चित्र देखने में कैसा कलंक राजकुमारी जी ! आप क्रोध करके स्वयं ही पकड़ी गईं। उस भाग्यवान् को मैं खोजकर निकाल लूंगी।'

'किस भाग्यवान को ?'

'जिसे आप देख रही थीं।'

यह कहकर निर्मल चित्र खोजने लगी। उसने कहा, 'आप जिस चित्र को देख रही थीं, उसकी पीठ पर एक काला चिन्ह है' निर्मल ने एक चित्र निकालकर चंचलकुमारी के हाथ में देते हुए कहा, 'यही है ना वह चित्र।'

चंचलकुमारी ने झूठा क्रोध प्रकट करके कहा, 'तुझे अन्य कोई काम नहीं है क्या ? चल हट, दूर हो यहां से। व्यर्थ मुझे क्यों सता रही है तू ?'

'मैं दूर क्यों हटने लगी हूं राजकुमारी जी ! परन्तु आपको इस वृद्ध का चित्र देखने में क्या आनन्द आ रहा है ?'

'तेरी आंखें फूटी हुई हैं निर्मल !'

निर्मल चंचलकुमारी को चिढ़ाकर चुपके-चुपके मुस्करा रही थी। निर्मल भी बहुत सुन्दर थी। मधुर मुस्कान से उसका सौन्दर्य और भी निखर गया। उसने हंसकर कहा, 'चाहे चित्र में वृद्धापन न झलक रहा हो, परन्तु लोग कहते हैं कि महाराणा राजसिंह की आयु अधिक है। उनके दो पुत्र विवाह के योग्य हैं।'

'क्या यह राजसिंह का चित्र है निर्मल ?'

'आप सम्भवतः इनसे अपरिचित हैं। आपने मृत्यु का फन्दा स्वयं ही अपने गले में डाल लिया है। क्या राजसिंह का नाम जपने से कभी राजसिंह को प्राप्त कर सकेंगी?'

'प्राप्त करने के लिए नाम नहीं जपा जाता है निर्मल ! क्या प्राप्त करने के लिए ही तू औरंगजेब का नाम जपती है ?'

'मैं औरंगजेब का नाम ऐसे जपती हूं जैसे बिल्ली चूहे का नाम जपती है। यदि मैं औरंगजेब को न पा सकी तो मेरा बिलाई-चरित्र इस जन्म में कभी सार्थक न होगा। क्या आप भी इसी प्रकार इन्हें जपती हैं ?'

'नहीं निर्मल ! मैं श्रद्धा से जपती हूं।'

'क्या कहती हो राजकुमारी ? क्या चित्र देखकर यह सब कभी सम्भव हो सकता है ?' निर्मल बोली।

'कैसे क्या हो सकता है, यह मैं नहीं जानती ? मैं कुछ नहीं जानती कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या हो रहा है निर्मल ?' राजकुमारी ने कहा।

2

वृद्धा रूपनगर से लौटकर अपने घर गई। वह आगरे की रहने वाली थी और देश-विदेश में घूमकर चित्र बेचा करती थी। उसने वहां जाकर देखा कि उसका पुत्र आया हुआ था। उसका पुत्र दिल्ली में चित्रों की दुकान करता था।

वृद्धा चंचलकुमारी के जिस चरित्र को देखकर आई थी, उसे किसी से कह न सकने के कारण वह मन मसोसकर रह जाती थी। निर्मल उसे स्वर्ण-मुद्रा देकर बात प्रकट करने को मना न कर देती तो सम्भवतः उसका मन वह बात किसी से कहने को उतना व्यग्र न होता। वह किसी से उसके विषय में कुछ न कहने का वचन दे आई थी और फिर हाथ फैलाकर उसने स्वर्ण-मुद्रा ली थी ! बात खुलने पर बादशाह के हाथों चंचलकुमारी के अनिष्ट की सम्भावना थी। इसीलिए उसने किसी के समक्ष कुछ नहीं कहा था। उसने शपथ ली थी कि वह यह बात किसी से नहीं कहेगी। उसका लड़का भोजन करने बैठा तो वृद्धा ने पुत्र की थाली में स्वादिष्ट भोजन रखकर कहा, 'खाओ बेटा ! रूपनगर से आने के पश्चात् आज ही मैंने ऐसा भोजन बनाया है।'

पुत्र ने कहा, 'अम्मा ! आपने रूपनगर का वृतांत सुनाने को कहा था, सो सुनाया नहीं।'

'चुप रहो। वह बात मुंह पर न लाओ बेटा ! मैंने कहा था, यूं ही कुछ कह दिया होगा।'

वृद्धा को वह भूल ही गया था कि एक दिन जब चंचलकुमारी की बात उसके पेट में खौलने लगी थी तो उसने अपने पुत्र से कुछ कहा था।

'ऐसी क्या बात है अम्माजी जो मैं चुप रहूं ?'

'सुनाने योग्य बात नहीं है वह।'

'तब रहने दीजिए।' पुत्र बोला।

'कुछ नहीं है, रूपनगर की राजकुमारी की बात है।'

'सुना है वह बहुत सुन्दर है ?'

'सुन्दर तो है, परन्तु अभिमान भी बहुत है उसमें ।'

'क्या रूपनगर और क्या उसकी राजकुमारी का अभिमान। मैं उसे सुनकर भी क्या करूंगा।'

'वह नादान लड़की आलमगीर को भी कुछ नहीं समझती।'

'उसने आलमगीर को गाली दी होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल गाली ही नहीं दी बेटा ! उससे भी कुछ अधिक किया।'

'उससे अधिक और क्या किया होगा उसने ? आलमगीर को वह मार तो सकती नहीं।' पुत्र हंसकर बोला।

'बहुत बढ़कर बात की बेटा !'

'मारने से भी बढ़कर ?' पुत्र ने पूछा।

'कुछ न पूछ बेटा ! परन्तु मैंने उसका नमक खाया है।'

'नमक खाया है ! वह कैसे ?'

'मैंने उससे एक स्वर्ण-मुद्रा ली है।'

'क्यों ?' पुत्र ने पूछा।

'इसलिए कि मैं उसके अपराध को किसी से न कहूं।'

'यह बात है तो मुझको भी स्वर्ण-मुद्रा दो अम्मा !'

'वह क्यों ?' मां ने पूछा।

'जिससे मैं आपकी बात किसी से न कहूं।' पुत्र बोला।

'उसने आलमगीर के चित्र को...तोबाह ! बात मुंह से निकली पड़ रही है। नहीं, मैं नहीं कहूंगी।'

'क्या उसने आलमगीर का चित्र तोड़ डाला ?'

'अरे बेटे ! लात मारकर तोड़ डाला। तोबाह ! मुझसे नमकहरामी हो गई।' कहकर वृद्धा ने अपने कान पकड़े।

'इसमें नमकहरामी क्या है ? तुम मेरी मां हो और मैं तुम्हारा बेटा हूं। मुझसे कहने में नमकहरामी कैसी ? पुत्र ने कहा।

'बेटा किसी से कहना नहीं।' वृद्धा ने कहा।

'विश्वास रखो मां। मैं किसी ने नही कहूंगा।'

वृद्धा के लड़के का नाम शेख खिज्र था। वह चित्रकार था। वह अपनी मां के पास दो दिन रहकर दिल्ली चला गया। उसकी पत्नी का नाम फातिमा था। खिज्र ने अपनी मां से चंचलकुमारी का जो वृतान्त सुना था वह फाातिमा से कह सुनाया। सुनाने के पश्चात् खिज्र ने फातिमा से कहा, 'तुम दरियाबीबी के पास जाओ। उससे यह समाचार बेगम साहिबा के यहां भेजने को कहना। सम्भव है हमें इससे कुछ धन मिल जाए।'

दरियाबीवी पास के ही मकान में रहती थी। फातिमा दरिया के घर गई। दरिया का वास्तविक नाम दरीबुन्निसा था, किन्तु उसे लोग दरियाबीवी ही कहते थे। उसके माता-पिता नहीं थे, केवल बड़ी बहन और एक बूढ़ी फूफी थी। उसके घर में कोई पुरुष नहीं था। दरिया की आयु बीस वर्ष से अधिक नहीं थी। दरिया बहुत सुन्दर थी, खिले फूल जैसी सुन्दर।

दरिया की बहन सुरमा और इत्र बहुत अच्छा बनाती थी। दरिया उन्हें बड़े आदमियों के घर पर बेच आती थी। बादशाह के अन्तःपुर में किसी को जाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

·Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा नहीं थी, परन्तु दरियाबावी के वहां पहुंचने का भी उपाय था।

फातिमा ने दरियाबीवी को चंचलकुमारी का यह वृतान्त सुनाया और उस समाचार को बेचकर रुपया प्राप्त करने को कहा।

दरिया फातिमा की बात से सहमत हो गई। उसने पिटारी खोलकर एक कागज निकाला और कुछ सुरमा और इत्र लेकर वहां से चल पड़ी। उसने फातिमा से कहा, 'मैं तुमसे लौटकर मिलूंगी।'

3

चांदनी के प्रकाश में सफेद संगेमरमर की सीढ़ियों से सटकर बहने वाली यमुना के किनारे दिल्ली मणि-खण्ड के समान चमक रही थी। जामा मस्जिद की चार-मीनारें नीलाकाश को भेदती हुई चांदनी में दमक उठी थीं। नगर में सबसे सुन्दर स्थान चांदनी चौक था। वहां राजपूत तथा तुर्क सैनिक पहरा दे रहे थे। अनेकों प्रकार की मूल्यवान वस्तुएं दुकानों में सजा कर रखी हुई थीं। वेश्याएं लोगों की भीड़ में सारंगी के स्वर पर नृत्य कर रही थीं। जादूगर जादू का खेल दिखा रहे थे। उनके पास सैकड़ों दर्शक खड़े देख रहे थे। सबसे अधिक भीड़ ज्योतिषियों को घेरे हुए थी। मुगल बादशाहों के शासन-काल में ज्योतिषियों का जैसा आदर था वैसा सम्भवतः पहले कभी नहीं रहा। हिन्दू-मुसलमान सभी उनका आदर करते थे।

चांदनी चौक में ज्योतिषी लोग सड़क पर आसन जमाए बैठे थे। सैकड़ों स्त्री-पुरुष अपने भाग्य की गणना कराने के लिये उन्हें घेरे हुए थे। उनके निकट पर्दे वाली स्त्रियां भी जाने में संकोच न करती थीं। एक ज्योतिषी के आसन के पास बहुत भीड़ लगी थी। उस भीड़ में बुर्का ओढ़े एक युवती खड़ी थी। वह ज्योतिषी के पास जाना चाहती थी, परन्तु पहुंच नहीं पा रही थी। वह इधर-उधर को देख रही थी। उसी समय वहां एक सैनिक आ गया।

सैनिक धीरे-धीरे चल रहा था। उस युवती ने जो इधर-उधर देख रही थी, उसकी ओर देखा। देखते ही उसने शीघ्रता से आगे बढ़कर कहा, 'मुबारक साहब !'

'तुम कौन हो ?' सैनिक ने पूछा।

'क्या आप मुझे पहचानते भी नहीं ?'

'क्या दरिया हो तुम ?' उसने कहा।

'जी हां, मैं दरिया ही हूं।' दरिया बोली।

'तुम यहां कहां ?' सैनिक ने पूछा।

'क्यों, मैं तो इसी जगह आती-जाती हूं। क्या आपने कभी मना किया है मुझे?' दरिया बोली।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं क्यों मना करूं ? तुम मेरी कौन होती हो ? क्या तुम मुझसे कुछ चाहती हो ? सैनिक बोला।

'तोबाह ! आपका रुपया मेरे लिए हराम है। मैं इत्र बनाना जानती हूं। उससे रुपया कमा लेती हूं।'

'तब फिर तुमने मुझे किसलिए रोका है ?' सैनिक ने पूछा।

'मेरे निकट आओ तो बताऊंगी।'

'मुबारक बोला, 'कहो क्या कहती हो तुम ?'

'इस भीड़ में एक ज्योतिषी बैठा है। वह दिल्ली में कल ही आया है। ऐसा ज्योतिषी यहां पहले कभी नहीं आया। उससे तुम्हें अपने भाग्य के विषय में पूछना चाहिए। वह जो वृतान्त बतायेगा, वह एकदम ठीक होगा।'

'मेरे भाग्य का हाल मैं नहीं जानना चाहती। मैं उसके विषय में सब कुछ जानती हूं। मुझे आपके भाग्य का हाल जानने की आवश्यकता है।' दरिया बोली।

दरिया मुबारक को उस ज्योतिषी के पास ले गई। ज्योतिषी ने मुबारक की हस्त-रेखाएं देखीं और उसकी ओर देखकर कहा, 'आप पहले जाकर अपना विवाह करिए।'

दरिया बोली, ' इनकी शादी हो चुकी है ?'

'यह कौन बोल रही है ?' ज्योतिषी ने पूछा।

मुबारक बोला, 'एक पगली है। क्या आप बता सकते हैं कि मेरी शादी किसके साथ होगी ?' मुबारक ने पूछा।

'तुम्हारा विवाह किसी राज-पुत्री के साथ होगा।'

'फिर क्या होगा ?' मुबारक ने पूछा।

'आपकी पद-वृद्धि होगी।' ज्योतिषी ने बताया।

दरिया ने कहा, 'और मृत्यु ?'

'यह कौन बोल रही है ?' ज्योतिषी ने पूछा।

'वही पगली है।'

'मै आपका हाथ नहीं देखूंगा।'

मुबारक की कुछ समझ में नहीं आया। ज्योतिषी को एक सिक्का देकर उसने दरिया को खोजा, परन्तु वह दिखाई नहीं दी। वह घोड़े पर सवार होकर किले की ओर चल दिया।

दिल्ली के दुर्ग की राजप्रासाद की थोड़ी-सी भूमि में जितनी धन-राशि, रत्न-राशि, रूप-राशि और पाप-राशि एकत्रित थी उतनी समस्त भारत में अन्यत्र कहीं नहीं थी। राजप्रासाद का केन्द्र बादशाह का रंग-महल था। वहां कुबेर और कामदेव का राज्य था। वहां के सभी कमरे विचित्र थे। वहां जैसा पाप अन्यत्र कहीं नहीं था। वहां सब-कुछ विचित्र ढंग से होता था।

जेबुन्निसा का विलास-भवन उनमें विशेष साज-सज्जा का केन्द्र था। उसकी शोभा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य सबसे निराली थी।

विलास-भवन में सफेद और काले पत्थरों का फर्श था। संगमरमर की दीवारें थीं। पत्थर में रत्नों की लाताएं, रत्नों के पत्ते, रत्नों के फूल, रत्नों के फल, रत्नों की चिड़ियां और रत्नों के भौरे बने थे। उनसे कुछ ऊंचाई पर दर्पण लगे थे। उनके किनारों पर सोने के कामदार चौखटे लगे थे। उनके ऊपर रुपहले तार और मोती की झालरें थीं। फर्श पर कालीन बिछा था। कालीन पर हाथी-दांत का बना पलंग था, जिस पर जरी का कामदार गद्दा और मखमल के तकिए रखे थे। पलंग के ऊपर भली-भांति के सुगन्धित पुष्प पड़े थे। पात्रों में गुलाब और इत्र भरा था। शराब के जाम कानस पर रखे अपनी निराली शोभा दे रहे थे। जेबुन्निसा खिड़की पर खड़ी तारकों की शोभा देख रही थी। उसी समय मुबारक ने रंगशाला में प्रवेश किया ओर जेबुन्निसा की बगल में जाकर खड़ा हो गया।

'बिना बुलाए जो आये, वही प्रेमी है।' जेबुन्निसा बोली।

'बिना बुलाए आया हूं, बेअदबी की है। भिखारी बिना बुलाए ही आता है शाहजादी!' मुबारक बोला।

'तुम भिक्षा क्यों मांगते हो मुबारक ?'

'मैं चाहता हूं कि मुल्ला की आज्ञा में मेरा अधिकार हो।'

'फिर वही पुरानी बात ! बादशाहजादियां शादी नहीं करती हैं, जानते हो।' जेबुन्निसा बोली।

'आपकी छोटी बहिनों ने भी तो शादियां की हैं।'

'उन सबने शाहज़ादों से शादियां की हैं। शहजादियां शाहजादों से ही शादी कर सकती हैं, दो-सौ के मनसबदार से नहीं।'

'आप बादशाह से जो कहेंगी, वह वहीं करेंगे। आप मेरा पद बढ़वा सकती हैं।'

'अनुचित बात के लिए मैं बादशाह से नहीं कहूंगी।'

'यह जो हो रहा है, क्या उचित है शाहजादी ?'

'क्या ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'महापाप ?' मुबारक बोला।

'महापाप कौन कर रहा है ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

मुबारक ने सिर झुकाकर कहा, 'क्या आप कुछ नहीं समझ रहीं शाहजादी ?' मुबारक बोला।

'इसे महापाप समझते हो तो फिर यहां कभी न आना।'

'मुझमें यह साहस होता तो मैं कभी न आता। मैं इस सौन्दर्य के हाथों बिक चुका हूं।' मुबारक बोला।

'बिक चुके हो तो जो मैं कहती हूं, वही करो।'

यदि मैं अकेला इस पाप का भागी होता तो चुपचाप बैठा रहता। मैं आपको अपने से अधिक चाहता हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुमने शाहजादी को पाया है ?' जेबुन्निसा बोली।

'पाप-पुण्य खुदा का हुक्म है।'

'खुदा का हुक्म गरीबों और काफिरों के लिए होता है। मैं क्या हिन्दू लड़की हूं जो एक पति की जीवन-भर दासता करूंगी और फिर आग में जल मरूंगी ? अल्लाह को अगर वही करना होता तो वह मुझे शाहजादी न बनाता।'

जेबुन्निसा की बात सुनकर मुबारक आकाश से नीचे गिर पड़ा। इस तरह की बातें उसने पहले कभी नहीं सुनी थीं। यदि अन्य कोई यह बात कहती तो वह कहता, 'तुझ पर लानत पड़े' परन्तु जेबुन्निसा के सौन्दर्य में वह डूब चुका था। वह चुप रह गया। वह एक शब्द भी न बोल सका।

जेबुन्निसा बोली, 'इन बातों को छोड़ो। अब यह बात कभी मेरे सुनने में न आए। यदि सुनी तो...।'

'मुझे डराने-धमकाने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूं कि आप जिस पर अप्रसन्न हों, उसका सिर एक क्षण भी धड़ के ऊपर नहीं रह सकता, परन्तु शायद आप यह भी जानती हैं कि मुबारक मृत्यु से नहीं डरता।' मुबारक बोला।

'मृत्यु के अलावा क्या मुबारक के लिए और कोई दण्ड नहीं है ?'

'है, और वह है आपकी जुदाई।'

'व्यर्थ बातें करने से वह भी हो सकता है।'

मुबारक समझ गया कि यदि वह पापिष्ठा समझकर जेबुन्निसा को त्याग देगा तो उसे निश्चय ही मृत्यु-दण्ड मिलेगा। औरंगजेब उसकी बात मानते हैं। उसे इस बात का खेद था कि वह शहजादी के रूप पर मुग्ध हुआ। उसमें शक्ति नहीं थी कि वह उससे पृथक् हो सके। उस पाप की कीचड़ से वह निकल नहीं सकता था।

मुबारक विनीत भाव से बोला, 'आप अपनी इच्छा से जितनी कृपा करेंगी, उससे ही मैं प्रसन्न रहूंगा। मैं जो इच्छा रखता हूं, उसे इस गरीब का अधिकार समझिए। हर गरीब बादशाहत पाने की इच्छा रखता है।'

शाहजादी ने प्रसन्न होकर मुबारक को शराब पिलाई और मधुर प्रेमालाप के पश्चात् उसे इत्र और पान देकर विदा किया।

मुबारक के रंगमहल से निकलने पर उसे दरियाबीवी मिली। उसने मुस्कराकर पूछा, 'शाहजादी से शादी ठीक हो गई ?'

'तुम कौन हो ?' मुबारक ने पूछा।

'मैं दरिया हूं।' दरिया बोली।

'शैतान ! तू यहां कैसी चली आई ?' मुबारक ने पूछा।

'मैं खबरें बेचती हूं।' दरिया बोली।

यह सुनकर मुबारक कांप उठा। दरियाबीवी ने कहा, 'क्या राज-पुत्री के साथ शादी निश्चित हो गई ?'

'राज-पुत्री कौन ?' मुबारक ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शाहजादी जेबुन्निसा, और कौन ? शाहजादी को ही राज-पुत्री कहते हैं ?' दरिया बोली।

'मैं तुझे जान से मार डालूंगा।'

'मैं शोर मचा दूंगी।' दरिया बोली।

तू किसके पास खबर बेचने आई है ?'

'शाहजादी जेबुन्निसा के पास।' दरिया बोली।

'तू कौन-सी खबर बेचेगी ?'

'यही कि तुम ज्योतिषी के पास अपने भाग्य का हाल जानने के लिए गए थे। ज्योतिषी ने तुम्हें शाहजादी से विवाह करने को कहा था। उससे तुम्हारी पद-वृद्धि होगी।'

'दरिया ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम मुझ पर यह अत्याचार करना चाहती हो ?'

'मैंने क्या अत्याचार किया है तुम पर ? तुमने मेरे साथ क्या नहीं किया। तुमने जो किया है उससे बढ़कर और तुम क्या कर सकते हो ?'

'मेरे जैसे तो कितने ही है तेरे पास।'

'तुम जैसा पापी अन्य कोई नहीं है।'

'मैं पापी नहीं हूं। यहां इतनी बातें नहीं हो सकतीं। तुम अन्यत्र कहीं मुझसे मिलना। मैं तुम्हें सब समझा दूंगा।'

मुबारक फिर जेबुन्निसा के पास लौटा। उसने जेबुन्निसा से कहा, 'मैं फिर से आने की बेअदबी के लिए माफ़ी चाहता हूं। मैं यह कहने आया हूं कि दरिया अभी मिलने आयेगी। वह पागल स्त्री है। यदि वह आपके पास आकर मेरी कोई बुराई करे तो आप मुझसे पूछे बिना मुझ पर क्रुद्ध न होना।'

'न तो मैं तुम पर क्रूद्ध हो सकती हूं और न तुम्हारी बुराई ही सुन सकती हूं।'

'इस दास पर इतना प्यार अवश्य बना रहे।' यह कहकर मुबारक चला गया।

4

जो तातारी-युवती हाथ में तलवार लिए जेबुन्निसा के कमरे के द्वार पर थी, उसने दरिया को देखकर कहा, 'इतनी रात को तू यहां किसलिए आई है ?'

'तुझसे क्या बताऊं ? तू खबर कर दे।'

'तू बाहर जा यहां से। मैं खबर नहीं करूंगी।'

'क्रोध क्यों करती है ? तुम्हारे रूप की बदौलत ही काबुल और पंजाब फतह हुए हैं। तुम्हारे बिगड़ने से काम कैसे चलेगा ? यह मेरा परवाना देखो ओर सूचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दो।'

'मैं तुम्हें भी पहचानती हूं और तुम्हारे परवाने को भी। इतनी रात को शाहजादी सुरमा नहीं खरीदती हैं। कल सवेरे आना। इस समय तेरा कोई प्रेमी हो तो उसके पास जा। अगर न हो तो...।'

'तू जहन्नुम में जा। तू क्या समझती है कि मैं आधी रात को बिना काम के लिए आई हूं ?'

'शाहजादी इस समय आनन्द में होगी।'

'क्या मैं इतना भी नहीं समझती ? तू भी आनन्द करेगी ? अच्छा तो कर।' यह कहकर दरिया ने ओढ़नी के भीतर से एक शराब की बोतल निकाली और उसके मुंह में उड़ेल दी। तातारी सूखी नदी की तरह उसे एक सांस में पी गई। फिर बोली, 'बहुत बढ़िया शर्बत है। तू खड़ी रह, मैं सूचना देती हूं।'

पहरेदारिन ने अन्दर जाकर देखा जेबुन्निसा हंस-हंसकर फूलों का एक कुत्ता बना रही थी, ठीक मुबारक के जैसा।

जेबुन्निसा ने पहरेदारिन से कहा, 'नर्त्तकियों को बुलाओ।'

'जो आज्ञा ! दरियाबीवी हाजिर है। मैं लौटा रही थी उसे, परन्तु वह नहीं मानी।'

'तुझे कुछ इनाम मिला ?'

पहरेदारिन ने ओढ़नी से मुंह ढक लिया। जेबुन्निसा बोली, 'अच्छा नर्त्तकियां अभी रुकें। दरिया को यहां भेज।'

दरिया ने आकर जेबुन्निसा को सलाम किया। वह फूल के बने कुत्ते की ओर देखने लगी। जेबन्निसा ने पूछा, 'कैसा बना है ?'

'ठीक मनसबदार मुबारकखां जैसा बना है ?'

'तू लेगी इसे ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'कुत्ता या आदमी ?' दरिया ने पूछा।

जेबुन्निसा हंसकर बोली, 'तू जिसे चाहे।'

'तब कुत्ता हुजूर रखें, मैं आदमी को ले लूंगी ?'

'इस समय तो मेरे पास कुत्ता ही है ? तू यही ले जा।'

यह कहकर जेबुन्निसा ने शराब के नशे में कुत्ते को उठाकर दरिया के ऊपर फेंक दिया। दरिया उसे उठाकर ओढ़नी में रखती हुई बोली, 'आपकी कृपा से मुझे कुत्ता और आदमी दोनों ही प्राप्त हो गए।'

'वह कैसे ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'उसकी मेरे साथ शादी हुई थी।'

'चंडालिनी कहां की, भाग यहां से।'

दरिया हाथ जोड़कर बोली, 'मुल्ला और गवाह दोनों जीवित हैं। आप उनसे पूछ सकती हैं।' दरिया बोली।

जेबुन्निसा ने त्योरी चढ़ाकर कहा, 'मेरी आज्ञा से वे सब सूली पर चढ़ा दिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेंगे।'

दरिया यह सुनकर कांप उठी। वह जानती थी कि जेबुन्निसा सब कुछ कर सकती है। उसने बात बदलकर कहा, 'शाहजादीजी ! मैं इस समय दो खबरें बेचने आई हूं, बहुत महत्वपूर्ण हैं।'

'क्या खबर है, बोल ?'

'दो खबरें हैं। एक मुबारक के विषय में है। आज्ञा हो तो कहूं आपसे।'

'कहो।' जेबुन्निसा बोली।

'वह ज्योतिषी को अपना भाग्य दिखा रहे थे।'

'ज्योतिषी ने क्या कहा ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

उसने कहा, 'शाहजादी से शादी करोगे तो तुम्हारी पद-वृद्धि होगी। तुम उन्नति करोगे।

'झूठी बात है ? वह ज्योतिषी के पास कब गया ?'

'यहां आने से पूर्व।'

'यहां कौन आया था ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

दरिया कुछ भयभीत हुई। परन्तु फिर साहस करके बोली, 'मुबारक खां साहब आये थे।'

'तूने कैसे जाना ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'मैंने उन्हें आते देखा था।' दरिया बोली।

'जो ऐसी बातें कहता है उसे मैं सूली पर चढ़वा देती हूं।'

दरिया बोली, 'हुजूर के अतिरिक्त अन्य कहीं मैं यह बात जुबान पर नहीं ला सकती, यह आप विश्वास रखें।'

'जुबान पर लाई तो मैं तेरी जीभ कटवा दूंगी। दूसरी क्या खबर है ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

दूसरी खबर रूपनगर की राजकुमारी की है।' यह कहकर उसने चंचलकुमारी की चित्र तोड़ने की पूरी कहानी कह सुनाई।

जेबुन्निसा ने कहा, 'यह खबर अच्छी है, पुरस्कार मिलेगा।' उसने रंगमहल के कोषाध्यक्ष के नाम पुरस्कार का परवाना लिखकर दरिया को दिया। उसे लेकर दरिया कोपाध्यक्ष के पास चली गई।

पहरेदारिन दरिया को पकड़कर बोली, 'भागती कहां हो ?'

'मेरा काम हो गया। अब मैं अपने घर जाऊंगी।'

'रुपये मिले हैं, कुछ मुझे नहीं देगी ?'

'मुझे धन की अत्यन्त आवश्यकता है। एक गाना सुना देती हूं तुझे। ला, सारंगी ला।' दरिया बोली।

पहरेदारिन के पास सारंगी रखी थी। वह रंगमहल में गाने-बजाने की धूम रखती थी। सभी बेगमों का एक-एक नर्तकियों का दल था। रंगमहल में रात्रि को गाना-बजाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता था। दरिया तातारी की सारंगी लेकर गाने लगी। वह बहुत ही सुरीला गाती थी। उसने गाना आरम्भ किया तो जेबुन्निसा ने तातारी को बुलाकर पूछा, यह कौन औरत गा रही है ?'

'दरिया बीवी।' तातारी ने कहा।

'उसे यहां भेजो।' जेबुन्निसा बोली।

दरिया ने जेबुन्निसा के सामने जाकर सलाम किया। जेबुन्निसा बोली, 'तुम बहुत सुरीला गाती हो दरिया ! वीणा पर अपना मधुर राग सुनाओ।'

दरिया ने बहुत ही मधुर गीत गाया। शाहजादी ने बहुत-सी गायिकाओं के गाने सुने थे, परन्तु ऐसा सुरीला गाना नहीं सुना था। दरिया का गाना समाप्त होने पर जेबुन्निसा ने उससे पूछा, 'क्या तुमने कभी मुबारक के सामने भी गाना गाया है ?'

'मेरा गाना सुनकर ही तो उन्होंने मुझसे शादी की थी।'

जेबुन्निसा ने फूल का एक गुच्छा उठाकर दरिया के गाल पर मारा। गुच्छा उसके कर्णफूल पर लगा और उसका कान कट गया। उससे रक्त बह चला। जेबुन्निसा ने उसे पुरस्कार देकर विदा करते हुए कहा, 'अब फिर कभी न आना यहां।'

दरिया सलाम करके बड़बड़ाती हुई विदा हुई, 'फिर आऊंगी, फिर जलाऊंगी और फिर मार खाऊंगी, फिर रुपये लूंगी, तुम्हें सर्वनाश तक पहुंचाऊंगी।'

औरंगजेब की बहुत-सी रानियां थीं और शरियत के नियमों से प्रतिदिन वेतन पाने वाली भी बहुत थीं, परन्तु मुगल बादशाह जिससे पहला विवाह करते थे, वही प्रधान महारानी होती थीं। औरंगजेब के दुर्भाग्य से एक हिन्दू-कन्या उनकी महारानी थीं। अकबर ने राजपूत राजाओं की कन्याओं से विवाह करने की प्रथा चलाई थी। उसी नियम के अनुसार सभी बादशाहों की हिन्दू रानियां थीं। औरंगजेब की प्रधान महिषी जोधपुरी बेगम थीं।

प्रधान महारानी होने पर भी जोधपुरी बेगम शहंशाह की प्यारी महारानी नहीं थीं। जो सबसे अधिक प्यारी थी वह उदयपुरी बेगम थी। उदयपुर से उसका कोई सम्बन्ध न था। एशिया-खण्ड के दूर-पश्चिम प्रान्त का जाजिया-खण्ड उसकी जन्मभूमि थी। बचपन में एक दास-व्यापारी उसे भारत लाया थ। दारा ने उसे मोल ले लिया था। आयु पाने पर वह अद्वितीय रूपवती हुई। उसके रूप पर मोहित होकर दारा उसके वशीभूत हो गया। उदयपुरी मुसलमान नहीं, कृस्तान थी। दारा को युद्ध में समाप्त कर औरंगजेब सिंहासन पर बैठा और उसकी रानी उदयपुरी को उसने अपनी अर्द्धांगिनी बनाया। उदयपुरी जैसी अनुपम सुन्दर थी, वैसी ही अद्वितीय शराब पीने वाली भी थी। दिल्ली के बादशाह मुसलमान होकर भी शराब के बहुत शौकीन थे। उनका जनान-खाना उसका केन्द्र था।

जेबुन्निसा उदयपुरी के महल में गई ओर सलाम करके कहा, 'अम्मीजान ! आपकी तबियत तो ठीक है ?'

'इतनी रात को कैसे आई जेबुन ?' उसने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आपको एक खुशखबरी देने आई हूं ?'

'क्या मरहठा डाकू मारा गया ?' उसने कहा।

'उससे भी बड़ी प्रसन्नता की बात है।' यह कहकर जेबुन्निसा ने चंचलकुमारी की चित्र तोड़ने की पूरी कहानी कह सुनाई।

उदयपुरी ने पूछा,'क्या यही वह प्रसन्नता की बात है ?'

'ये असुन्दर दासियां आपका तम्बाकू भरती हैं, यह मुझसे देखा नहीं जाता। बादशाह से कहिए कि रूपनगर की राजकुमारी आकर हुजूर का तम्बाकू भरे।'

उदयपुरी ने नशे की झोंक में कह दिया, 'अच्छी बात है।'

उसके कुछ देर पश्चात् बादशाह उदयपुरी के भवन में आए। उदयपुरी ने नशे की झोंक में जेबुन्निसा से चंचलकुमारी की जो बातें सुनी थीं, वे ज्यों-की-त्यों कह डालीं। साथ ही प्रार्थना की कि वह चाहती है कि चंचलकुमारी वहां आकर उसका तम्बाकू भरे।

औरंगजेब ने शपथ लेकर वैसा ही करने का वचन दिया। वह क्रोध से तिलमिला उठा।

5

दूसरे दिन औरंगजेब ने रूपनगर के राजा को एक आज्ञा-पत्र भेजा। वह पत्र कुटिलतापूर्ण था। उसमें लिखा था, 'बादशाह सलामत रूपनगर की राजकुमारी के रूप-लावण्य का वृत्तान्त सुनकर उस पर मुग्ध हो गए हैं। रूपनगर के राजासाहब से बादशाह बहुत प्रसन्न हैं। वह राजकुमारी का पाणिग्रहण करना चाहते हैं। राजासाहब तुरन्त अपनी कन्या को दिल्ली भेजने का प्रबन्ध करें। शीघ्र ही शाही सेना आकर राजकुमारी को दिल्ली लाने के लिए भेजी जाएगी।'

इस समाचार के रूपनगर पहुंचते ही वहां हलचल मच गई। रूपनगर में आनन्द की लहर दौड़ गई। जोधपुर, अम्बर आदि बड़े-बड़े राजपूत राजे मुगल-बादशाह को कन्या-दान करना अपना बहुत बड़ा सौभाग्य समझते थे। ऐसी दशा में रूपनगर के राजा के लिए यह आनंद का विषय था। दिल्ली के बादशाह उसके दामाद होंगे। चंचलकुमारी महारानी होंगी। इससे बढ़कर उनका और क्या सौभाग्य हो सकता था? राजा, रानी, पुरवासी, रूपनगर की प्रजा, सभी आनन्द में मग्न हो उठे। रानी ने देव-मन्दिर में जाकर पूजा की, परन्तु चंचलकुमारी की सखियों में शौक छा गया। वे सब जानती थीं कि इस सम्बन्ध से चंचलकुमारी दुःखी होगी। उन्हें वह घटना भी ज्ञात थी जिसमें चंचलकुमारी ने औरंगजेब के चित्र पर पैर रखा था।

यह समाचार सुनकर जोधपुरी बेगम बहुत दुःखी हुई। वह औरंगजेब के महल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी अपना हिन्दुत्व रखती थीं। हिन्दू-दासियों द्वारा उनकी सेवा होती थी। वह हिन्दू का बनाया भोजन करती थीं। औरंगजेब के महल में हिन्दू-देवता की मूर्ति स्थापित कर वह उसकी पूजा किया करती थीं।

बादशाह से उन्होंने विनीत भाव से कहा, 'जहांपनाह ! जिसकी आज्ञा से सारा देश कांपता है, उसके क्रोध के योग्य क्या एक मामूली साधारण लड़की हो सकती है ?'

औरंगजेब हंसा, परन्तु कुछ कहा नहीं।

जोधपुरी ने अपने मन में कहा, 'हे भगवान ! तू मुझे विधवा कर दे। यह राक्षस अधिक दिन जिएगा तो भारत से हिन्दुत्व का नाम लुप्त हो जाएगा। यह बड़ा पापी है।'

देवी उनकी एक दासी थी। वह जोधपुर से उनके साथ आई थी। वह वापस जोधपुर जाना चाहती थी। जोधपुरी ने उसे एकान्त में बुलाकर कहा, 'तुम बहुत दिन से जोधपुर जाना चाहती हो देवी ! मैं आज तुम्हें जाने की आज्ञा देती हूं। परन्तु तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। काम बहुत विश्वास का है। उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार दूंगी। क्या तुम मेरा काम कर सकोगी ?'

'जो आज्ञा होगी, मैं वही करूंगी।'

'तुमने रूपनगर की राजकुमारी का वृतान्त सुना है ? तुम्हें उसके पास जाना होगा। मैं तुम्हें कोई पत्र न दूंगी। जो कहना, मेरे नाम से कहना और मेरी इस अंगूठी को दिखाना। वह तुम पर विश्वास करेगी। तुम घोड़े पर चढ़कर तुरन्त वहां जाओ।'

'मुझे उनसे क्या-क्या कहना होगा ?' देवी ने पूछा।

'राजकुमारी से कहना कि हिन्दू की कन्या होकर मुसलमान के घर न आए। मैं यहां नित्य मृत्यु की कामना करती हूं। उससे कहना कि उसका चित्र तोड़ने का वृतान्त बादशाह ने सुन लिया था। उसे दण्ड देने के लिए ही यहां लाया जा रहा है। वह उससे उदयपुरी बेगम की चिलम भरवाएंगे। उससे कहना कि वह भयभीत न हो। दिल्ली का शासन हिल रहा है। दक्षिण में मरहठे मुगलों की हड्डियां तोड़ रहे हैं। राजपूत लोग एकत्रित हो गए हैं। जजिया की ज्वाला से सम्पूर्ण राजपूताना जला जा रहा है। राजपूताने मे गौ-हत्याएं हो रही है। कौन राजपूत इसे सहेगा ?' महारानी ने कहा।

'ऐसी बातें न कहें। दिल्ली का सिंहासन आपके पुत्र के लिए है। क्या आप अपने पुत्र के सिंहासन को समाप्त करना चाहती हैं ?'

'मुझे यह भरोसा नहीं है कि मेरा पुत्र इस सिंहासन पर बैठेगा। जब तक राक्षसी जेबुन्निसा और डाकिन उदयपुरी जियेंगी, तब तक यह असम्भव है। मैं एक बार रोशनआरा की मार खा चुकी हूं।' कहती-कहती जोधपुरी रो पड़ीं। वह बोलीं, 'इन सब बातों की आवश्यकता नहीं है। उससे कहना कि मैं आशीर्वाद देती हूं। राजा की महिषी होने पर प्रतिज्ञा करना कि उदयपुरी उसका तम्बाकू भरे और जेबुन्निसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे पंखा झले।'

'यह भी कहीं सम्भव है ?' देवी बोली।

'मैं जो कहती हूं तू वह कर सकेगी या नहीं ?'

'अवश्य कर सकूंगी।' देवी बोली।

जोधपुरी बेगम ने देवी को रुपये और पुरस्कार तथा अंगूठी देकर विदा किया।

6

जेबुन्निसा के विलास-भवन में रात्रि को मुबारक आया। वह कालीन पर घुटने टिकाए बैठा था। उसके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और चेहरा उतरा हुआ था। जेबुन्निसा रत्न-जड़ित पलंग पर बैठी तम्बाकू पी रही थी।

वह बोली, 'ठीक-ठीक कहोगे मुबारक ?'

मुबारक हाथ जोड़कर बोला, 'जो आज्ञा हो, वही कहूंगा।'

'क्या तुमने दरिया से शादी की थी ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'जब अपने देश में था, तब की थी।'

'और तुम मुझसे भी शादी करना चाहते थे ?'

'मैंने तलाक देकर उसे छोड़ दिया था।'

'तुमने उसे क्यों छोड़ा था ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'वह पगली है, यह तो आपको मालूम ही हो गया होगा।'

'पगली तो वह नहीं जान पड़ती।'

'वह अपने काम की सफलता के लिए यहां आती है। काम के समय मैंने भी उसमें पागलपन नहीं देखा, परन्तु अन्य हर समय वह पागल रहती है। विचित्र पगली है।'

'क्या तुम उसे यहां भेज सकोगे ? तुम उससे कह देना कि मुझे अच्छे सुरमे की आवश्यकता है।'

'मैं कल प्रातः यहां से बाहर जा रहा हूं।'

'तुमने इसके विषय में तो मुझसे कुछ नहीं कहा ?'

'मैं यही बात कहने यहां आया था।'

'तुम कहां जाओगे ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'रूपनगर नाम का कोई राज्य है। वहां के राजासाहब की कन्या को दिल्ली लाने कल सेना जाएगी। मुझे उसी के साथ जाना है।'

'उसके विषय में मुझे तुमसे कुछ कहना है। पहिले एक और बात का उत्तर दो। क्या तुम कल कहीं ज्योतिषी के पास अपना भाग्य दिखाने गए थे ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गया था।' मुबारक बोला।

'क्यों गए थे ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'सब जाते हैं, इसलिए मैं भी चला गया। दरिया ही मुझे वहां ले गई थी।' मुबारक बोला।

'हूं !' जेबुन्निसा ने गुर्राकर कहा। फिर वह कुछ देर फूलों से खेलकर बोली, 'क्या ज्योतिषी ने यह कहा था कि यदि तुम शाहजादी से शादी करोगे तो तुम्हारी तरक्की होगी ?'

'हिन्दू लोग शाहजादी नहीं कहते। ज्योतिषी ने राजपुत्री कहा था !' मुबारक ने उत्तर दिया।

'क्या शाहजादी राजपुत्री नहीं है ?'

'क्यों नहीं, राजपुत्री ही तो है ?'

'क्या इसीलिए उस दिन तुमने शादी करने को कहा था ?'

'मैंने केवल धर्म के विचार से वह बात कही थी।'

'खैर, इन सब बातों की अब कोई आवश्यकता नहीं है। तुमसे मैंने इतने प्रश्न किए, इसके लिए तुम क्रुद्ध न होना। तुम्हारे क्रुद्ध होने से मुझे दुःख होगा। तुम मेरे प्रिय हो। मैं तुम्हें देखती हूं तो मुझे प्रसन्नता होती है। तुम मेरे पास यहां पलंग पर आकर बैठो। मैं तुम्हारे पास बैठूंगी।'

जेबुन्निसा ने मुबारक को अपने निकट बिठाकर उसको इत्र मला। उसके पश्चात् उसने कहा, 'अब मैं तुमसे रूपनगर की बात करूंगी। ज्ञात नहीं चंचलकुमारी के पिता उसे भेज़ेंगे अथवा नहीं। वह न भेजें तो तुम उसे उनसे छीनकर ले आना।'

'यह आज्ञा तो हमें बादशाह ने नहीं दी है।'

'तुम मुझे ही बादशाह समझो। यदि बादशाह का यह तात्पर्य नहीं है, तो सेना क्यों जा रही है ?'

'मार्ग में सुरक्षा के लिए।' मुबारक बोला।

'बादशाह की सेना जिस मुबारक कार्य के लिए जाए, उस कार्य को सफल होना ही चाहिए। तुम लोग, जैसे भी हो, उसे ले आओ। यदि इससे बादशाह क्रुद्ध होंगे तो मैं देख लूंगी।

'मेरे लिए इतनी ही आज्ञा पर्याप्त है। आपका तात्पर्य ज्ञात कर मेरी बाजुओं में और शक्ति आ गई।'

'यही बात मैं कहना चाहती थी। राजकुमारी को मेरे ही कहने पर यहां लाया जा रहा है।'

'वह किसलिए ?'

'इसलिए कि उदयपुरी के रूप की प्रशंसा अब सही नहीं जाती। सुना हैं चंचलकुमारी बहुत सुन्दर है। यदि ऐसा ही है, तो उदयपुरी का स्थान वह ले लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं उसे बुला रही हूं, यह जानकर वह मेरी ओर झुकेगी। इससे मेरे मार्ग में जो एक कांटा है, वह दूर हो जाएगा। यह अच्छा ही हुआ कि तुम भी जा रहे हो। यदि देखो कि वह उदयपुरी से अधिक सुन्दर...।'

'मैंने बेगम को कभी नहीं देखा।' मुबारक बोला।

'देखना चाहो तो मैं दिखा सकती हूं। तुम्हें इस पर्दे की आड़ में छिपना होगा।' जेबुन्निसा ने कहा।

'नहीं।' मुबारक बोला।

जेबुन्निसा हंसकर बोली, 'दिल्ली में तुम्हारे जैसे कितने मूर्ख हैं ? खैर, जो मैं कहती हूं, वह सुनो। उदयपुरी को न देखो। मैं तुम्हें उसका चित्र दिखाती हूं। चंचलकुमारी को देखना। यदि वह उदयपुरी से अधिक सुन्दर दिखाई दे, तो उससे कहना कि मेरी ही कृपा से वह बादशाह की बेगम बन रही है। यदि देखो तो वह देखने में वैसी नहीं है तो...।'

मुबारक ने पूछा, 'यदि देखूं कि वह देखने में उतनी अच्छी नहीं है तो क्या करूं?'

'तुम शादी करना चाहते हो ना ! तब तुम उससे शादी कर लेना। उसके पश्चात् बादशाह जो आज्ञा, देंगे, वह होगा।'

'तो क्या मुझ पर आपका तनिक भी प्रेम नहीं है ?'

'शाहजादी और प्रेम !'

'तब खुदापाक ने शाहजादियों को किसलिए बनाया है ?'

'भोग-विलास के लिए। प्रेम में दुःख सहना पड़ता है।'

मुबारक ने कुछ सुनना न चाहा। उसने कहा, 'जो बादशाह की बेगम बनेगी, उसे मैं कैसे देख पाऊंगा ?'

'किसी चालाकी से देख लेना।'

'बादशाह सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?' मुबारक बोला।

'इसका उत्तरदायित्व मैं संभाल लूंगी।'

'आप जैसा कहती हैं, मै वैसा ही करूंगा, परन्तु इस गरीब पर जरा कृपा-दृष्टि रखना।' मुबारक बोला।

'कहा तो, तुम मेरे प्राण हो।'

'क्या यह आप प्रेमपूर्वक कह रही हैं ?'

'कह तो चुकी कि प्रेम करना गरीबों का काम है, शाहजादियां प्रेम नहीं करतीं।' जेबुन्निसा मुस्कराकर बोली।

मुबारक मर्माहत होकर वहां से विदा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7

निर्मल राजकुमारी चंचलकुमारी के पास जाकर बैठी। चंचलकुमारी अकेली बैठी रो रही थी। राजसिंह का चित्र उनके हाथ में था। निर्मल को देखकर चंचल ने चित्र उलट दिया, परन्तु निर्मल को समझने में देर न लगी कि वह चित्र किसका था। निर्मल ने पूछा, 'अब क्या उपाय करना है ?'

'उपाय चाहे जो भी हो, मैं किसी प्रकार भी मुगलों की दासी नहीं बनूंगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है।'

'यह मैं जानती हूं कि क्या चाहती हो, परन्तु बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध तुम्हारे पिता का साहस नहीं है जो मना कर सकें। यह तुम्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कोई उपाय नहीं है। इसे स्वीकार करना सौभाग्य की बात है। उनके सामने ऐसा कौन व्यक्ति है जो अपनी कन्या दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने की इच्छा न करे? पृथ्वीश्वरी बनने से तुम इतनी क्यों हिचकती हो ?'

'तू यहां से चली जा निर्मल !' चंचलकुमारी ने झुंझलाकर कहा।

निर्मल सोचने लगी कि अब क्या उपाय किया जा सकता है। उसने कहा, 'राजकुमारी जी ! आपने कभी यह भी सोचा है कि यदि आप दिल्ली न गईं तो आपके पिता की क्या दशा होगी ?'

'सोचा है। यदि मैं न जाऊंगी तो मेरे पिता विनाश को प्राप्त होंगे। रूपनगर के गढ़ का एक पत्थर भी शेष न बचेगा। मैंने सोच लिया है कि मैं ऐसा कभी न करूंगी। बादशाह की सेना के आते ही मैं उसके साथ दिल्ली के लिए प्रस्थान करूंगी। मैंने यह सब कुछ सोच लिया है।' चंचलकुमारी ने कहा।

निर्मल ने प्रसन्न होकर कहा, 'मैं यही परामर्श देने आई थी।'

राजकुमारी की भौंहें फिर तन गई। उन्होंने कहा, 'क्या तू समझती है कि मैं दिल्ली जाकर बादशाह के साथ शादी करूंगी ? हंसिनी कव्वे की सेवा करेगी ? तू भूलती है निर्मल !'

निर्मल ने पूछा, 'तब क्या करेंगी आप ?'

चंचलकुमारी ने अपने हाथ की अंगूठी दिखाकर कहा, 'दिल्ली के मार्ग में अपना प्राण-त्याग कर दूंगी।'

'क्या अन्य कोई उपाय नहीं है ?' निर्मल बोली।

'अन्य क्या उपाय है ? ऐसा कौन वीर है जो मेरा उद्धार करके बादशाह से शत्रुता मोल लेगा ? राजपूताने के सब राजे मुगलों के दास हो चुके हैं। क्या कोई है तेरी दृष्टि में ?'

'यह क्यों कहती हो राजकुमारी जी। परन्तु दूसरों के लिए कोई सहज ही अपने सर्वस्व की बाजी नहीं लगाता। महाराणा प्रताप आज नहीं है, संग्रामसिंह भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, राजसिंह तो हैं, परन्तु आपके लिए राजसिंह अपना सर्वस्व क्यों खोयेंगे ? आप मारवाड़ घराने की हैं।'

'इससे क्या हुआ ? भुजाओं में बल होने पर कौन राजपूत शरणागत की रक्षा न करेगा ? मैं यही सोच रही थी निर्मल ! मैं उन्हीं की शरण लूंगी। क्या वह मेरी रक्षा न करेंगे ? क्या तुम्हें विश्वास नहीं है कि वह मेरी रक्षा के लिए आयेंगे ? मुझे विश्वास है कि अवश्य आयेंगे।'

निर्मल चंचलकुमारी की ओर स्थिर दृष्टि से देखकर बोली, 'राजकुमारी जी, जो वीर इस विपत्ति से आपकी रक्षा करेगा, उसे आप क्या देंगी ? क्या आपने कभी यह भी विचार किया है ?'

'क्या दूंगी सखी ! मेरे पास देने को है ही क्या ?'

'आपके पास आप स्वयं ही हैं। आपसे मूल्यवान रत्न और कौन-सा हो सकता है ?'

चंचलकुमारी ने लज्जित होकर कहा, 'नटखट कहीं की।'

'राजाओं के यहां तो ऐसा ही हुआ करता है। यदि आप रुक्मणि होतीं तो यदुपति आकर अवश्य आपकी रक्षा करते।'

चंचलकुमारी मौन हो गई। सूर्योदय मेघ-मालापर जैसे अपनी किरणें डालकर नवीन सौंन्दर्य बिखेरता है, वैसे ही चंचलकुमारी के मुख पर लज्जा और सौंन्दर्य बिखर गये। वह बोली, 'मेरा ऐसा भाग्य कहां जो उन्हें पाऊं निर्मल ?'

'मैंने सुना है कि उनकी बाहुओं में बहुत बल है। क्या उनके पास दूत नहीं भेजा जा सकता ?' निर्मल बोली।

चंचलकुमारी ने कहा, 'गुरुदेव को बुला लाओ निर्मल ? उनसे अधिक मेरा हित चाहने वाला अन्य कौन है ?'

उसी समय कुछ सखियों ने आकर समाचार दिया, 'एक स्त्री मोती बेचने आई है।'

राजकुमारी ने कहा, 'इस समय मुझे मोती नहीं खरीदने हैं। उससे कहो, मेरा मन ठीक नहीं है।'

सखी ने कहा, 'हमने लौटाने की चेष्टा की, परन्तु वह जाती ही नहीं। उसे कोई विशेष काम है। आपसे।'

लाचार होकर चंचलकमारी से उसे अपने निकट बुला लिया।

उसने कुछ झूठे मोतियों की मालाएं दिखाई। राजकुमारी ने चिढ़कर कहा, 'ये झूठे मोतियों की मालाएं दिखाने के लिए ही तू इतना आग्रह कर रही थी।'

'नहीं, मेरे पास दिखाने योग्य वस्तुएं भी हैं, परन्तु वे एकान्त में ही दिखाई जा सकती हैं। आप एकान्त स्थान पर चलें। वहीं मैं वे वस्तुएं आपको दिखाऊंगी।'

चंचलकुमारी ने निर्मल के अतिरिक्त अन्य सब सखियों को वहां से बाहर भेज दिया। तब उस स्त्री ने जोधपुरी बेगम की अंगूठी दिखाई। उसे देखकर चंचलकुमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने पूछा, 'यह तुमने कहां से पाई ? तुम कौन हो और कहां से आ रही हो ?'

'ये जोधपुरी बेगम की अंगूठी है। मैं उन्हीं के पास से आ रही हूं। मैं उनकी दासी हूं।'

'तुम यह अंगूठी लेकर किस लिए आई हो ?'

देवी ने सब बातें चंचलकुमारी से कहीं। उन्हें सुनकर निर्मल और चंचलकुमारी एक-दूसरे का मुंह देखने लगी। उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ यह सुनकर।

चंचल ने देवी को पुरस्कार देकर विदा किया। देवी जाते समय जोधपुरी बेगम की अंगूठी वहीं छोड़कर गई। उसके चले जाने पर राजकुमारी ने कहा, 'निर्मल ! उस दासी को बुलाओ। वह अपनी अगूंठी यहीं भूल गई है। यह उसे दे दो।'

'भूल नहीं गई है वह, जान पड़ता है, जान-बूझकर इसे यहां छोड़ गई है।' निर्मल ने निश्चयपूर्वक कहा।

'मैं इसका क्या करूंगी ?' चंचलकुमारी ने कहा।

''अभी रख छोड़ो। किसी समय जोधपुरी को लौटा देंगे।'

'चाहे जो भी हो, बेगम के समाचार से मेरा साहस बढ़ गया है। मुझे महाराज राजसिंह का ही आश्रय लेना चाहिए।'

'यही उचित रहेगा।' निर्मल ने कहा।

उसी समय चंचलकुमारी के गुरुदेव अनन्तमिश्र आ गए। उन्होंने चंचलकुमारी से पूछा, 'चंचल बेटी ! मुझे इस समय किस लिए स्मरण किया है तुमने ?'

'मैंने आपको अपनी रक्षा के लिए स्मरण किया है। आपके अतिरिक्त अन्य कोई मुझे प्रस्तुत संकट से नहीं बचा सकता।'

अनन्तमिश्र बोले, 'मैं समझ गया बेटी ! रुक्मणि का विवाह है। उसके लिए बूढ़े पुरोहित को ही द्वारिका जाना पड़ेगा। मार्ग-व्यय की व्यवस्था करो, मैं प्रस्थान के लिए उद्यत हूं।'

चंचलकुमारी ने उन्हें एक थैली दी, जिसमें कुछ स्वर्ण-मुद्राएं थीं। उन्होंने उसमें से पांच स्वर्ण-मुद्राएं लेकर शेष लौटा दीं और कहा, क्या मैं एक बात कह सकता हूं ?'

'आप यदि मुझे अग्नि में प्रवेश करने को कहेंगे तो मैं उसके लिए भी उद्यत हूं। क्या आज्ञा हैं महाराज ?'

'तुम राणा राजसिंह को एक पत्र लिखो।'

चंचलकुमारी ने सोचकर कहा, 'मैं उनसे अपरिचित हूं। पत्र कैसे लिखूं ? परन्तु जब मैं उनसे भिक्षा मांग रही हूं तो लज्जा ही क्या है ? मैं अभी पत्र लिखकर आपको देती हूं।'

निर्मल ने कहा, 'जब तक हम लोग पत्र लिखें तब तक आप तैयार हो आयें।'

मिश्रजी चले गए, परन्तु वह अपने घर नहीं गए। वह राजा विक्रमसिंह के पास गये। उन्होंने उनसे कहा, 'मैं देशाटन के लिए जाना चाहता हूं महाराज ! आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशीवार्द देने आया हूं।'

उन्होंने कहा कि वह उदयपुर तक जा रहे हैं। उन्होंने राणा से परिचित होने के लिए एक पत्र मांगा। राजा ने पत्र लिख दिया।

अनन्तमिश्र महाराज के पास से पत्र लेकर फिर चंचलकुमारी के पास आए। चंचलकुमारी और निर्मल दोनों ने पत्र समाप्त कर लिया था। वह पत्र एक हार के साथ उनके हाथ में देकर चंचलकुमारी ने कहा, 'राणा के पत्र लेने के उपरान्त यह हार उनके गले में डाल दीजियेगा।'

राजकुमारी ने प्रणाम़ करके उन्हें विदा किया। गुरुदेव अनन्तमिश्र ने राणाराजसिंह से भेंट करने के लिए प्रस्थान किया।

चंचलकुमारी और निर्मल वहीं खड़ी रह गईं।

8

अनन्त मिश्र ने उदयपुर की यात्रा आरम्भ की। उन्होंने एक नौकर अपने साथ ले लिया।

उदयपुर का मार्ग बहुत ही दुर्गम था। पहाड़ी मार्ग बड़े ही उतार-चढ़ाव का था। एकाहारी ब्राह्मण, जिस दिन जहां आश्रय पाते उस दिन वहीं आश्रय ग्रहण कर लेते थे। मार्ग में डाकुओं का भय था। उनके पास रत्नों की माला थी। उसके कारण वह अकेले नहीं चलते थे। एक दिन एक देवालय से चलते समय उन्हें कोई साथी न खोजना पड़ा। चार व्यक्ति उसी देवालय की अतिथिशाला में ठहरे हुए थे। प्रातःकाल होते ही वे लोग भी पहाड़ी की चढ़ाई पर उनके साथ चल पड़े। मिश्रजी से उन लोगों ने पूछा, 'तुम कहां जाओगे पंडित ?'

'मैं उदयपुर जाऊंगा।' उन्होंने कहा।

'हम भी उदयपुर ही जायेंगे। अच्छा ही हुआ कि साथ मिल गया।' उनमें से एक बोला।

मिश्रजी ने पूछा, 'उदयपुर कितनी दूर है यहां से ?'

निकट ही है। संध्या तक हम लोग उदयपुर पहुंच जायेंगे। ये सब स्थान राणा के राज्य में ही हैं।'

बातचीत करते हुए वे आगे बढ़ते रहे। पहाड़ी मार्ग बहुत ही भयानक था। कहीं कोई बस्ती नहीं थी। अब वह दुर्गम मार्ग प्रायः समाप्त हो चला था। दोनों किनारों पर ऊंचे पर्वत थे। उन पर्वतों के बीच से एक छोटी नदी बह रही थी। नदी के किनारे-किनारे पगडण्डी थी। वहां किसी ओर से कोई किसी को देख नहीं सकता था। केवल पहाड़ के ऊपर से ही कोई किसी को देख सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रजी के साथ चलने वाले एक यात्री ने पूछा, 'तुम्हारे पास कितना धन है पंडित ?'

यह सुनकर मिश्रजी चकित हुए। वह समझ गए कि वे लोग सम्भवतः डाकू हैं।

'मेरे पास धन कहां से आया भैया ! मैं तो साधारण निरीह दीन ब्राह्मण हूं।'

'जो कुछ भी हो हमें दे दो। इस जंगल में डाकू रहते हैं।' उनमें से एक ने कहा।

मिश्रजी के एक बार तो मन में आया कि रत्नों की माला को रक्षा के लिए उन्हें दे दें, परन्तु फिर सोचा कि वे सब उसके लिए अपरिचित हैं। क्या उनका विश्वास किया जा सकता है ? यह सोचकर उन्होंने कहा, 'मैं तो भिक्षुक हूं भाई ! मेरे पास क्या रखा है ?'

उनमें से एक ने ब्राह्मण को धक्का दिया और दूसरे ने उनकी छाती पर चढ़कर उनके मुंह पर हाथ रख दिया। मिश्रजी का नौकर किधर भागा, किसी ने नहीं देखा। तीसरे ने उसकी गठरी छीन ली। उसके अन्दर से चंचलकुमारी की भेजी हुई माला, दो पत्र और एक स्वर्ण-मुद्रा निकाल ली। डाकू ने उन्हें पा जाने पर अपने साथी से कहा, 'अब इसकी हत्या करना व्यर्थ है। इसके पास जो था वह सब हमने ले लिया है। इसे छोड़ दो।'

दूसरे ने कहा, 'इसे छोड़ा नहीं जाएगा। छोड़ने से यह शोर मचाएगा आजकल राणाराजसिंह इसी जंगल में है। इसे किसी पेड़ से बांध दो। यह पेड़ से बंधा पड़ा रहेगा।'

उन्होंने मिश्रजी के हाथ-पैर मुंह सब बांधकर उन्हें एक वृक्ष से बांध दिया। उसके पश्चात् वे चंचलकुमारी की माला और पत्र लेकर पहाड़ की ओट में चले गए।

सवार पर्वत के ऊपर से यह दृश्य देख रहा था।

डाकू नदी के किनारे के वन में घुसकर दुर्लभ मार्ग से आगे बढ़ गए। कुछ दूर जाकर वे एक कन्दरा में घुस गए।

सवार ने पहाड़ के ऊपर से देखा कि वे चारों व्यक्ति एक आदमी को बांधकर चले गए। सवार ऊपर से चुपचाप देखने लगा कि वे किस मार्ग पर गए हैं। जब वे पर्वत की ओट में अदृश्य हो गए तो वह अपने घोड़े से उतरा और उससे थपथपाकर कहा, 'विजय ! यहीं खड़े रहना। मैं अभी आता हूं। कोई शब्द न करना।' यह कहकर सवार पहाड़ के नीचे उतरा। उसने मिश्रजी के पास पहुंचकर उनका बन्धन खोला और पूछा, 'जो हुआ संक्षेप में कहिए।'

'मैं इन चार व्यक्तियों के साथ आ रहा था। मैं इन्हें नहीं पहचानता था। राह में ही भेंट हुई थी। वहां आकर इन्होंने मार-पीटकर मेरा सब सामान छीन लिया।'

'तुम्हारे पास क्या सामान था ?'

'एक मोतियों का हार, एक मोहर और दो पत्र।'

'आप यहीं ठहरें, मैं देख आऊं, वे किधर गए हैं।'

'आप अकेले उनसे कैसे जीतेंगे ? वे चार हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आप इसकी चिन्ता न करें।' सवार बोला।

वह सवार जिस मार्ग पर डाकू गए थे, उसी मार्ग पर सावधानी से आगे बढ़ा, परन्तु वन में घुसने पर कोई मार्ग दिखाई न दिया। वह फिर पहाड़ के शिखर की ओर चढ़ने लगा और कुछ देर पश्चात् इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर उसने उन्हें देखा। वह देखने लगा कि वे जाते कहां हैं। कुछ देर पश्चात् वे नीचे उतरे और फिर दिखाई नहीं दिए। उसने सोचा कि वे सब वहीं बैठकर विश्राम कर रहे होंगे। सम्भव है वहां कोई कन्दरा हो और वे उसमें चले गए हों।'

वह पहाड़ से उतरकर वन में घुसा और वहां पहुंचा जहां उसने उन्हें देखा था। वहां एक कन्दरा के अन्दर से कुछ व्यक्तियों का स्वर सुनाई पड़ा। उसे निश्चय हो गया कि वे वहीं थे।

वह जवान धीरे-धीरे कन्दरा के निकट गया और द्वार पर से ही उनकी बातें सुनने लगा। डाकू लूटे हुए माल के बंटवारे की बातें कर रहे थे। उसने अपने भाले को वन में छिपा दिया और तलवार निकाल ली थी। उसके बायें हाथ में एक पिस्तौल थी। वह बहुत सावधानी से कदम बढ़ाता हुआ कन्दरा में गया और निकट से उनकी बातें सुनने लगा। दलपति द्वार की ओर पीठ किए हुए बैठा था।

उनमें से एक ने कहा, 'मणिकलाल ! इस माल का क्या होगा ? पहले यही फैसला होना चाहिए।'

स्वर्ण-मुद्रा के काटकर चार भाग किए गए और चारों ने एक-एक भाग ले लिया। माला को बिना बेचे हिस्सा नहीं बंट सकता था। उसका बंटवारा न हुआ। फिर वह विचार होने लगा कि उन पत्रों का क्या करें।

दलपति ने कहा, 'इन कागजों को जला डालो।' यह कहकर उसने दोनों चिट्ठियां माणिकलाल को जलाने के लिए दे दीं।

माणिकलाल उन चिट्ठियों को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, 'पत्र नष्ट नहीं किए जायेंगे। इनसे लाभ उठाया जा सकता है। ये बड़े महत्त्वपूर्ण पत्र हैं।'

'कैसे !' तीनों ने पूछा।

माणिकलाल ने पत्र का अर्थ उन लोगों को समझाया। वह सुनकर ठग बहुत प्रसन्न हुए। माणिकलाल ने कहाः 'चिट्ठी राणा को देने से पुरस्कार मिलेगा।'

दलपति ने कहा, 'मूर्ख ! जब राणा पूछेंगे कि ये पत्र तुमने कहां से पाये, तो क्या उत्तर दोगे ? राणा से पुरस्कार के बदले प्राण-दण्ड मिलेगा। ये पत्र ले जाकर हमें बादशाह औरंगजेब को देना चाहिए। बादशाह को देने से पुरस्कार मिलेगा।'

दलपति को अपनी बात समाप्त करने का समय नहीं मिला। उसकी बात उसके मुंह में ही रह गई और उसका सिर धड़ से अलग होकर भूमि पर गिर पड़ा।

सवार ने दूसरे डाकू के सिर पर जो दलपति के पास बैठा था, इतने जोर से लात मारी कि वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा। उस वीर ने शेष दो डाकुओं की ओर देखा तो उनमें से एक कन्दरा के कोने से उस पर वार करने के लिए पत्थर उठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। उसने उसे पिस्तौल का निशाना बनाया। वह घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा और वहीं मर गया। अब रह गया केवल माणिकलाल। वह कन्दरा से निकलकर भाग निकला। वह वीर भी उसका पीछा करता हुआ गुफा से बाहर निकला। उसी समय, जो भाला वह वीर उस वन में छिपा आया था, उस पर माणिकलाल का पैर पड़ गया। माणिकलाल उसे उठाकर उस वीर की ओर लपका और बोला, 'महाराज! मैं आपको पहचानता हूं। आप शान्त हों, नहीं तो इस भाले से आपको समाप्त कर दूंगा।'

राजसिंह ने हंसकर कहा, 'तू मुझे समाप्त कर देगा ?' उन्होंने अपने हाथ की खाली पिस्तौल को माणिकलाल के हाथ पर फेंककर मारा तो उसके हाथों से भाला भूमि पर गिर पड़ा। राजसिंह ने उसे उठाकर माणिकलाल को पकड़ लिया और तलवार से उसका सिर काटने को उद्यत हुए।

माणिकलाल गिड़गिड़ाकर बोला, 'महाराज ! मुझे जीवनदान दें, मैं शरणागत हूं।'

तू मरने से इतना क्यों डरता है ?' उन्होंने पूछा।

माणिकलाल बोला, 'मैं मरने से नहीं डरता। मेरी एक सात वर्ष की कन्या है, बिना मां की। मैं सवेरे उसे खिला-पिलाकर बाहर निकलता हूं और संध्या को फिर जाकर खिलाता हूं। यदि आप मुझे मारना चाहते हैं तो पहले उसे मार डालिए।'

'महाराज ! मैं आपके पैर छूकर शपथ लेता हूं कि फिर कभी डकैती न करूंगा। मैं आपका दास होकर रहूंगा और यदि जीता रहा तो किसी दिन इस सेवक से आपका हित होगा।'

'तू मुझे पहिचानता है ?' उन्होंने पूछा।

'महाराज राजसिंह को कौन नहीं पहिचानता ?'

'मैंने तुझे जीवनदान दिया परन्तु तूने ब्राह्मण का धन हरण किया है, इसका दण्ड तुझे भुगतना ही होगा।'

'महाराज! इस पाप में मैं नया ही फंसा हूं। मैं आपके सामने ही दण्ड ग्रहण करता हूं।' इतना कहकर उसने अपनी कमर से छुरा निकालकर अपनी तर्जनी काट ली। वह बोला, 'महाराज ! इस दण्ड को स्वीकार करें।'

राजसिंह ने कहा, 'इतना पर्याप्त है। तेरा नाम क्या है ?'

'इस अधम का नाम माणिकलाल है महाराज ! मैं राजपूत कुल का ही कलंक हूं।'

'माणिकलाल ! आज से मैं तुम्हें अपना सैनिक नियुक्त करता हूं। तुम घुड़सवार सिपाहियों में रखे गए। तुम अपनी कन्या को लेकर उदयपुर चले आओ। तुम्हें रहने की सब सुविधा मिलेगी।'

माणिकलाल ने राणा के पैर की धूल ग्रहण की और उन्हें वहीं, ठहराकर कन्दरा से मोतियों की माला, स्वर्ण-मुद्रा के चारों टुकड़े और दोनों पत्र ले आया। वह बोला, 'हम लोगों ने ब्राह्मण का जो कुछ लिया था, वह सब यही कुछ था ? ये दोनों पत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके ही नाम हैं। सेवक ने पत्र पढ़े इसके लिए क्षमा चाहता हूं।'

राणा ने पत्र और सामान हाथ में लेकर कहा, 'माणिकलाल ! यह पत्रों को पढ़ने का स्थान नहीं है। तुम मेरे साथ आओ।'

9

महाराज राजसिंह माणिकलाल के साथ वहां से निकलकर खुले मैदान में आ गए और एक चट्टान पर बैठकर पत्र पढ़ने लगे। पहले उन्होंने राजा विक्रमसिंह का पत्र पढ़ा। उसे पढ़ने के पश्चात् उन्होंने उसे फाड़कर फेंक दिया और फिर चंचलकुमारी का पत्र पढ़ने लगे। वह पत्र इस प्रकार था :

'राजन ! आप राजपूत-कुल के शिरोमणि हैं। हिन्दुओं के शिरोभूषण हैं। मैं आपके लिए अपरिचित हूं। यदि मैं आपत्ति में न फंसी होती तो आपको पत्र लिखने का साहस न करती। मुझे संकटग्रस्त समझकर आप मेरे दुःसाहस को क्षमा करें।

इस पत्र को लेकर आने वाले मेरे गुरुदेव हैं। मैं रूपनगर की राजपूत कन्या हूं। रूपनगर बहुत छोटा-सा राज्य है, फिर भी विक्रमसिंह सोलंकी राजपूत हैं। राजपूत-कन्या होने के कारण मैं आपकी दया की पात्री हूं, क्योंकि आप भी राजपूत हैं और राजपूत-कुल-तिलक हैं।

मेरा दुर्भाग्य है कि दिल्ली के बादशाह ने मेरे पाणिग्रहण की इच्छा प्रकट की है। उनकी सेना मुझे दिल्ली ले जाने के लिए आ रही है। मै। राजपूत-कन्या बादशाह की बेगम नहीं बनना चाहती। हंसनी कव्वे की सहचरी नहीं बन सकती। वह हिमालय-नन्दिनी को कीचड़ के तालाब में ले जाना चाहता है। मैंने निश्चय कर लिया है कि इस विवाह से पूर्व ही मैं विष खाकर प्राण-त्याग कर दूंगी।

महाराजाधिराज ! मुझे अहंकारिणी न समझें। मैं जानती हूं कि मैं छोटी-सी भूमि के अधिकारी की कन्या हूं। जोधपुर, अम्बर इत्यादि के राजे दिल्ली के बादशाह को कन्या-दान करना अपना गौरव समझते हैं, परन्तु मेरे अन्दर राजपुतानी की ठनक है। महाराज ! मैं सूर्य के समक्ष जुगनू के समान हूं। क्या जोधपुर और अम्बर के कुल-कलंकित होने पर रूपनगर अपने कुल की रक्षा नहीं कर सकता ? महाराज ! मैंने भाटों से सुना है कि महाराणा प्रताप ने महाराज मानसिंह के साथ भोजन नहीं किया था। उन्होंने कहा था कि जिसने मुसलमान को अपनी बहन दे दी, मैं उसके साथ भोजन नहीं करूंगा। उस महावीर के वंशधर को क्या मुझे समझाना होगा कि यह सम्बन्ध मेरे लिए घृणास्पद हैं ? मैं राजपुतानी हूं महाराज ! मुझे चाहे प्राण त्यागने पड़ें, परन्तु मैं अपनी आन की रक्षा करूंगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है।

मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूं कि प्राण त्याग कर दूंगी, परन्तु इस आयु में मरने को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन नहीं करता महाराज ! इस आपत्ति से इस जीवन की रक्षा कौन करेगा ? मेरे पिता की इतनी सामर्थ नहीं कि वह बादशाह से लोहा लें ? अन्य सब राजदूत राजे बादशाह के दास हैं। आज केवल आप ही स्वाधीन हैं और उदयपुर के नरेश ही बादशाह की बराबरी कर सकते हैं। अन्य कोई नहीं है हो इस संकट-काल में मेरी रक्षा कर सके। इसीलिए मैंने आपकी शरण ली है। क्या आप मेरी रक्षा करेंगे ?

जिस गुरुतर कार्य के लिए मैं आपसे अनुरोध कर रही हूं, यह न जानें कि मैं उसे समझती नहीं हूं। मैं बालिका-बुद्धि के वशीभूत होकर यह पत्र नहीं लिख रही हूं। मैं जानती हूं कि बादशाह से शत्रुता मोल लेना सरल कार्य नहीं है, परन्तु महाराज प्रताप ने अकबर को मध्य-प्रदेश से बाहर निकाल दिया था। आप भी उसी सिंहासन पर आसीन हैं। आप उन्हीं के वंशधर हैं। क्या आप उनसे बल में कम हैं ? मैंने सुना है कि महाराष्ट्र के एक साधारण से पहाड़ी राजा ने बादशाह को परास्त कर दिया है। औरंगजेब आपके समक्ष किस गिनती में है ? मुझे विश्वास है कि आप मेरी रक्षा कर सकेंगे।

आप सोच सकते हैं कि आप में शक्ति है, परन्तु आप मेरे लिए क्यों उसका प्रयोग करें ? आप क्यों मेरे लिए प्राणि-हत्या करें और भीषण समर ठानें ? महाराज! शरणागत की रक्षा करना राज-धर्म है ? कुलकामिनी की रक्षा करना राजपूतों का कर्त्तव्य रहा है ?'

यहां तक का पत्र चंचलकुमारी का लिखा हुआ था। शेष पत्र निर्मलकुमारी ने लिखा था।

'महाराज ! एक बात कहते लज्जा-सी लगती है, परन्तु बिना कहे भी नहीं बनता। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मुगलों के हाथों से जो वीर मेरी रक्षा करेगा वह यदि राजपूत है और मुझे यथाशास्त्र ग्रहण करना चाहे तो मैं उनकी दासी बनूंगी। वीरश्रेष्ठ ! युद्ध में स्त्री-लाभ वीरों का धर्म रहा है। पांडवों ने द्रौपदी को प्राप्त किया था। राजन्। आपको रुक्मणि के विवाह की कथा याद होगी ? आप इसी पृथ्वी के अद्वितीय वीर हैं। क्या आप वीर-धर्म से मुंह फेर लेंगे ?'

इसी प्रयोजन से मैंने गुरुदेव के हाथ माला भेजी है। वह आपके गले में मेरा हार डाल देंगे। उसके पश्चात् आपका राज-धर्म आपके साथ है और मेरा प्रण मेरे साथ। यदि दिल्ली जाना पड़ा तो मैं दिल्ली के मार्ग में ही विषपान करके प्राण त्याग दूंगी।'

यह पत्र पढ़कर राजसिंह विचारों में डूब गए। उन्होंने माणिकलाल से कहा, 'माणिकलाल ! इस पत्र का वृतान्त तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता।'

'अन्य जो जानते थे। उन्हें महाराज समाप्त कर चुके हैं।'

'तो तुम अब घर जाओ। उदयपुर आकर मुझसे मिलना। इस पत्र के विषय में किसी से कुछ न कहना।'

यह कहकर राजसिंह ने कुछ स्वर्ण-मुद्राएं माणिकलाल को दीं। माणिकलाल प्रणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके वहां से चला गया।

महाराणा चंचलकुमारी का पत्र पढ़कर और माणिकलाल को विदा करके अनन्तमिश्र की खोज में चले। वहां जाकर उन्होंने देखा कि वह वहां नहीं थे। उनके स्थान पर उनके सैनिक आकर उस मैदान में फैल गए थे। उन्होंने राणा की जय-ध्वनि की। उनका घोड़ा भी पहाड़ी से उतरकर उनके पास आ गया था। राणा उसकी पीठ पर सवार हो गए।

राणा बोले, 'यहां एक ब्राह्मण बैठे थे, वह कहां गए ?'

'महाराज ! वह भाग गए।'

'उन्हें शीघ्र खोजकर लाओ।' राणा ने कहा।

'हम लोगों ने बहुत खोजा, परन्तु वह मिले नहीं।'

उन सैनिकों में राजा के दोनों पुत्र और अमात्य भी थे। राणा ने अपने दोनों पुत्रों और अमात्यों को एकान्त में ले,जाकर बातें कीं। उन्होंने कहा, 'प्रियजनो ! बहुत देर हो गई है। तुम सब लोग भूख-प्यास से त्रस्त होंगे, परन्तु अब उदयपुर जाना हम लोगों के भाग्य में नहीं बदा है। इसी पहाड़ी मार्ग पर हम लोगों को चलना है। एक छोटी-सी लड़ाई आरम्भ हो गई। जिसे युद्ध प्रिय हो, वह मेरे साथ चले। जिसे युद्ध प्रिय न हो वह उदयपुर लौट जाए।'

यह कहकर राणा पहाड़ी पर चढ़ने लगे। 'महाराणा की जय ! देवी माता की जय !' कहते हुए सब सवार उनके पीछे-पीछे पहाड़ी पर चढ़ने लगे। ऊपर पहुंचकर सब लोग 'हर-हर महादेव' कहते हुए रूपनगर जाने वाली राह पर हो लिए।

10

अनन्तमिश्र के रूपनगर जाते ही मुगल बादशाह की दो हजार सवारों की सेना रूपनगर जा पहुंची। वह चंचलकुमारी को लेने के लिए रूपनगर आई थी।

निर्मल ने चंचलकुमारी के पास जाकर कहा, 'अब क्या होगा सखी ? मुगल-सेना तो आ चुकी।'

चंचलकुमारी ने हंसकर कहा, 'किसका क्या होगा ?'

'यह सेना तुम्हें लेने आ गई है ओर अभी मिश्रजी उदयपुर से नहीं लौटे। उनके लौटने में देर है। राणा राजसिंह के आते-आते तो ये तुम्हें ले जाएंगे। अब क्या करना चाहिये ?'

'अब कोई उपाय नहीं है सखी ! मेरा वही अन्तिम उपाय है कि दिल्ली के मार्ग में मैं विष खाकर प्राण-त्याग कर दूंगी। मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। मैं पिताजी से अनुरोध करूंगी कि वह मुगल-सेनापति से कहें कि वह हमें सात दिन का अवसर

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दें।'

चंचलकुमारी ने अपने पिताजी से निवेदन किया, 'मैं जन्म-भर के लिए रूपनगर से जा रही हूं पिताजी ! मुझे अब फिर आप लोगों के दर्शन नहीं होंगे। मैं फिर कभी अपनी बचपन की सहेलियों के साथ आमोद-प्रमोद न कर सकूंगी। मैं केवल सात दिन के अवसर की भिक्षा मांगती हूं। सात दिन मुगल सेना यहां रहे। मैं सात दिन और आप लोगों से मिल-जुलकर जन्म भर के लिए विदा हो जाऊंगी।'

चंचलकुमारी की यह बात सुनकर राजा रो पड़े। उन्होंने कहा, मैं सेनापति से अनुरोध करूंगा। देखता हूं वह मानते हैं या नहीं।'

राजा ने मुगल सेनापति से निवेदन किया। सेनापति ने विचारा कि बादशाह ने कोई समय तो निश्चित किया नहीं था। उन्होंने सात दिन वहीं ठहरना स्वीकार कर लिया।

चंचलकुमारी और निर्मल को इससे धैर्य बंधा, परन्तु उदयपुर से कोई समाचार नहीं आया था। मिश्रजी भी नहीं लौटे थे। चंचलकुमारी ने आकाश की ओर देखकर कहा, 'भगवान !' क्या अबला के प्राण ही लेना चाहते हो ?'

रात्रि को निर्मल से सम्पूर्ण रात्रि-भर बातें होती रहीं। निर्मल ने कहा, 'मैं आपके साथ चलूंगी राजकुमारी जी !'

चंचल बोली, 'तू मेरे साथ कहां चलेगी निर्मल ? मैं तो मार्ग में ही प्राण देने जा रही हूं ?'

निर्मल बोली, 'मैं भी प्राण दे दूंगी। आप मुझे छोड़ जायेंगी तो क्या मैं जीती बचूंगी ?'

चंचलकुमारी बोली, 'ऐसी बात न कहो निर्मल ? मेरे दुःख को ओर न बढ़ाओ तुम। मैं इस समय बहुत दुखी हूं और समझ नहीं पा रही कि मुझे क्या करना चाहिए।'

'आप मुझे अपने साथ ले चलें। मैं आपके साथ चलूंगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता।' निर्मल ने दृढ़तापूर्वक कहा।

रूपनगर में छावनी के अन्दर सैनिकों के दिन बड़े आमोद-प्रमोद में बीते। मुगल सैनिकों के साथ नर्त्तकियों का एक दल था। गाने की घूम मची थी। सैनिक लोग रूपनगर में केवल आनन्द करने के लिए ही आए थे। इसीलिए रात्रि में नाच गानों का खूब समा बंधता था।

नर्त्तकियों में एक नर्त्तकी ने बहुत ख्याति प्राप्त की थी। दिल्ली में कभी किसी ने उसका नाम नहीं सुना था। मेहरजान नाचने वाली होने पर भी सद्चरित्र थी, इसलिए उसका मान और भी बढ़ गया था रूपनगर में।

मुगल-सेनापति सय्यद हसन अली ने भी उसका गाना सुनना चाहा, परन्तु मेहरजान ने यह स्वीकार नहीं किया। उसने कहा, 'मैं केवल मजलिस में नाच सकती हूं।'

सय्यद हसन अली ने यह बात स्वीकार कर ली। नर्त्तकी ने नृत्य आरम्भ किया। उन्होंने नर्त्तकी को रुपयों से पुरस्कृत करना चाहा, परन्तु उसने रुपये नहीं लिए। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली, 'मैं रुपये नहीं चाहती। यदि पुरस्कार देना चाहते हैं तो जो मैं चाहती हूं वह प्रदान करें।'

'तुम क्या पुरस्कार चाहती हो ?'

'मैं आपकी सवार-सेना में भर्ती होना चाहती हूं।'

हसन अली हतबुद्धि होकर मेहरजान की ओर देखते रह गए।

मेहरजान ने उन्हें चुप देखकर कहा, 'मैं घोड़े, हथियार और वर्दी का मूल्य दे दूंगी।'

'तुम औरत होकर सवार बनना चाहती हो ?'

'हानि ही क्या है ? कोई युद्ध तो हो नहीं रहा है यहां। वैसे युद्ध होने पर भी मैं भागूंगी नहीं।'

'सुनने वाले लोग क्या कहेंगे ?' हसन अली बोले।

'मैं जानूं या आप, अन्य कोई नहीं जान सकेगा।'

'तुम ऐसा क्यों चाहती हो ?' हसन अली ने पूछा।

'चाहे जिस लिए भी हो, इसमें बादशाह की कोई हानि नहीं है।'

हसन अली ने स्वीकार कर लिया।

यह दरियाबीवी थी, जो मेहरजान के रूप में सेना के साथ रूपनगर आई थी।

11

माणिकलाल राणा राजसिंह से विदा होकर रूपनगर की ओर चल पड़ा था। वह रात-दिन अपने मार्ग पर चलता-चलता रूपनगर पहुंच गया। वहां जाकर उसने दो हजार मुगल सवारों की छावनी देखी। उसे वहां राजपूत सेना कहीं दिखाई नहीं दी। उसने सुना कि दूसरे दिन प्रातःकाल मुगल सेना चंचलकुमारी को लेकर जाने वाली है।

माणिकलाल ने एक नागरिक से पूछा, 'क्या तुम मुझे दिल्ली जाने का मार्ग बता सकते हो ? मैं तुम्हें पुरस्कार दूंगा।'

नागरिक ने प्रसन्न होकर उसे मार्ग बता दिया।

माणिकलाल उसे पुरस्कार बिदा हुआ। वह दिल्ली की ओर मार्ग में चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ा। माणिकलाल ने सोचा कि राजपूत अवश्य ही कहीं दिल्ली के मार्ग में छिपे होंगे। एक जगह उसने देखा कि बहुत ही संकीर्ण मार्ग था। दोनों किनारों पर दो पर्वत थे। उनके बीच में संकरा मार्ग था। दाहिनी ओर पहाड़ बहुत ऊंचा था। उसकी चोटी मार्ग की ओर को झुकी हुई थी। बायीं ओर का पहाड़ कुछ नीचा था। उस पर चढ़ने की सुविधा थी। एक स्थान पर एक छोटी-सी पगडंडी थी। उसे देखकर उसने सोचा कि यदि राणा आए होगे तो वह यहीं होंगे। जब मुगल-सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस संकरे मार्ग से जाएगी तो पर्वत-शिखरसे राजपूत उस पर टूट पड़ेंगे। उसने वहीं खड़े होकर कहा, 'महाराणा की जय हो।'

इस शब्द को सुनते ही चार-पांच अस्त्रधारी राजपूत अदृश्य स्थान से बाहर निकले और हाथों में तलवार लिए माणिकलाल की ओर बढ़े। राणा की दृष्टि उधर गई तो वह बोले, 'इसे मारना नहीं है।'

माणिकलाल ने राणा को प्रणाम किया।

माणिकलाल को राणा एकान्त स्थान पर ले गए। उन्होंने उससे पूछा, 'तुम यहां कैसे आए ?'

'जहां आप हैं, वहीं सेवक को भी समझिए। जब आप इस कठिन कार्य पर जुटे हैं तो क्या सेवक वहीं बना रहता ? मुगल सैनिक दो हजार है और आपके साथ केवल सौ सैनिक हैं। मैं कैसे निश्चिंत रह सकता था ? आपने मुझे जीवन-दान दिया है ?' माणिकलाल विनम्रतापूर्वक बोला।

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां हूं ?' राणा ने पूछा।

माणिकलाल ने आदि से अन्त तक सब वृतान्त कह सुनाया। उसे सुनकर राणा बहुत प्रसन्न हुए। वह बोले, अच्छा ही हुआ, जो यहां आ गए। मैं तुम्हारे जैसा ही एक चतुर आदमी खोज रहा था। अब मैं जो कुछ कहूं, वह कर सकोगे क्या तुम?'

'जो कार्य कोई मनुष्य कर सकता है, वह मैं अवश्य कर सकता हूं।'

'हम सौ योद्धा हैं। मुगल-सैनिक दो हजार हैं। हम लोग युद्ध करके प्राण-त्याग कर सकते हैं, परन्तु विजय प्राप्त नहीं कर सकते। युद्ध से हम चंचलकुमारी का उद्धार नहीं कर सकेंगे। इसलिए पहले राजकन्या को बचाकर तब हमें युद्ध करना होगा। यदि बीच में राजकन्या रही तो वह घायल हो सकती हैं। इसलिए पहले उसकी रक्षा होनी चाहिए।' राणा राजसिंह बोले।

'मैं इन सब बातों को नहीं समझता। आप आज्ञा करें मुझे क्या करना होगा।' माणिकलाल ने पूछा।

'तुम्हे मुगल-सवार के वेश में कल मुगलों के साथ-साथ आना चाहिए। राजकुमारी की पालकी के साथ-साथ तुम्हें रहना होगा और मैं जो कुछ कहता हूं, वह सब करना होगा।' फिर राणा ने उसे विस्तार से अपना कार्य क्रम बताया। उसे सुनकर माणिकलाल बोला, 'महाराज ! मैं यह कार्य कर सकूंगा। कृपया मुझे एक घोड़ा दिला दें।'

'हम सौ योद्धा हैं और उतने ही घोड़े हमारे पास हैं। मैं तुम्हें घोड़ा कहां से दूं? तुम मेरा घोड़ा ले सकते हों' राणा बोले।

'मैं उसे नहीं लूंगा। आप मुझे केवल आवश्यक हथियार दे दें।'

'हमारे पास जो अस्त्र हैं, वे हम लोगों के लिए ही पूरे नहीं हैं। मैं किसे निरस्त्र करके तुम्हें हथियार दिलाऊं ?'

'महाराज ! तब आज्ञा दें, मैं जैसे भी होगा, अस्त्र संग्रह करूंगा।'

राणा हंसकर बोले, 'चोरी करोगे क्या ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैंने कसम खाई है कि अब यह काम न करूंगा।'

'तब क्या करोगे ?' राणा ने पूछा।

'डकैती डालूंगा।' माणिकलाल बोला।

राणा हंसकर बोले, 'युद्ध के समय सभी लोग डकैत होते हैं। मैं भी तो बादशाह की बेगम उड़ा ले जाने के लिए आया हूं। तुम जैसे चाहो वैसे अस्त्र संग्रह कर सकते हो।'

माणिकलाल प्रणाम करके वहां से विदा हुआ और उसी समय रूपनगर लौट गया। संध्या बीत चुकी थी। रूपनगर पहुंचकर माणिकलाल ने देखा कि बाजार बहुत सुन्दर सजा हुआ था। वह एक पान की दुकान पर पहुंचा। मालकिन पान लगवा रही थी। उसकी आयु तीस के ऊपर ही थी, परन्तु थी सुन्दर । वर्ण गोरा, आंखें बड़ी-बड़ी और दृष्टि चंचल थी। वह सोने-चांदी के आभूषण पहिने हुए थी। माणिकलाल ने उससे एक पान मांगा।

पानवाली स्वयं पान नहीं बनाती थी। उसकी दासी बनाकर दे रही थी। उसी ने पान बनाकर दिया।

दासी ने पान दिया तो माणिकाल ने उसे दुगुने दाम दिए। फिर दूसरा पान मांगा और जब तक पान बना तब तक पान वाली से हंस-हंसकर कुछ बातें कीं। वह पान वाली के रूप की प्रशंसा न करके दुकान की सजावट ओर उसके जेवरों की प्रशंसा करने लगा। पानवाली भी उससे मीठी-मीठी बातें करने लगी। माणिकलाल ने दुकान पर चढ़कर पान वाली का हुक्का पीना आरम्भ कर दिया। वह पानवाली से बोला, 'तुम बड़ी चतुर हो। मैं बहुत देर से एक चतुर स्त्री को खोज रहा था। मेरा एक शत्रु है। मेरी उसे दण्ड देने की इच्छा है। जो करना होगा, वह मैं समझा दूंगा। तुम मुझे सहायता दोगी तो एक स्वर्ण-मुद्रा पुरस्कार में दूंगा।

'मुझे क्या करना होगा ?' उसने पूछा।

माणिकलाल ने बात बताई। पानवाली भी रसिया थी। वह तुरन्त उद्यत हो गई। उसने कहा, 'मुझे स्वर्ण-मुद्रा की आवश्यकता नहीं, थोड़ा उपहास रहेगा।'

माणिकलाल ने दवात, कलम और कागज मांगा तो दासी से सब ले आई। माणिकलाल ने एक पत्र लिखा, 'हे प्राणनाथ ! जब तुम नगर में घूमने आये थे तो मैं तुम पर मोहित हो गई थी। तुमसे एक बार भेंट न हुई तो मेरे प्राण निकल जायेंगे। सुनती हूं कि तुम कल चले जाओगे।

इसलिए आप एक बार मुझसे अवश्य भेंट करो, नहीं तो मैं छुरी से अपना गला काट लूंगी। जो चिट्ठी लेकर आ रहा है, उसी के साथ चले आओ।'

पानवाली ने पूछा, 'यह कौन आदमी है ?'

'एक मुगल सरदार है।' माणिकलाल बोला।

माणिकलाल मुगलों में से किसी को नहीं जानता था। उसने सोचा दो हजार मुगलों में कोई तो मुहम्मद खां होगा ही। इसलिए उसने पत्र पर मुहम्मद खां नाम लिख दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माणिकलाल ने पूछा, 'क्या उसे यहीं ले आऊं ?'

पानवाली बोली, 'नहीं और कोई स्थान किराये पर लेना होगा।'

दोनों ने एक मकान किराये पर लिया। पानवाली ने मुगल के स्वागत के लिए उसे सजवाया। माणिकलाल चिट्ठी लेकर मुगल-छावनी में पहुंचा। छावनी में खूब चहल-पहल थी। बाजार लगा हुआ था। खेल-तमाशों की धूम थी। माणिकलाल ने एक मुगल सैनिक से पूछा, 'मुहम्मद खां कौन साहब हैं ? उनका एक पत्र है।'

उसने कहा, 'मैं मुहम्मद खां हूं। पत्र दिखाओ।'

माणिकलाल ने बड़े अदब के साथ उसे पत्र दिया। मुगल-सैनिक ने सोचा, पत्र चाहे जिसका भी हो, तनिक तफरीह तो ले आऊं। उसने कहा, 'यह पत्र मेरा ही है। चलो मैं तुम्हारे साथ चलता हूं।'

माणिकलाल बोला, 'हुजूर, दूर जगह है। घोड़े पर चलना होगा आपको। पैदल कैसे चलेंगे ?'

'बहुत अच्छा !' कहकर मुगल घोड़े पर सवार होने चला तो माणिकलाल हाथ जोड़कर बोला, 'हुजूर ! बड़े घर की बात है, हथियारों से लैस होकर चलना।'

नया प्रेमी घोड़े पर सवार होकर माणिकलाल के साथ चल पड़ा। उचित स्थान पर पहुंचकर माणिकलाल बोला, 'बस यहीं उतर पड़िए हुजूर। मैं आपके घोड़े को पकड़ता हूं। आप अन्दर चलिए।'

मुगल-सैनिक घोड़े से उतर पड़ा। माणिकलाल ने घोड़ा पकड़ लिया। मुगल मकान में गया। हथियारों से लैस रमणी के पास जाना उचित न समझकर उसने हथियार भी माणिकलाल को दे दिये।

अन्दर जाकर खां साहब ने देखा कि एक चौकी पर सुन्दर बिस्तर लगा था और एक सुन्दरी बैठी थी। गुलाब के इत्र की सुगन्धि से कमरा महक रहा था। चारों ओर फूल बिखरे हुए थे। खां साहब जूता उतारकर चौकी पर जा बैठे। उन्होंने वर्दी उतारकर खूंटी पर टांग दी और तम्बाकू पीने लगे। पानवाली ने प्रेम की बातों से उसे मोहित कर लिया। तभी माणिकलाल ने कमरे का द्वार खटखटाया।

पानवाली ने भयभीत सी होकर खां साहब से कहा, 'मेरे पति आ गए हैं। मैं समझती थी कि वह आज नहीं आयेंगे। आप तनिक इस कोठरी में छिप जायें। मैं उन्हें अभी विदा किए देती हूं।'

मुगल-सैनिक बोला, 'सैनिक होकर मैं छिप जाऊं! आने दो उसे। मैं उसे अभी मृत्यु के घाट उतार दूंगा।'

पानवाली ने दांतो से जुबान दबाकर कहा, 'क्या मैं अपने आदमी को मरवाकर अपना घर उजाड़ दूं ? क्या आपको प्यार करने का यही लाभ होगा मुझे ? आप कोठरी में जायें, मैं अभी उन्हें विदा किए देती हूं यहां से।'

माणिकलाल बार-बार द्वार खटखटा रहा था। लाचार होकर खां साहब कोठरी में छिप गए। प्रेम में उस समय सब-कुछ करना पड़ा रहा था उन्हें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानवाली ने खां साहब की कोठरी का बाहर से द्वार बंद करके बाहर का द्वार खोला। माणिकलाल के अन्दर आने पर पानवाली ने कहा, 'तुम फिर आ गए। तुमने तो कहा था कि आज न आओगे।' माणिकलाल ने अपना स्वर बदलकर कहा, 'मैं अपनी चाबी भूल गया था। ला चाबी दे दे मुझे।'

पानवाली चाबी ढूंढने के बहाने खां साहब की वर्दी लेकर बाहर निकल आई और द्वार बन्द करके बाहर का ताला लगा दिया। खां साहब बेचारे कोठरी के अन्दर मुंदे रहे। उसे कोठरी में बन्द करके माणिकलाल ने उसकी वर्दी पहिन ली और हथियारों से लैस होकर घोड़े पर सवार हो मुगलों की छावनी में चला गया।

12

दूसरे दिन प्रातःकाल मुगल-सेना तैयार होकर रूपनगर के गढ़ के सिंहद्वार पर आ गई। चंचलकुमारी को स्नानादि के पश्चात् आभूषणों से सजाया गया। निर्मल ने उसे आभूषण पहिनाए। चंचलकुमारी ने कहा, 'फूलों की माला पहिनाओ सखी, मैं चिता पर बैठने जा रही हूं।'

निर्मल बोली, रत्नों के अलंकार पहिनाऊंगी सखी ! तुम उदयपुरेश्वरी होने जा रही हो।'

'पहिनाओ निर्मल ! मैं राजा की लड़की हूं, तो राजा की लड़की की ही तरह सज-धजकर प्राण दूंगी।'

चंचलकुमारी निर्मल से लिपटकर रो पड़ी। फिर बोली, 'निर्मल ! अब तुम्हें फिर कभी देख न सकूंगी। विधाता की कैसी विडम्बना है।'

'तुम फिर मुझसे मिलोगी। तुम चाहे जहां भी रहो, मुझसे तुम्हारी भेंट अवश्य होगी। मेरा मुंह देखे बिना तुम मर न सकोगी।'

'मैं दिल्ली की राह में मरूंगी।' चंचलकुमारी बोली।

'तुम दिल्ली की राह पर ही मुझे भी देख लेना।'

'यह क्या कह रही हो निर्मल ? तुम वहां कैसे पहुंचोगी ?'

निर्मल कुछ न बोली। वह चंचलकुमारी के गले से लिपटकर रोने लगी। कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार रोती रहीं।

चंचलकुमारी सज-धजकर महादेव के मन्दिर में गई। उसने भक्ति भावना से शिव की पूजा की। पूजा के पश्चात् उसने कहा, 'देवाधिदेव ! मैं प्राण देने जा रही हूं। इस बालिका के मरने में तुम्हें इतनी सृष्टि क्यों है ? क्या मेरे जीने से तुम्हारी सृष्टि न चलती ?'

महादेव की वन्दना करके चंचलकुमारी अपनी माता के चरणों में प्राण अर्पण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने गई। माता को प्रणाम कर चंचलकुमारी बहुत रोई। उसके पश्चात् एक-एक सखि से विदा ली। वह सबसे रो-रोकर गले मिली।

सबसे विदा होकर चंचलकुमारी पालकी में जाकर बैठ गई। एक हजार मुगल सवार पालकी के आगे थे और एक हजार पीछे। पालकी सुनहले पर्दों से ढकी थी। शंख की ध्वनि हुई। सेनापति ने सैनिकों को चलने की आज्ञा दी।

सेना का एक सिपाही कुछ गा रहा था। चंचलकुमारी के कान में गाने का स्वर पहुंचा। उसने अपने मन में कहा, 'क्या सवार का गाना सच है ?' वह राजसिंह के विचार में निमग्न थी। माणिकलाल पालकी के पीछे-पीछे गा रहा था, 'प्रभु ! तेरी गति लखि न परी।'

निर्मल ने कुछ सोचकर अपने सब जेवर कहीं छिपाकर रख दिए। फिर कुछ रुपये लेकर वह अपने घर से बाहर निकली और जिधर सेना गई थी, उसी ओर को चल पड़ी। वह तीव्र गति से आगे बढ़ती चली जा रही थी।

मुगल-सेना अजगर सांप की तरह दिल्ली की ओर पहाड़ी मार्ग पर चल पड़ी। जिस घाटी में माणिकलाल राणा राजसिंह के पास गया था, सेना वहां पहुंची तो एक भीषण धमाका हुआ। मुगल-सेना के सवार क्षण-भर के लिए चकित हुए। पर्वत-शिखर से एक पड़ा पत्थर लुढ़कर सेना के बीच आ गिरा। उसकी चोट में कई सवार आ गए और फिर उन पर भयंकर पत्थरों की वर्षा होने लगी। बहुत से घोड़े और घुड़सवार उनसे मरकर घाटी में बिछ गए। संकरी घाटी रुक गई। घोड़े सवारों को लेकर इधर-उधर भागने लगे, परन्तु पीछे का मार्ग रुका हुआ था। उधर पत्थरों की भारी वर्षा हो रही थी।

'कहारो सावधान, बायां-मार्ग।' माणिकलाल बोला। बायीं ओर एक संकरी गली थी। उसमें एक ही सवार जा सकता था।

माणिकलाल घोड़ा बढ़ाकर उसी ओर बढ़ गया। तभी एक और सवार माणिकलाल के पीछे-पीछे उसी में घुसने लगा। उसी समय ऊपर से एक बड़ा शिखर-खण्ड गड़गड़ाता हुआ आया और उसने उसका मार्ग रोक दिया। दूसरा सवार पत्थर की चपेट में आ गया। घाटी एकदम बन्द हो गई। फिर कोई उसमें न घुसने पाया। अन्य सैनिक पत्थरों की मार से बेहाल हो रहे थे। किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि पत्थर कहां से आ रहे थे।

राजसिंह पर्वत के शिखर से यह सब देख रहे थे। जब तक मुगल उस संकरी घाटी में एक-एक करके घुसते रहे, तब तक वह कुछ न बोले। जब वे अन्दर जा पहुंचे तो वह पचास राजपूतों को लेकर बाज की तरह उन पर टूट पड़े और उन्हें नष्ट करने लगे। एकाएक ऊपर से आक्रमण होने पर मुगल-सैनिक बिखर गए। उनमें से अधिकांश उस युद्ध में खेत रहे। केवल पांच-सात सैनिक शेष बचे। मुबारक उन लोगों को लेकर लौट पड़ा। राजपूतों ने उनका पीछा नहीं किया।

मुबारक के साथ मुगल-सवार के वेश में माणिकलाल भी था। वह मुगल-सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में से छिपकर बाहर हो गया और तीव्र गति से रूपनगर की ओर बढ़ चला। उसने अपने घोड़े को बड़ी तेजी से उस ओर दौड़ाया।

मुबारक आकर बोला, 'इस पहाड़ी पर चढ़ना कठिन नहीं है। इस पहाड़ी पर चढ़ो। डाकू बहुत थोड़े ही हैं। हम उन्हें मार डालेंगे।'

पांच सौ मुगल-सैनिक बायीं ओर पहाड़ी पर चढ़ने लगे। मुबारक उनके साथ था। मुगलों के साथ दो तोपें भी थीं और वे शस्त्रों से पूरी तरह से लैस थे।

ऊपर पहुंचने में उन्हें अधिक समय नहीं लगा। उन्होंने पहाड़ पर चढ़कर देखा कि वहां कोई नहीं था। मुबारक ने देखा कि तब तक शत्रु घाटी में पहुंच गए थे। मुबारक ने सोचा कि घाटी का मुहाना रोककर उन सब को समाप्त कर दे। हसनअली दूसरी ओर तोप लगाकर जमा बैठा था।

मुबारक घाटी के किनारे-किनारे अपनी सेना लेकर बढ़ा। मुबारक ने पहाड़ के किनारे आकर देखा, लगभग चालीस राजपूत पालकी के पास रक्त में लथ-पथ उसी ओर बढ़ रहे थे। मुबारक समझ गया कि वे लोग निकलने की राह जानते होंगे। उन लोगों पर दृष्टि रखते हुए वह धीरे-धीरे उस घाटी के पास जा पहुंचा जहां से राजपूत पहाड़ से उतरे थे। मुबारक राजपूतों पर दृष्टि रखकर बढ़ने लगा। मुबारक ने घोड़ों को तेजी से बढ़ाकर घाटी का मुंह बन्द कर दिया। राजपूत लोग घुमाव पर थे, इसलिए वे मुबारक से पहले वहां न पहुंच सके।

राणा राजसिंह ने देखा कि अब रक्षा का कोई उपाय नहीं है। उनकी सेना से बीसगुनी मुगल-सेना मार्ग के दोनों मुहानों पर आ चुकी थी। अब केवल यम-लोक का ही द्वार उनके लिए खुला था। राणा राजसिंह ने निश्चय किया कि वे उसी मार्ग पर जायेंगे। उन्होंने अपने सैनिकों को एकत्रित करके कहा, 'बन्धुओं ! मैं तुम लोगों से क्षमा मांगता हूं। मेरी ही भूल से तुम पर यह विपत्ति आई है। पहाड़ से उतरकर मैंने भूल की। घाटी का मुहाना बन्द है। दोनों ओर तोपें लगी हैं। जो मरने से पहले चार मुगलों को मार कर न मरे, वह राजपूत नहीं। अब घोड़े नहीं दौड़ सकते, इसलिए घोड़े छोड़ दो। चलो, तलवारें लेकर तोपों पर टूट पड़ें। जब तोपें हमारे अधिकार में आ जाएंगी, तब देखा जाएगा कि हम कितने मुगलों को मार पाते हैं।'

राजपूत घोड़ों से उतारकर पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। उनके चेहरों को देखकर राजसिंह समझ गए कि चाहे प्राण-रक्षा न हो, परन्तु एक भी राजपूत हटनेवाला नहीं है। राणा ने आज्ञा दी, 'दो-दो आदमियों की पंक्ति बना लो।' राणा सबसे आगे थे।

राजपूत-सेना ने नारा लगाया, 'माता की जय हो !'

राणा राजसिंह ने पीछे देखा कि कोई देवी आ रही थी। उन्होंने पूछा, 'पालकी कहां है ?'

'पालकी उधर है।'

'क्या पालकी खाली है ?'

'जी ! कुमारी राणा के समक्ष है।' यह कहकर चंचलकुमारी ने राजसिंह को प्रणाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया।

राणा ने पूछा, 'राजकुमारी ! आप यहां कैसे ?'

चंचलबोली, 'मैं आपको प्रणाम करने आई हूं। प्रणाम कर चुकी, अब एक भिक्षा मांगती हूं। स्त्रियों की शोभा लज्जा मुझसें नहीं है, मुझे क्षमा कीजिए। मैं जो शिक्षा चाहती हूं, उससे निराश न कीजिएगा।'

राजसिंह बोले, 'मैं तुम्हारे लिए ही यहां आया हूं। ऐसा कुछ नहीं है, जो तुम्हें न दिया जा सके।'

'मैं चंचल मति होने के कारण आपको आने के लिए लिख दिया था। तब मैं अपने मन को पहिचान न सकी थी। इस समय मैं मुगल-सम्राट के ऐश्वर्य की बातें सुनकर दिल्ली जाना चाहती हूं।' चंचलकुमारी नेत्र नीचे करके बोली।

राजसिंह ने कहा, 'आपको दिल्ली जाना हो तो जाएं। मुझे कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु इस समय आप नहीं जा सकतीं। यदि यहां आपको छोड़ दूं तो मुगल अपने मन में समझेंगे कि मरने के भय से मैंने आपको छोड़ दिया है। पहले युद्ध समाप्त हो जाए, उसके पश्चात् आप जहां चाहें चली जाना।'

चंचलकमारी ने मुस्कराते हुए दाएं हाथ की हीरे की अंगूठी बाएं हाथ की उंगली में पहनकर कहा, 'महाराज ! इस अंगूठी में विष है। दिल्ली न जा पाऊंगी, तो मैं विष खा लूंगी।'

राजसिंह हंसकर बोले, 'मैं बहुत पहले ही समझ गया था राजकुमारी ! तुम रमणी-कुल में धन्य हो, परन्तु तुम जो सोच रही हो, वह होगा नहीं। आज राजपूतों को मारना ही होगा, अन्यथा राजपूती नाम पर बहुत बड़ा कलंक लगेगा। जब तक हम लोग युद्ध में न मरें, तब तक तुम अपने को बन्दिनी समझो। हम लोगों के मरने पर तुम्हारी जहां इच्छा हो, जा सकती हो।'

चंचलकुमारी मन-ही-मन बोली, 'वीर चूड़ामणि ! मैं आज से तुम्हारी हुई। यदि तुम्हारी दासी न हो गई होती तो चंचल कभी जीती न बचती।' फिर प्रकट में कहा, 'महाराज ! दिल्लीश्वर ने जिसको बेगम बनाने की इच्छा प्रकट की है, वह किसी की बन्दिनी नहीं हो सकती। यह देखिए, मैं मुगल सेना के सामने जा रही हूं। किसमें सामर्थ है, जो मुझे रोके।'

चंचलकुमारी राजसिंह की बगल से घाटी के मुहाने की ओर बढ़ी। किसकी सामर्थ थी जो उसे छूता। कोई उसकी राह न रोक सका। वह हंसती हुई घाटी के मुहाने पर चली गई।

चंचलकुमारी बोली, 'इस सेना सेनापति कौन है ?'

मुबारक ने कहा, 'यह खाकसार है।'

'मैं एक भिक्षा मांगती हूं। आप एकान्त में सुनें।'

'आप आगे आयें।'

चंचलकुमारी और आगे बढ़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं रूपनगर की राजकन्या हूं। बादशाह ने मुझे विवाह की इच्छा से यह सेना मुझे लाने को भेजी है ? आपको विश्वास है।'

'मैं बादशाह से विवाह नहीं करना चाहती थी, परन्तु मेरे पिता दुर्बल है। उन्होंने मुझे आप लोगों के हवाले कर दिया है। उनका कोई भरोसा न होने पर मैंने राणा राजसिंह के पास दूत भेजा था। मेरे भाग्य से वह केवल पचास सैनिकों को लेकर आए हैं। उनकी वीरता तो आपने देख ही ली है ?'

'क्या पचास सिपाहियों ने इतने मुगलों को मार डाला ?'

'यह कोई विचित्र बात नहीं है। हल्दीघाटी में भी ऐसी ही हुआ था।'

महाराज राजसिंह इस समय आप लोगों के सामने परास्त हैं। उनको परास्त देखकर ही मैं सामने आकर वन्दिनी हो रहीं हूं। मुझे दिल्ली ले चलो। अब युद्ध की आवश्यकता नहीं है।'

मैं समझ गया कि आप राजपूतों की रक्षा करना चाहती हूं। क्या उन लोगों का भी यही विचार है ?'

'उनका विचार यह नहीं है ? तब भी मेरा अनुरोध है कि आप मेरे साथ एकमत होकर उन लोगों के प्राणों की रक्षा करें।'

'यह मैं कर सकता हूं, परन्तु इन डाकुओं को दण्ड अवश्य देना होगा। मैं इन सबको कैद करूंगा।'

'आप सब कुछ कर सकते हैं, परन्तु यह नहीं कर सकते।'

'तब यह ठीक है कि आप दिल्ली चलें।' मुबारक बोला।

'मैं आप लोगों के साथ चलने को उद्यत हूं, परन्तु दिल्ली तक पहुंचने में संदेह है।' चंचलकुमारी बोली।

'वह क्यों ?' मुबारक ने पूछा।

'आप लोग युद्ध करके मरना जानते हैं। ऐसे ही हम स्त्रियां भी मरना जानती है।' चंचलकुमारी बोली।

'हमारे शत्रु हैं, हम इसलिए मरते हैं। आपका कौन शत्रु है ?'

'अपनी शत्रु मैं स्वयं हूं।' चंचलकुमारी बोली।

'हमारे शत्रुओं के पास अस्त्र हैं, आपके पास क्या है ?'

'विष।' चंचलकुमारी ने कहा।

'कहां है ? यह कहकर मुबारक ने चंचलकुमारी की ओर देखा। मुबारक छोटी प्रकृति का नहीं था। वह राजसिंह जैसा ही वीर-पुरुष था। उन्होंने कहा, 'आप आत्मघात क्यों करेंगी ? यदि आप न जाना चाहें तो हम लोगों की क्या सामर्थ जो आपको ले चलें ? स्वयं आलमगीर भी यहां उपस्थित होते तो वह आपके ऊपर बल-प्रयोग न करते, परन्तु इन राजपूतों ने शाही सेना पर आक्रमण किया है। मैं इन्हें क्षमा नहीं कर सकता।'

'क्षमा करने की आवश्यकता नहीं है, युद्ध करिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय राजपूतों को लेकर राजसिंह भी वहां आ पहुंचे। चंचलकुमारी बोली, 'युद्ध करिए। राजपूत लड़कियां भी मरना जानती हैं।'

मुगल सेनापति से चंचलकुमारी क्या कह रहीं थीं, यह सुनने के लिए राजसिंह चंचलकुमारी के पास आकर खड़े हो गए थे। चंचलकुमारी बोली, 'महाराज! आपकी कमर पर जो तलवार लटक रही है उसे दासी को दीजिए।'

'तुम सच्ची भैरवी हो चंचलकुमारी !' राजसिंह बोले।

राजसिंह ने तलवार चंचलकुमारी के हाथ में दे दी।

यह देखकर मुबारक मुस्कराया। उसने चंचलकुमारी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने राजसिंह के मुंह की ओर देखकर कहा, 'उदयपुर के वीर स्त्रियों से कब से मदद मांगने लगे ?'

राजसिंह की चमकती हुई आंखों से आग की चिनगारियां निकल पड़ीं। उन्होंने कहा, 'जब से मुगल बादशाहों ने अबलाओं पर अत्याचार आरम्भ किया है। तभी से राजपूत कन्याओं की बाहुओं में बल आ गया है।' वह अपने सैनिकों से बोले, 'वीर राजपूतों ! व्यर्थ समय नष्ट न करो। मुगलों को काटकर बिछा दो।'

अभी तक दोनों दल शान्त थे। कोई युद्ध में प्रवृत्त नहीं था। राणा की आज्ञा पाकर 'माता की जय।' शब्द के साथ राजपूत मुगल सेना पर टूट पड़े। उधर मुबारक की आज्ञा पाकर मुगल-सैनिक 'अल्लाहो-अकबर !' शब्द से उन्हें रोकने को उद्यत हुए, परन्तु तभी दोनों सेनाएं चुप होकर खड़ी हो गई। दोनों सेनाओं के बीच तलवार लेकर चंचलकुमारी खड़ी हो गई।

चंचलकुमारी ऊंचे स्वर में बोली, 'जब तक एक पक्ष न हटे तब तक मैं यहां से न हटूंगी। मुझे बिना मारे कोई अस्त्र न चला सकेगा। जो आगे बढ़ेगा उसे पहले मुझे मारना होगा।'

राजसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा, 'यह तुम्हारा कार्य नहीं है। तुम अपने हाथ से राजपूत कुल पर कलंक क्यों लगा रही हो ? लोग कहेंगे कि आज स्त्री की सहायता से राजसिंह ने अपनी प्राण-रक्षा की।'

'महाराज ! आपको मरने से कौन मना कर रहा है ? मैं तो केवल पहले मरना चाहती हूं। मैं ही इस अनर्थ का मूल हूं। मुझे ही पहले मरने का अधिकार है।'

चंचलकुमारी नहीं हटी। मुगलों ने बन्दूकें रख दीं। मुबारक चंचलकुमारी को देखकर मुग्ध हो गए। मुबारक ने कहा, मुगल सैनिक स्त्रियों के सामने युद्ध नहीं करते। राजसिंह के साथ युद्ध में जय-परायज किसी दूसरे मैदान में होगी।'

चंचलकुमारी मुबारक के लिए चिन्तित थी। चंचलकुमारी ने कहा, 'आप मुझे क्यों छोड़ जाते हैं ? मुझे ले जाने के लिए आप लोगों को बादशह ने भेजा है। मुझे लेकर न गए तो बादशाह क्या कहेंगे ?'

'इस बादशाह से भी बड़ा एक और बादशाह है। मैं इसका उत्तर उसे दूंगा।'

'वह तो परलोक में है, इस लोक में क्या होगा ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुबारक इस लोक में किसी से नहीं डरता।' मैं जाता हूं। यह कहकर मुबारक घोड़े पर सवार हो गया ओर सेना लौटा ली।

13

माणिकलाल तीव्र गति से रूपनगर पहुंचा। रूपनगर के कुछ सैनिक थे जो स्थाई सैनिक नहीं थे, परन्तु समय पड़ने पर एकत्रित हो जाते थे। मुगल सेना के आने पर रूपनगर के राजा ने उन्हें बुला लिया था। उन्हें मुगल-सेना के सम्मान के लिए बुलाया गया था। उसका गुप्त अभिप्राय यह भी था कि यदि मुगल-सेना कोई उपद्रव करे, तो उसका सामना किया जाए। उन लोगों ने मुगल-सेना के साथ कई दिन बिताए थे। मुगल-सेना के राजकुमारी को ले जाने पर उन सैनिकों को घर लौटने की आज्ञा हो गई थी। राजा उन्हें विदा कर रहे थे। उसी समय माणिकलाल वहां पहुंच गया।

माणिकलाल का मुगल-सैनिकों जैसा वेश था। उसके घबराहट के साथ गढ़ में पहुंचने पर सब विस्मित रह गए। राजा ने पूछा, 'क्या बात है सैनिक ?'

माणिकलाल बोला, 'महाराज ! डाकुओं ने आकर राजकुमारी की पालकी को घेर लिया है। हसन अली खां ने मुझे आपके पास भेजा है। हम जी-जान से लड़ रहे हैं, परन्तु बिना कुछ और सेना से हमारी रक्षा न नहीं हो सकेगी। आपसे उन्होंने सेना की सहायता मांगी है।'

राजा बोले, 'मेरी सेना तैयार है।' उन्होंने अपने सैनिकों से कहा, 'तुम लोग घोड़ों पर सवार होकर युद्ध में जाओ।'

माणिकलाल बोला, 'इन लोगों को लेकर मैं आगे बढ़ता हूं। हम इस सेना की सहायता से डाकुओं को भगा देंगे।' वह एक हजार सैनिकों को लेकर युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ गया।

मार्ग में माणिकलाल को एक स्त्री पड़ी मिली। वह बीमार जान पड़ती थी। घुड़सवारों को देखकर वह उठ बैठी। उसने खड़ी होने का प्रयत्न किया परन्तु उठ न सकी। माणिकलाल घोड़े से उतरकर उसके पास पहुंचा। उसने उससे पूछा, 'तुम कौन हो ? यह सेना किसकी है ?'

'मैं राणा राजसिंह का आदमी हूं।'

'मैं चंचलकुमारी की सखी हूं। राजकुमारी दिल्ली जा रही थीं। मैंने उनके साथ जाना चाहा, परन्तु वह मुझे साथ न ले गई। मैं पैदल उनके पास जा रही थी। मैं थककर यहां गिर पड़ी हूं।'

'अब तुम क्या चाहती हो ?' माणिकलाल ने पूछा।

'क्या चाहती हूं ? मैं यहीं मर जाऊंगी।' वह बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मरोगी क्यों ? मैं तुम्हें राजकुमारी के पास ले चलता हूं।'

'मैं नहीं चल सकती।' वह बोली।

'तुम घोड़े पर चलो।' माणिकलाल बोला।

'घोड़ा मैं देता हूं तुम्हें।' माणिकलाल बोला।

'परन्तु मैं घोड़े पर चढ़ना भी तो नहीं जानती।' वह बोली।

'अच्छा तो तुम मेरे घोड़े पर आओ।' माणिकलाल बोला।

निर्मल सक्रोध बोली, 'आप अपने मार्ग पर जाएं। मैं यहीं पड़ी रहूंगी। राजकुमारी से मिलने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।'

माणिकलाल ने कहा, 'क्यों जी ! क्या आपका विवाह हो गया है ?'

निर्मल माणिकलाल का ढंग देखकर बोली, 'नहीं।'

'तुम किस जाति की हो ?' माणिकलाल ने पूछा।

'मैं राजपूत लड़की हूं।' निर्मल बोली।

'मैं भी राजपूत हूं। मेरे भी स्त्री नहीं है। मेरी एक छोटी लड़की है, उसके लिए मैं एक मां खोज रहा था। तुम मां बनो तो मेरे साथ घोड़े पर चढ़न में कोई आपत्ति नहीं।'

'शपथ लो कि तुम जो कह रहे हो, वह सत्य है।'

'शपथ लेता हूं।' माणिकलाल बोला।

'तलवार छूकर शपथ लो कि मुझसे विवाह करोगे।'

माणिकलाल बोला, 'यदि आज के युद्ध में जीता रहा तो तुमसे विवाह करूंगा।'

'तब चलो, मैं तैयार हूं।' निर्मल बोली।

माणिकलाल ने प्रसन्नतापूर्वक निर्मल को घोड़े पर चढ़ा लिया और युद्धस्थल की ओर बढ़ चला।

माणिकलाल ने युद्धस्थल के निकट एक सुरक्षित स्थान पर निर्मल को घोड़े से उतारकर बिठा दिया और स्वयं युद्धस्थल की ओर बढ़ गया।

माणिकलाल ने देखा कि वहां युद्ध हो रहा था। राणा राजसिंह घाटी में थे। उसे शंका हुई कि कहीं मुगल घाटी का मुंह बन्द करके राजसिंह को समाप्त न कर दें। माणिकलाल ने मुबारक की सेना की ओर संकेत करके कहा, 'ये ही सब डाकू हैं। इन पर आक्रमण करो।'

'ये सब तो मुसलमान हैं।' रूपनगर के सैनिक बोले।

'क्या मुसलमान लुटेरे नहीं होते हैं ? हमला करो।'

सेना ने बन्दूकें दाग दीं। एक साथ एक हजार बन्दूकें चलीं। मुगल इधर-उधर को भागने लगे। मुबारक ने पलटकर देखा कि उन पर पीछे से आक्रमण हो गया था। यह देखकर मुगलों के छक्के छूट गए।

मुबारक की सेना जंगल की ओर भागने लगी। रूपनगर की सेना ने उनका पीछा किया। मुबारक भी जंगल में फंस गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माणिकलाल ने राणा राजसिंह के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। राणा ने पूछा, 'यह सब क्या हुआ माणिकलाल! मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आया। मुगल सेना पर किसने आक्रमण किया ?'

माणिकलाल हंसकर बोला, 'जब मैंने देखा कि आप घाटी में उतरे आए तो मैं समझ गया कि सर्वनाश की सम्भावना है। तब मुझे यह काण्ड रचना पड़ा।' माणिकलाल ने संक्षेप में महाराणा को सब वृतान्त सुनाया। राणा ने प्रसन्न होकर माणिकलाल की कौली भर कहा, 'माणिकलाल ! तुम सच्चे देशभक्त हो ; तुमने जो काम किया है उसका पुरस्कार तुम्हें मैं उदयपुर चलकर दूंगा।'

'महाराज ! आप राजकुमारी को लेकर तुरन्त देश चलिए।'

राणा ने तुरन्त उदयपुर की ओर प्रस्थान किया। माणिकलाल निर्मल को लेने के लिए पीछे लौट गया।

14

मुबारक जिस मार्ग पर भटक रहा था, वहां एक कुंआ था। वह ऊपर से झाड़-झंकाड़ों से ढंका था। मुबारक ने उधर को ही घोड़ा दौड़ा दिया। वह घोड़े के साथ उस कुएं में गिर गया। उस कुएं में पानी नहीं था। गिरने से घोड़ा तो मर गया, परन्तु उसके अधिक चोट न आई। अब उस कुएं से निकलने का कोई उपाय न था। कोई आवाज सुन ले, इसलिए वह चिल्लाने लगा।

किसी ने दूर से कहा, 'ठहरो, मैं तुम्हें निंकालता हूं।'

'तुम कौन हो ? मुबारक ने पूछा।

'क्या अधिक चोट आई है ?' उसने पूछा।

'मामूली चोट है।' मुबारक बोला।

'मैं कुएं में धोती लटकाता हूं। तुम उसे पकड़ों, मैं तुम्हें बाहर खींच लूंगा।'

मुबारक बोला, 'तुम कौन हो ?'

'इस आवाज को भी नहीं पहचानते ?' उसने कहा।

'पहचानता हूं दरिया ! परन्तु तुम यहां कहां ?'

'मैं तुम्हारे ही लिए यहां हूं। मैं तुम्हें ऊपर खींचती हूं।'

मुबारक बाहर निकला। दरिया को देखकर मुबारक बड़े आश्चर्य में पड़ा था। उसने पूछा, 'तुम्हारा यह वेश कैसा है ?'

'मैं शाही सवार हूं।' दरिया बोली।

'यह किसलिए ?' मुबारक ने पूछा।

'तुम्हारे लिए। मैं न होत्री तो अब तुम्हें कौन बचाता।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम इसलिए दिल्ली से यहां तक आई हो ? क्या इसीलिए तुमने सवार का वेश बनाया है ? परन्तु तुम तो घायल हुई हो। यह कैसे हुआ ?'

'तुम्हारे ही लिए। नहीं तो तुम कैसे बचते ? बताओ क्या शाहजादी भी तुम्हें इतना प्रेम करती है ?'

मुबारक ने सिर झुकाकर कहा, 'शाहजादियां प्रेम नहीं करतीं।'

'गरीब औरतें प्रेम करती हैं।' दरिया बोली।

'दरिया ! अब मैं तुझे कभी न छोडूंगा।'

मुबारक को साथ लेकर दरिया दिल्ली की दिशा में प्रस्थान कर गई। दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे।

राणा राजसिंह चंचलकुमारी के साथ उदयपुर पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने सोचा कि वह चंचलकुमारी को उदयपुर में रखें या रूपनगर उनके पिता के पास भेज दें।

चंचलकुमारी राजा के संकोच को देखकर विस्मित थीं। वह सोच रही थीं कि राजा उनसे विवाह करके उन्हें ग्रहण करेंगे अथवा नहीं।

राजसिंह एक दिन चंचलकुमारी के मन का भाव जानने के लिए उनके पास आए। वह चंचलकुमारी का पत्र और मणि-माला साथ लेते गए, जो उन्होंने अनन्तमिश्र के हाथ उनके पास भेजे थे।

चंचलकुमारी उन्हें प्रणाम कर सरल भाव से एक ओर खड़ी हो गई। राजा बोले, 'राजकुमारी ! अब तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम्हारी अपने पिता के घर जाने की इच्छा है या यहां रहने की ?'

यह सुनकर चंचलकुमारी का हृदय टूट गया। वह चुप रही, कुछ बोल न सकीं। उनके नेत्र डबडबा आए।

राणा ने चंचलकुमारी का पत्र उन्हें देकर पूछा, 'क्या यह तुम्हारा ही पत्र है ? क्या यह तुमने ही लिखा था ?'

'जी !' चंचलकुमारी ने कहा।

'परन्तु यह पत्र एक व्यक्ति ने नहीं लिखा। दो हाथों का लेख है इसमें। तुम्हारे हाथ का लेख कौन-सा भाग है ?'

'पहला भाग मेरे हाथ का है।' चंचलकुमारी ने कहा, 'अन्तिम भाग दूसरे का लिखा है ?'

'क्या यह भी तुम्हारी सहमति से लिखा गया था ?'

चंचलकुमारी बोली, 'महाराज ! क्षत्रिय लोग विवाह के लिए ही कन्या-हरण करते हैं, अन्य किसी कारण से कन्या-हरण करना पाप है। क्या मैं पाप करने के लिए आपसे अनुरोध करती ?'

'परन्तु मैंने तुम्हारा हरण नहीं किया। मैंने तुम्हारे कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए मुसलमानों के हाथों से तुम्हारी रक्षा की है। अब तुम्हें तुम्हारे पिता के पास पहुंचा देना ही राजधर्म है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंचलकुमारी बोलीं, 'महाराज ! अपने राजधर्म को आप जानें। मैं अपना धर्म जानती हूं। मैं जानती हूं, कि जब मैंने अपने को आपके चरणों में अर्पण कर दिया तो मैं आपकी दासी हूं। अब मैं किसी अन्य को वरण नहीं कर सकती। आप मेरे पति हैं। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। यदि आप मुझे रूपनगर लौटने को कहेंगे, तो मैं अवश्य जाऊंगी। वहां जाने पर पिता मुझे बादशाह के पास भेजने को बाध्य होंगे, क्योंकि मेरी रक्षा करने की उनमें सामर्थ नहीं है। यदि आपकी यही इच्छा थी तो आपने मुझे दिल्ली ही क्यों नहीं जाने दिया ?'

'वह मैंने अपने धर्म की रक्षा के लिए किया था।'

'तो आप मुझे दिल्ली जाने देंगे ?'

'यह भी नहीं हो सकता। तुम यहीं रहो।'

'अतिथि के रूप में या दासी के रूप में ? रूपनगर की राजकुमारी यहां रानी के रूप में ही रह सकती है।'

'तुम जैसी सुन्दरी जिस राजा की रानी होगी, उसे कौन भाग्यवान न कहेगा ? परन्तु मैंने सुना है कि रूपवती स्त्री शत्रु के समान होती है।'

चंचलकुमारी हंसकर बोलीं, 'मेरी वाचालता के लिए महाराज मुझे क्षमा करें। क्या उदयपुर की सब रानियां कुरूप हैं ?'

राजसिंह ने कहा, 'तुम जैसी सुन्दरी अन्य कोई नहीं है।'

'यह बात आप अन्य रानियां के सामने न कहना।'

यह सुनकर राजसिंह हंस पड़े। चंचलकुमारी ने अपने मन में कहा, 'अब यह महाराणा नहीं, मेरे पति हैं ?'

राणा के निकट बैठती हुई चंचलकुमारी बोलीं, महाराज ! बिना आज्ञा के ही मैं आपके निकट बैठ गई, अपराध क्षमा करें। क्या मैं जान सकती हूं कि रूपवती स्त्री शत्रु कैसे होती है ?'

'रूपवती स्त्री के लिए युद्ध करना पड़ता है। तुम अब तक मेरी पत्नी नहीं हो, फिर भी तुम्हारे लिए औरंगजेब से युद्ध छिड़ा। हमारे वंश की महारानी पद्मिनी की बात तुमने सुनी ही होगी।'

'क्या सुंदर रानी होने से ही राजा ऐसी बात उठाते हैं ? मैं सुरूपा होती या कुरूपा, युद्ध तो होना ही चाहिए था।'

'और भी बातें हैं। रूपवती स्त्री पर पुरुष आसक्त हो जाता है। यह राजा के लिए निन्दनीय है। इससे उसके राजकार्य में बाधा पड़ती है।'

महान् राजा कई सौ रानियां रहने पर भी राजकार्य से मन नहीं हटाते। यह अश्रद्धा की बात है कि मुझ जैसी स्त्री के लिए महाराणा राजसिंह राजकार्य से विरक्त हो जाएं।' चंचलकुमारी ने कहा।

'शास्त्र में लिखा है कि वृद्धावस्था में तरुणी विषसम होती है।'

'तब क्या महाराज वृद्ध हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युवक भी तो नहीं हूं मैं।' राणा बोले।

'जिसकी भुजाओं में बल है, राजपूत-कन्या के लिए वही युवक है।'

'मैं रूपवान भी तो नहीं हूं।'

'कीर्ति राजाओं का रूप नहीं तो और क्या है ?'

'रूपवान और बलवान राजपूत-युवकों का भी तो अभाव नहीं है।'

'मैंने आपको आत्मसमर्पण किया है। मैं बहुत ही लज्जारहित बातें कर रही हूं। दुष्यन्त के त्याग करने पर शकुन्तला को भी लज्जा का त्याग करने को बाध्य होना पड़ा था।' चंचलकुमारी ने कहा। 'मेरे योग्य रानी तुम ही हो, परन्तु तुमने संकटग्रस्त होकर मुझे वरण किया है। मेरी इस आयु में तुम मुझ पर अनुराग भी रख सकोगी, मैं यह सोच रहा था। वह संशय दूर हो गया। तुम मेरी रानी होगी, परन्तु तुम्हारे पिता की इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ करना नहीं चाहता। मैं पत्र लिखकर उनकी अनुमति प्राप्त करूंगा।'

'मेरी भी इच्छा है कि माता-पिता का आशीर्वाद लेकर ही आपकी चरण-सेवा का व्रत ग्रहण करूं।'

राजसिंह ने एक सविनय पत्र लिखकर विक्रमसिंह सोलंकी के पास दूत भेजा और चंचलकुमारी ने भी एक पत्र द्वारा अपनी माताजी के आशीर्वाद की कामना की।

15

चंचलकुमारी के पिता का उत्तर समय पर आ पहुंचा। बहुत ही भयंकर उत्तर था। उन्होंने राजसिंह को लिखा, 'आप राजपूतों के मुकुट हैं, परंतु इस समय आप राजपूतों का नाम कलंकित करने को उद्यत हैं, आपने बलात् मेरी कन्या का हरण करके मेरा अपमान किया है। मेरी कन्या का मार्ग आपने कंटकपूर्ण बना दिया है। ऐसी दशा में मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपसे शत्रुता करूं। बिना मेरी इच्छा के आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण नहीं कर सकेंगे।

आप कहेंगे कि क्षत्रिय कन्या-हरण करके ही विवाह किया करते थे। भीष्म, अर्जुन और श्रीकृष्ण ने कन्या-हरण किया था। आप में भी यदि उनका-सा पौरुष है तो फिर भारत में मुगल बादशाह क्यों हैं ? गीदड़ को सिंह की चाल-चलना उचित नहीं है। मैं भी राजपूत हूं। मैं जानता हूं मुगलों को कन्या देकर मेरा गौरव नष्ट होता है, परन्तु न देने पर मुगल रूपनगर के पहाड़ों का एक भी पत्थर शेष न छोड़ते। यदि मैं अपनी आत्म-रक्षा में यह जानता कि कोई मेरी रक्षा करेगा, तो क्या मैं इस बात पर कभी उद्यत होता ? मैं जब समझ लूंगा कि आप में वह क्षमता है, तब मैं आपको स्वयं कन्यादान करूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप मेरी कन्या से विवाह न कीजिए। मैं श्राप देता हूं कि यदि आप ऐसा करें तो मेरी कन्या विधवा हो जाए और आपकी राजधानी श्रृंगालों की भूमि बने। यदि आप सचमुच कभी मेरी दृष्टि में वीर सामन्त प्रमाणित हुए तो मैं इच्छापूर्वक आपको कन्यादान करूंगा।'

पत्र को चंचलकुमारी ने सुना तो उनके नेत्रों के समक्ष अंधकार छा गया। राजा ने पूछा, 'अब क्या कहती हो चंचलकुमारी ?'

चंचलकुमारी ने आंखें पोंछकर कहा, पिता के अभिशाप को सिर पर लेकर कौन कन्या विवाह करने का साहस करेगी ? इस दशा में मेरे लिए अब जैसा पिता के घर जाना, वैसा ही दिल्ली जाना। इसकी अपेक्षा में विष खाना स्वीकार करूंगी।'

'तुम मेरे योग्य महारानी हो। मैं तुम्हें त्याग नहीं सकता, परंतु तुम्हारे पिता के आशीवार्द के बिना तुमसे विवाह भी नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है कि वह मुझे प्राप्त होगा। मुगलों के साथ मेरा युद्ध अब अवश्य होगा। इस युद्ध में मैं या तो वीरगति को प्राप्त हूंगा अथवा उन्हें पराजित करूंगा।'

'मुझे विश्वास है कि आप उन्हें पराजित करेंगे।'

'सफल हुआ तो निश्चय ही तुम्हारे पिता आशीर्वाद देंगे।'

'तब तक क्या होगा ?' चंचलकुमारी ने पूछा।

'तब तक तुम मेरे अन्तःनुर में महारानियों की तरह पृथक् महल में रहोगी। महारानियों की ही तरह तुम्हारे लिए सब प्रबंध होगा। केवल जब तक विवाह न होगा मैं तुमसे भेंट न करूंगा। अब क्या विचार है तुम्हारा ?'

चंचलकुमारी ने राणा के विचार को अपनी स्वीकृति प्रदान की।

उसी दिन माणिकलाल निर्मल के साथ उदयपुर आया और राणा से भेंट की। निर्मल को देखकर चंचलकुमारी बहुत प्रसन्न हुई। निर्मल पर रूपनगर छोड़ने के पश्चात् जो-जो बीता था, वह सब उसने विस्तार के साथ चंचलकुमारी को सुनाया।

माणिकलाल ने राणा की कृपा से सेना में सेनापति का पद प्राप्त कर लिया था। निर्मल अब उसकी पत्नी थी।

चंचलकुमारी बोली, 'बहिन निर्मलकुमारी ! यहां मेरे साथ मेरी जान-पहचान को कोई नहीं था। ऐसी दशा में भगवान ने तुम्हें यहां मेरे पास भेजा है।'

यह सुनकर निर्मल को लगा कि उस पर पहाड़ टूट पड़ा। अभी तो उसने पति पाया था ओर उसे छोड़कर चंचलकुमारी के साथ कैसे रहा जा सकता था ? निर्मलकुमारी तुरन्त उद्यत न हो सकी।

चंचलकुमारी की आखों में आंसू आ गए। उसने मनं में कहा, 'निर्मल ने भी मुझे छोड़ दिया। भगवान ! कहीं तुम भी मुझे न त्याग देना।' फिर चंयलकुमारी हंसकर बोलीं, 'निर्मल ! तुम मेरे लिए अकेली पैदल रूपनगर से चलकर आने के लिए उद्यत हुई थीं और यहां आकर तुम पति की हो गई।'

निर्मल ने सिर झुका लिया। वह अपने को धिक्कार कर बोली, 'मैं उनसे पूछकर

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाऊगी। जिसे पति बनाया है, उससे पूछना भी तो चाहिए और एक लड़की भी मेरे गले पड़ी है, उसकी भी व्यवस्था करनी होगी।'

'लड़की को भी यहीं ले आना।' चंचलकुमारी ने कहा।

'उसे लाने की आवश्यकता नहीं है। एक नाते की फूफी है, उसे उसी के घर पर छोड़ आऊंगी।'

16

राजसिंह ने औरंगजेब को एक पत्र लिया। उसे वह औरंगजेब के पास भेजना चाहते थे। औरंगजेब ने उनके कई दूतों को मरवा दिया था। इसलिए वह ऐसे चतुर व्यक्ति को भेजना चाहते थे कि जिसे मारा न जा सके। माणिकलाल बोला, 'मुझे इस कार्य पर नियुक्त किया जाए महाराज।'

राजसिंह ने माणिकलाल को हो भेजना उचित समझा।

चंचलकुमारी ने निर्मलकुमारी से कहा, 'निर्मल ! तुम भी अपने पति के साथ दिल्ली जाओ।'

'दिल्ली ! क्यों ?' निर्मल ने पूछा।

'उदयपुरी को निमंत्रण देती आना।'

'किस बात का ?' निर्मलकुमारी ने पूछा।

'मेरा तम्बाकू भरने का।' चंचलकुमारी बोली।

'ठीक है, यह बात तो याद ही नहीं रही थी मुझे।'

'या तो बेगम मेरी चिलम भरेगी या मुंझे विष खाना पड़ेगा।'

'तो क्या निमंत्रण भेजने ही बेगम आ जायेंगी ?'

'मेरा उद्देश्य झगड़ा करना है। मुझे विश्वास है कि युद्ध में महाराणा की विजय होगी और बेगम मेरी बांदी बनेगी ?'

'मैं यह काम कैसे कर सकूंगी ?'

'यह मैं बता देती हूं। जोधपुरी की अंगूठी मेरे पास है। तुम उसे ले आओ। उससे तुम रंगमहल में जा सकोगी और तुम जोधपुरी से भेंट कर सकोगी ? मैं उदयपुरी के नाम जो पत्र देती हूं वह उन्हें दिखाना। वह उस पत्र का उदयपुरी के पास भिजवा देंगी। जहां तुम्हारी बुद्धि काम न करे, वहां अपने पति से बुद्धि उधार लेना।'

'उनका काम तो मेरी ही बुद्धि से चल रहा है।' यह कहकर हंसती हुई निर्मल वहां से चली गई।

निर्धारित दिन महाराणा का पत्र लेकर निर्मलकुमारी के साथ माणिकलाल दिल्ली पहुंचा। वह एक विश्वासी व्यक्ति को साथ लेकर शहर में गया। वह अपने साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर की कुछ मूर्तियां भी ले गया था।

'यह क्या है ?' निर्मल ने पूछा।

'इन सब चीजों पर चिन्ह बने हैं।'

'यह किसलिए ?' निर्मल ने पूछा।

'दिल्ली में यदि मुगलों के प्रतिबंध से हम एक-दूसरे से पृथक् हो जाएं तो तुम पत्थर की चीज को खरीदने के लिए बाजार में आना। जिस दुकान की चीजों पर यह निशान हो, वहां से मेरा पता लगा लेना।'

यह कहकर माणिकलाल चल पड़ा। शहर में जाकर उसने एक मकान किराए पर लिया। उसके नीचे एक दुकान में पत्थर की चीजें सजाकर और विश्वासी व्यक्ति को दुकान पर छोड़कर वह निर्मल के पास गया।

दूसरे दिन वह निर्मलकुमारी को साथ लेकर फिर शहर में गया और नियमानुसार बादशाह के यहां सूचना भेजी।

माणिकलाल औरंगजेब के दरबार में गया। माणिकलाल ने सलाम करके राजसिंह के भेजे उपहार बादशाह को भेंट किए और फिर राणा राजसिंह का पत्र दिया। पत्र को पढ़कर औरंगजेब क्रोध से लाल हो गया, परन्तु उसने अपना क्रोध प्रकट नहीं होने दिया। उसने माणिकलाल से प्रेमपूर्वक बातें कीं।

दरबार समाप्त होने पर औरंगजेब ने माणिकलाल का वध करने की गुप्त आज्ञा दी, परंतु वध करने वालों को माणिकलाल का कहीं पता न चला। सम्पूर्ण दिल्ली में खोज हुई, परन्तु सब व्यर्थ रहा।

कोतवाल ने माणिकलाल के डेरे पर से निर्मलकुमारी को पकड़ा और उससे माणिकलाल का पता पूछा।

'मैं नहीं जानती !' निर्मल ने कहा।

'तुम उसके साथ उदयपुर से आई हो।'

'उदयपुर तो मैंने कभी देखा भी नहीं।' निर्मल ने कहा।

'तब तुम कौन हो ?' कोतवाल ने पूछा।

'मैं जोधपुरी बेगम की बांदी हूं ?' उसने कहा।

'बेगम की बांदियां महल से बाहर नहीं जातीं।'

'मैं भी नहीं जाती। हिन्दू दूत का आना सुनकर बेगम साहिबा ने मुझे उसके डेरे पर भेजा था।'

'किसलिए ?' कोतवाल ने पूछा।

'कृष्णजी के चरणामृत के लिए, जिसे राजपूत लोग रखते हैं।'

'तुम अकेली महल से बाहर कैसे आई ?'

'इसके बल से।' यह कहकर निर्मलकुमारी ने जोधपुरी बेगम की अंगूठी कपड़े के अंदर से निकालकर दिखाई। उसे देखकर कोतवाल ने उसे तीन बार सलाम किया और कहा, 'तुम जाओ। तुम्हें कोई कुछ नहीं कह सकता। मैं क्षमा चाहता हूं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल बोली, 'कोतवाल साहब, मैं कभी महल से बाहर नहीं निकली। यह धर-पकड़ देखकर मैं बहुत भयभीत हो गई हूं। आप कृपया कोई सिपाही मेरे साथ भेज दें, जो मुझे महल तक पहुंचा आए।'

कोतवाल ने उसी समय एक सिपाही को निर्मल के साथ, उसे महले तक पहुंचाने के लिए, भेज दिया। निर्मलकुमारी जोधपुरी बेगम के पास पहुंची और उन्हें प्रणाम करके उनकी अंगूठी उन्हें दी। बेगम ने उसे एकांत में ले जाकर उससे बातें कीं।

निर्मल ने देवी के रूपनगर पहुंचने का वृतान्त सुनाया और फिर चंचल पर जो बीती थी, वह कही। उदयपुरी बेगम के लिए वह जो पत्र लाई थी, वह भी उन्हें दिखाया।

अर्धरात्रि में जोधपुरी बेगम ने निर्मल को समझाकर एक तातारी के साथ जेबुन्निसा के पास भेजा। जेबुन्निसा शराब के नश में मदहोश थी। उसकी आंखें झपी जा रही थीं। निर्मल को देखकर उसने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं उदयपुर की महारानी की दूती हूं।'

'मुगल-बादशाह का तख्तेताऊस लेने आई हो ?'

'जी नहीं, एक पत्र लेकर आई हूं।'

'पत्र का क्या होगा ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'उदयपुरी बेगम साहिबा को दूंगी।' निर्मल ने कहा।

'वही जीती है या मर गई ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'जीती होंगी सरकार !' निर्मल बोली।

'नहीं वह मर गई। इसे कोई उसके पास ले जाओ।'

जेबुन्निसा का मतलब था कि उसे यमराज के पास ले जाओ। पहरेदारिन निर्मल को उदयपुरी बेगम के महल में ले गई।

निर्मल ने उसे सलाम किया। उदयपुरी ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं उदयपुर की महारानी की दूती हूं।'

'नहीं, तुम फारिस के बादशाह हो। तुम मुझे मुगल बादशाह से छीनने आये हो।' उदयपुरी बोली।

निर्मलकुमारी ने चंचलकुमारी का पत्र उदयपुरी को दिया। उदयपुरी बोली, 'क्या लिखा है इसमें ? इसमें लिखा होगा, नाजनीं, तुम्हारी खूबसूरती पर मैं दीवाना हूं।' तुम जल्द आकर मेरा कलेजा ठण्डा करो। करूंगी मैं चलूंगी, आप जरा ठहरें, थोड़ी शराब और पी लूं।'

उदयपुरी ने प्याला मुंह से लगाया। निर्मल बाहर निकलकर जोघपुरी बेगम के पास जा पहुंची। सब बातें सुनकर जोधपुरी ने कहा, 'कल वह चिट्ठी पढ़ेगी। अब तुम जाओ यहां से। झमेला खड़ा होगा। मैं तुम्हारे साथ एक विश्वासी खोजा भेज देती हूं। वह तुम्हें तुम्हारे पति के पास पहुंचा देगा।'

जोधपुरी ने विश्वासी खोजे को बुलाकर कहा, 'तुम अभी इनके साथे चले जाओ?'

'मुझे एक दस्तखती परवाना चाहिए।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जैसा परवाना चाहिए, लिखा लाओ।'

खोजा परवाना लिखा लाया। उस पहरेदारिन को देखकर बेगम ने कहा, 'इस पर जेबुन्निसा के हस्ताक्षर करा लाओ।'

'यदि वह पूछें कि कैसा परवाना है ?'

'कहना मेरे कत्ल का परवाना है। कलम-दवात लेती जाना। मोहर की छाप लगवाना न भूलना।'

पहरेदारिन ने परवाना ले जाकर जेबुन्निसा के सामने रखा तो जेबुन्निसा ने पूछा, 'कैसा परवाना है।'

'मेरे कत्ल का परवाना है।'

'क्या चुराया था ?' उसने पूछा।

'जोधपुरी का पेशबाज।' पहरेदारिन ने कहा।

'उसे कत्ल होने के पश्चात् पहिनना।' जेबुन्निसा बोली।

जेबुन्निसा ने परवाने पर हस्ताक्षर कर दिए। पहरेदारिन ने परवाना लाकर जोधपुरी को दिया। परवाना लेकर खोजा निर्मल के साथ महल से निकला और थोड़ा आगे बढ़ा।

फाटक के पास जाकर खोजा स्तम्भित रह गया। वह बोला, 'शामत ! भागो, 'भागो !!' वह भाग गया, परन्तु निर्मल वहीं खड़ी रही। वह भागी नहीं।

17

निर्मल खोजा के भागने का कारण न समझी ? उसने देखा कि फाटक के पास सफेदपोश व्यक्ति खड़ा था। वह सफेदपोश व्यक्ति अब निर्मल के सामने आ गया था। उसने निर्मल से पूछा, 'तुम कौन हो ? कहां जा रही हो ?'

'आपसे मतलब ?' निर्मल ने कहा।

'तुम कहां जा रही हो ?' उसने फिर पूछा।

'मैं बाहर जा रही हूं।' निर्मल बोली।

'क्यों ?' उसने प्रश्न किया।

'मुझे बाहर जाना है, इसलिए।' निर्मल बोली।

'तुम्हें किसलिए बाहर जाना है ?' उसने पूछा।

'यह मैं नहीं बता सकती। निर्मल बोली।

'तुम्हारे साथ कौन था ?' उसने पूछा।

'यह भी मैं नहीं बताऊंगी।'

'तुम हिन्दू जान पड़ती हो। किस जाति से हो ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'राजपूत-जाति से।'

'क्या तुम जोधपुरी बेगम के पास रहती हो ?'

निर्मल जोधपुरी बेगम का नाम किसी के सामने नहीं लेना चाहती थी। इसीलिए बोली, 'मैं यहां आज ही आई हूं।'

'कहां से आई हो ?'

निर्मल ने सोचा, झूठ क्यों बोलूं ? यह मेरा क्या कर लेगा ? वह बोली, 'मैं उदयपुर से आई हूं।'

'किसलिए आई हो ?' उसने प्रश्न किया।

निर्मल बोलीं, 'आपको इतना परिचय देने से मतलब ? केवल इतना ही जानकर यदि आप मुझे फाटक से बाहर कर दें,तो आपका उपकार मानूंगी।'

'यदि मैं तुम्हारे उत्तर से सन्तुष्ट हुआ तो तुम्हें फाटक से बाहर कर दूंगी।' उसने कहा।

'आप कौन हैं, यह जानकर मैं प्रश्न का उत्तर दे सकती हूं।'

'मैं बादशाह औरंगजेब हूं।' उसने कहा।

अब निर्मल को उस तस्वीर की याद आई जिसे चंचलकुमारी ने पैर से कुचलकर तोड़ा था। निर्मल ने बड़े ध्यान से उनकी ओर देखा और सलाम करके कहा, 'हुक्म फर्माएं, अब मैं उत्तर दूंगी।'

'तुम यहां किसके पास आई हो ?'

'उदयपुरी बेगम के पास।' निर्मल ने कहा।

'उदयपुर से उदयपुरी के पास ! आखिर क्यों ?'

'उन्हें एक पत्र देना था।' निर्मल बोली।

'उन्हें किसका पत्र देना था ?' औरंगजेब ने पूछा।

'महाराणा की महारानी का।' निर्मल ने कहा।

'वह पत्र कहां है ? औरंगजेब ने पूछा।

'उसे मैं बेगम साहिबा को दे आई।' निर्मल बोली।

'तुम मेरे साथ आओ।' औरंगजेब बोला।

निर्मल को साथ लेकर बादशाह उदयपुरी के भवन में गए। निर्मल को द्वार पर खड़ी करके उन्होंने पहरेदारिन से कहा, 'इसे जाने न देना।'

उन्होंने उदयपुरी के सोने के कमरे में जाकर देखा तो उदयपुरी गहरी नींद में पड़ी थीं। पत्र उनके बिस्तर पर पड़ा था। औरंगजेब ने उसे उठाकर पढ़ा। पत्र फारसी में लिखा था।

पत्र को पढ़कर औरंगजेब बाहर आए। उन्होंने निर्मल से कहा, 'तू इस महल में कैसे आई ?'

निर्मल हाथ जोड़कर बोली, 'दासी का अपराध क्षमा हो, मैं इस बात का उत्तर नहीं दूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औरंगजेब गरज कर बोले, 'इतनी हिम्मत ? मैं दुनिया का बादशाह हूं। मैं पूछता हूं तो जवाब देना ही होगा ?'

निर्मल हाथ जोड़कर बोली, 'दुनिया हुजूर की है, लेकिन मेरी जीभ मेरी है। मैं जो न कहना चाहूं, उसे दुनिया का बादशाह मुझसे नहीं कहलवा सकता।'

'मैं तेरी जीभ को कटवा कर कुत्ते को खिला सकता हूं।'

'ऐसा करके आप जो पूछना चाहते हैं, उसका रास्ता सर्वदा के लिए बन्द हो जाएगा।' निर्मल बोली।

'इसीलिए तुम्हारी जीभ को छोड़ देता हूं। मैं तुम्हें थोड़ा-थोड़ा जलाने की आज्ञा देता हूं। तब तुम सब-कुछ बता दोगी।'

निर्मलकुमारी हंसकर बोली, 'हिन्दू औरतें आग से जलकर मरने से नहीं डरतीं बादशाह सलामत ! क्या आपने नहीं सुना कि हिन्दू औरतें हंसती हुई चिता पर जल जाती हैं ?'

'इस बात का फैसला बाद में होगा। अभी तुझे इस महल की कोठरी के अन्दर बन्द कराता हूं। भूख-प्यास से तड़पने पर जब कुछ न पाएगी तो तू मेरी बात का जवाब देगी।'

'शहंशाह ! क्या आपने नहीं सुना कि हिन्दू-स्त्रियां व्रत रखती हैं। जहांपनाह! यह दासी भी वैसा कर सकती है। इच्छा हो तो आप मृत्यु तक परीक्षा लेकर देख सकते हैं।'

औरंगज़ेब ने देखा कि इस लड़की को भय दिखाने से काम न चलेगा। इसे प्रलोभन देना चाहिए। वह बोले, 'चलो मान लिया कि मैं तुम्हें सजा न दूंगा। तुम्हें धन-दौलत देकर विदा कर दूंगा। तुम सब बातें सही-सही बता दो।'

'राजपूत-कन्याओं को जैसे मृत्यु का भय नहीं होता, वैसे ही धन-दौलत का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आप मुझे विदा करें।'

'तुम्हारी बादशाह से कुछ मांगने की इच्छा नहीं होगी। क्या इसके अलावा तुम्हारी और कोई इच्छा नहीं है ?'

'है क्यों नहीं, पर आपके खजाने में वह चीज नहीं है।'

'ऐसी क्या चीज है ?' औरगजेब ने पूछा।

'दिल्ली के बादशाह ऐश्वर्यशाली तो हैं,परन्तु उनमें वो सामर्थ कहां जो मेरी इच्छा पूरी कर सकें।' निर्मल बोली।

आलमगीर निर्मलकुमारी के साहस और चतुराई को देखकर विस्मित रह गए। वह क्रोध प्रदर्शित करके बोले, 'ठीक है। मैं एक बात भूल गया था।' वह एक तातारी को हुक्म देते हुए बोले, 'जा, रसोई से थोड़ा गौ-मांस लाकर इसके मुंह में भर दे।'

'मैं जानती हूं कि आप लोगों में बस यही एक गुण है। इसी से आपने भारत को छीना है, परन्तु क्या आपने यह नहीं सुना कि राजपूत-औरतें अपने साथ विष लेकर चलती हैं ? मेरे पास ऐसा ही विष है। यदि आपके नौकर-गौ-मांस लेकर आए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं विष खा लूंगी। मुझे आप दारा की पत्नी न समझें।'

औरंगजेब ने अपनी पराजय स्वीकार की। उन्होंने अपने मन में कहा, 'है अमूल्य रत्न। इसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। मैं इसे अपने अधिकार में लूंगा।' यह मधुर स्वर में बोले, 'तुम्हारा क्या नाम है प्यारी ?'

निर्मलकुमारी हंसकर बोली, 'क्या जहांपनाह को अभी और राजपूत रानियों का शौक शेष है ? यहां यह शौक भी आपको त्यागना होगा। मैं विवाहित हूं और मेरा पति जीवित है।'

'ये बातें जाने दो। कुछ दिन मेरे रंगमहल में रहो। शायद इस आज्ञा को तुम मान लोगी ?'

'आप मुझे व्यर्थ रोक रहे हैं ?' निर्मल ने कहा।

'तुम अपने देश में जाकर मेरी बदनामी करोगी। मैं चाहता हूं कि तुम मेरी प्रशंसा करो। जब तुम पहिचान लोगी तो मैं तुम्हें छोड़ दूंगा।' औरंगजब बोला।

'यदि आप नहीं छोड़ेंगे तो मैं कैसी जा सकती हूं, परन्तु आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।' निर्मल बोली।

'वह क्या ?' औरंगजेब ने पूछा।

'मैं अन्न-जल के अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नहीं करूंगी। कोई मुसलमान मुझे छू न सकेगा। मैं राजपूत बेगम के पास रहूंगी।'

'यही होगा। मैं तुम्हें जोधपुरी बेगम के पास रखूंगा।'

निर्मल को जोधपुरी बेगम के पास भेज दिया गया।

दूसरे दिन औरंगजेब ने जेबुन्निसा और निर्मलकुमारी को साथ लेकर जांच की कि उसे रंगमहल में किसने आने दिया। महल की तातारिनों ने निर्मल को पहिचाना, परन्तु गलत काम हो जाने के भय से किसी ने अपराध स्वीकार नहीं किया। तब औरंगजेब ने कहा, 'उसके आने से कोई हानि नहीं हुई, परन्तु उसे जाने न दिया जाए। कोई उसे कष्ट न दे और उसका अपमान न करे। उसे बेगमों जैसा आदर दिया जाए।'

निर्मलकुमारी को सबने सलाम किया। जेबुन्निसा ने आदर के साथ उसे कमरे में बिठाया और तरह-तरह की बातें कीं, परन्तु निर्मल के मन की बात वह न जान सकी।

तीसरे प्रहर एक पहरेदारिन ने जोधपुरी बेगम को सूचना दी, 'एक सौदागर ने कुछ पत्थर की चीजें भेजी हैं। आप कुछ लेगीं क्या ?'

निर्मलकुमारी बोलीं, 'देखें कैसी चीजें हैं ?'

जोधपुरी बेगम ने निर्मल का अभिप्राय समझकर पत्थर की चीजें महल में ले आने की आज्ञा दी।

पहेदारिन के बाहर जाने पर निर्मल ने जोधपुरी बेगम को माणिकलाल के निशान की बात बता दी। बेगम बोलीं, 'तुम अपने पति के लिए एक पत्र लिख लो। तब तक मैं चीजें देखती रहूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहरेदारिन चीजें अन्दर ले आई।

जब तक निर्मल ने पत्र लिखा, जोधपुरी बेगम चीजें पसन्द करती रहीं। उनमें एक डिब्बा था। निर्मलकुमारी ने निगाह बचाकर अपना पत्र डिब्बे में डाल दिया।

बेगम ने कुछ चीजें पसन्द करके शेष चीजें डिब्बे के साथ लौटा दीं।

बनावटी सौदागर माणिकलाल रुपये-पैसे और डिब्बा लेकर अपनी दुकान पर चला गया। उसने एकान्त में निर्मल का पत्र पढ़ा।

पत्र पढ़कर निर्मल के विषय में निश्चिन्त होकर माणिकलाल उदयपुर लौटने की तैयारी करने लगा।

18

रूपनगर से लौटने वाले सरदारों को औरंगजेब ने दण्डित किया था। मुबारक की बहादुरी की बातें सुनकर उन्हें उस समय क्षमा.कर दिया गया था।

जेबुन्निसा ने भी उनकी प्रशंसा सुनी। वह चाहती थी कि मुबारक उससे अपना हाल बयान करे, परन्तु वह उसके पास नहीं आया।

मुबारक के न अ।ने पर जेबुन्निसा ने मुबारक को बुलाया। मुबारक तब भी न आया। इस पर जेबुन्निसा को बहुत क्रोध आया।

कई दिनों तक जेबुन्निसा क्रोध में भरी बैठी रही। फिर धीरे-धीरे उसका क्रोध व्याकुलता में बदलने लगा।

शाहजादी ने जब दुबारा मुबारक को बुलाया तो उसने कहलवा दिया, 'शाहजादी से मूल्यवान मेरे लिए कोई चीज नहीं, केवल खुदा और दीन हैं। अब मुझसे गुनाह न होगा। अब मैं महल में नहीं आऊंगा। मैं दरिया को अपने घर में ले आया हूं।'

यह उत्तर सुनकर जेबुन्निसा मारे क्रोध के आग हो गई और मुबारक तथा दरिया को मरवाने का प्रपंच रचने लगी।

महल में निर्मलकुमारी के आ जाने से जेबुन्निसा को उन्हें मरवाने का अवसर न मिला। निर्मलकुमारी औरंगजेब से आदर पाने लगी थी। औरंगजेब नित्य अपने आराम के समय निर्मल को बुलाकर उससे बातें किया करते थे। उस बातचीत का अर्थ होता था, राजसिंह की राज्य-व्यवस्था का पता लगाना। निर्मल भी सब बातें समझती थी।

औरंगजेब ने सोच लिया था कि वह इस बार मेवाड़ को सैन्य सागर में डूबो देंगे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति जुटाई थी।

जेबुन्निसा औरंगजेब की आज्ञा से निर्मल की देख-रेख में लगी थी। निर्मल से उनकी हंसी-दिल्लगी होती, परन्तु बादशाही ढंग की। निर्मल क्रोध न करती, केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर देती, वह भी मंजा हुआ।

जेबुन्निसा से जो बातें कहने में निर्मल को आपत्ति न होती थी, उन्हें वह कह देती थी। बात यह थी कि रूपनगर का युद्ध बन्द क्यों हुआ ? निर्मल ने चंचलकुमारी से जो हाल सुना था वह उसने जेबुन्निसा को सुना दिया। उसने बताया कि मुबारक ने युद्ध बन्द करा दिया था। चंचलकुमारी के विष खाने के भय से मुबारक उन्हें दिल्ली नहीं लाए। यह बात निर्मल की जबान से निकल गई।

यह सुनकर जेबुन्निसा अपने मन में बोली, 'मुबारक साहब ! इस बात से तुम दण्डित किए जाओगे।'

जेबुन्निसा ने औरंगजेब को युद्ध के विषय में सब बातें बताई।

औरंगजेब बोला, 'यदि मुबारक ऐसा विश्वासघाती है तो उसे जहन्नुम भेज दिया जाएगा।' औरंगजेब ने निर्मल को बुलाया। उसने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं।

बादशाह ने मुबारक की मृत्यु की आज्ञा जारी कर दी। यह आज्ञा पाकर आठ सिपाही मुबारक को पकड़कर ले आए। मुबारक दरबार में आए तो उन्होंने देखा, लोहे के दो पिंजड़े रखे थे और उनमें विषधर फुंकार रहे थे।

मुबारक ने जूता उतारकर पिंजड़े पर पैर रखा और सर्प ने फुंकारकर उसे डस लिया। मुबारक अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। उनका बदन नीला पड़ गया।

मुबारक के मरने का समाचार जेबुन्निसा को मिला। उसे आशा थी कि यह समाचार उसे प्रसन्नता प्रदान करेगा, परन्तु परिणाम इसके ठीक विपरीत हुआ। उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह रोती हुई पलंग पर जा पड़ी।

जेबुन्निसा की धीरे-धीरे समझ में आया कि बादशाहजादियां भी प्रेम करती हैं। जेबुन्निसा ने अपने मन में कहा, 'मैं मुबारक को इतना प्रेम करती थी यह पहले क्यों न जान सकी ?'

जेबुन्निसा ने खड़ी होकर अपने विश्वासी खोजा को बुलाया। उसने उससे पूछा, 'क्या सांप-काटे की कोई दवा है ?'

'हातिममल ने ऐसे एक आदमी को जिलाया था, यह मैंने सुना है।'

'तुम उसे पहिचानते हो ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'जी पहचानता हूं।' वह बोला।

'उसे जाकर बुला लाओ। क्या तुम जानते हो कि मुबारक को कहां कब्र दी गई है ?'

मैं कब्र का पता लगा सकता हूं।'

'मैं तुम्हें दो सौ अशर्फियां देती हूं। इनमें से सौ हातिममल को देना और सौ तुम रख लेना।' मुबारक को कब्र से निकालकर किसी तरह से बचाओ।'

अशर्फियां लेकर खोजा चला गया।

उसी समय द्वार पर शोर मचा। कोई अन्दर आने के लिए जिद कर रही थी, पहरेदारिन उसे आने नहीं दे रही थी। जेबुन्निसा को दरिया की सी आवाज सुनाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी। दरिया ने पहरेदारिन को ढकेलकर अन्दर प्रवेश किया। वह जेबुन्निसा के सामने आंखों में आंसू भरकर रोने लगी। जेबुन्निसा ने पहरेदारिन को उसे पकड़ने की आज्ञा दी।

19

माणिकलाल एक बार फिर निर्मलकुमारी की सूचना लेने आया। इस बार भी वही पत्थर का डिब्बा आया। डिब्बे में निर्मल को एक कबूतर मिला। निर्मल ने उसे रख लिया और पहले की ही तरह समाचार भेजा। 'सब मंगल है ? तुम जाओ। मैं बादशाह के साथ आऊंगी।'

माणिकलाल ने अपनी दुकानदारी उठा दी और उदयपुर की यात्रा आरम्भ की। वह अजमेरी दरवाजे से न जाकर दूसरे द्वार से चला। मार्ग में एक कब्रिस्तान था। उसने देखा कि कब्र के पास दो आदमी खड़े थे। माणिकलाल और उसके आदमियों को देखकर वे दोनों भाग गए। माणिकलाल ने उस शव को देखा तो उसे उसमें प्राण प्रतीत हुए। उसने उसे अपने घोड़े पर लादकर कपड़े से ढक लिया और घोड़े को आगे बढ़ा दिया।

माणिकलाल दिल्ली से बाहर निकल गया। जंगल में जाकर उसने शव को घोड़े से उतारा और उसके बदन को जगह-जगह से छुरी से काटकर घावों में एक दवा भर दी। उसने उसकी जीभ तथा आंखों में भी कुछ दवा लगा दी। तीन बार इसी प्रकार करने पर शव में चेतना आ गई।

माणिकलाल ने निकट के एक गांव से कुछ दूध मंगाकर उसको पिलाया। दूध पीने से उसे सब बातें याद आ गई। उसने माणिकलाल से पूछा, 'आप कौन हैं ? मुझे आपने क्यों बचाया ? मैं आपको पहचानता हूं। आपके साथ मैंने रूपनगर के पहाड़ों पर युद्ध किया था। आपने मुझे पराजित किया था।'

'मैंने भी आपको पहचान लिया। आपकी यह दशा कैसे हुई ? आपको सांप ने काट लिया था ?'

'यह कहने योग्य बात नहीं है। समय आने पर सब कहूंगा। क्या आप इस समय उदयपुर जा रहे हैं ?'

'हां।' माणिकलाल ने कहा।

'क्या आप मुझे भी साथ नहीं ले चलेंगे ?' उसने पूछा।

'मैं तुम्हें अपने साथ ले चलता हूं, परन्तु आप अभी दुर्बल हैं।'

'मुझमें अभी शक्ति आ जाएगी। तब तक आप ठहर जाएं।'

'मैं ठहरता हूं।' माणिकलाल ने कहा। उसने मुबारक को और दूध पिलाया। संध्या तक मुबारक स्वस्थ हो गया। अब वह चलने योग्य हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माणिकलाल मुबारक के साथ उदयपुर पहुंच गया। उसने राणा को औरंगजेब की तैयारी से परिचित कराया। उसने बताया कि शाही सेना चारों ओर से उदयपुर को घेरने के लिए बढ़ना चाहती है।

उधर औरंगजेब ने मेवाड़ का ध्वंस करने के लिए प्रस्थान कर दिया। इस बार उसने पूरी तैयारी से आक्रमण किया था।

औरंगजेब के साथ अजमेर में अकबर का मेल हुआ। पिता और पुत्र अपनी सेनाएं लेकर उदयपुर की ओर बढ़े। दोबारी में पहुंचकर औरंगजेब ने अकबर को उसी मार्ग से पचास हजार सैनिक लेकर आगे बढ़ने की आज्ञा दी और उन्होंने उदयपुर-सागर-सरोवर के किनारे अपनी छावनी डाली। औरंगजेब की छावनी कई मील में पड़ी थी।

शाहजादा अकबर उदयपुर में प्रवेश करने को आगे बढ़ गया। उसे किसी ने नहीं रोका। उसने राज-प्रासाद, उपवन तथा सरोवरों को देखा। उसे कहीं कोई व्यक्ति दिखाई नही दिया। सब ओर सुनसान था। अकबर ने वहीं अपनी छावनी डाल दी। उसने समझा कि उसकी सेना के भय से सब लोग भाग गए हैं। रात्रि को छावनी में नाच-रंग होने लगा। उसी समय कुमार जयसिंह उन पर टूट पड़े। तीस-पैंतीस हजार मुगल सैनिक युद्ध में समाप्त हो गए। शाहजादा गुजरात की ओर भाग गया। वह इतना भयभीत हुआ कि उसे अपनी सुधि न रही।

शाहआलम दक्षिण से सेना लेकर अहमदाबाद का चक्कर काटकर पर्वत-माला के पश्चिम में आ गया था। वहां गणराव नामक पहाड़ी थी। उसने उसी राह से उत्तर कांकरौली के पास, सरोवर और राजप्रसाद के पास, पहुंचकर देखा कि आगे मार्ग नहीं था। वह आगे न बढ़ सका।

औरंगजेब की बंगाल की सेना बरसात में आगे न बढ़ सकी। मार्ग की बरसाती नदियों ने उसका रास्ता रोक दिया था।

बादशाह के साथ उनकी 'जोधपुरी', 'उदयपुरी' और अन्य बेगमें, जेबुन्निसा और निर्मलकुमारी भी आई थी। दिल्ली के राजमहलों जैसे उनके डेरे पृथक्-पृथक् लगे हुए थे.। छावनी में बादशाह का वही ठाट था जो दिल्ली में रहता था।

औरंगजेब जोधपुरी के डेरे में बातचीत कर रहे थे। निर्मलकुमारी भी वहीं बैठी थी। वह निर्मल को 'निर्मली बेगम' कहते थे। बादशाह ने निर्मल से कहा, 'बेगम! तुम हमारी हो या राजपूतों की ?'

निर्मल ने हाथ जोड़कर कहा, 'दुनियां के बादशाह दुनिया का विचार करते हैं, इस बात का भी विचार वही करें। वह स्वयं सोचकर देखें कि मैं किसकी हूं।'

'मेरे विचार से तुम राजपूतों की ही हो, क्योंकि राजपूत तुम्हारा पति है। तुम राजपूत महारानी की सखी हो। इसलिए तुम राजपूतों की ही हो। मेरी बात गलत तो नहीं है निर्मली बेगम ?' औरंगजेब ने लालच भरी दृष्टि से निर्मलकुमारी की ओर देखकर कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जहांपनाह ! क्या यह विचार ठीक है ? मैं राजपूत की कन्या हूं। जोधपुरी बेगम भी वही हैं। आपकी दादी और परदादी भी वही थीं । क्या वे मुगल बादशाहों की हितैषी नहीं थीं ?' निर्मल बोली।

'वे मुगल बादशाहों की बेगमें थीं। तुम राजपूत की स्त्री हो।'

'मैं आलमगीर बादशाह की निर्मली बेगम भी तो हूं।'

'तुम चंचलकुमारी की सखी हो।'

'जोधपुरी बेगम की भी वहीं हूं।'

'तब तुम हमारी हो ?' औरंगजेब बोला।

'आप जैसा समझें।' निर्मलकुमारी ने कहा।

'मैं तुम्हें एक काम सौंपना चाहता हूं। इसमें मेरा लाभ है और राजसिंह का अहित। इसे तुम कर सकती हो।'

'काम जाने बिना मैं कुछ कह नहीं सकती। मैं देवता और ब्राह्मण का अनिष्ट नहीं कर सकूंगी।' निर्मल बोली।

'वह मैं तुम्हें करने को नहीं कहूंगा। मैं उदयपुर पर अधिकार करूंगा, परन्तु चंचलकुमारी को प्राप्त करने में संदेह है। क्या तुम इस काम में मेरी सहायता करोगी?' औरंगजेब बोला।

'मैं आपको वचन देती हुं कि यदि आप उदयपुर पर अधिकार कर लेंगे तो मैं चंचलकुमारी को आपकी सेवा में ले आऊंगी।'

'मैं इस बात पर विश्वास करता हूं। तुम जानती हो मैं विश्वासघाती को टुकड़े-टुकड़े कराके कुत्ते को खिला सकता हूं।'

'आप क्या नहीं कर सकते हैं ? मैं शपथ से कहती हूं आपको धोखा न होगा। मुझे इतना सन्देह अवश्य है कि नगर पर आपका अधिकार होने पर उन्हें जीवित पा सकूंगी या नहीं।'

'वह बादशाह की बेगम होगी।' औरंगजेब बोला।

निर्मल कुछ कहना चाहती थी कि तभी खोजा ने अन्दर आकर कहा, 'पेशकार साहब दरबार में हाजिर हैं। वह एक जरूरी अर्जी पेश करना चाहते हैं। शाहजादा अकबर का समाचार आया है।'

औरंगजेब घबराकर दरबार में चले गए। औरंगजेब को सूचना मिली कि अकबर की बीस हजार-मुगल-सेना मारी गई। जो बची थी वह न जाने किधर भाग गई। औरंगजेब ने उसी समय छावनी उठने की आज्ञा दी।

शाहजादा अकबर का समाचार रंगमहल में पहुंचा तो उसे सुनकर निर्मलकुमारी बहुत प्रसन्न हुई। उसके हर्ष का पारावार न रहा।

औरंगजेब ने निर्मलकुमारी को बुलाया। बादशाह बोले, 'हम लोग डेरे उखाड़कर लड़ाई पर जा रहे हैं। क्या तुम अब उदयपुर जाना चाहती. हो ?'

'नहीं, मैं अभी सेना के ही साथ रहूंगी। मैं जहां उचित समझूंगी चली जाऊंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल ने कहा।

औरंगजेब दुःखी होकर बोले, 'तुम क्यों चली जाओगी ?'

'शहंशाह के हुक्म से।'

औरंगजेब प्रसन्न होकर बोले, 'अगर मैं न जाने दूं तो क्या तुम हमेशा मेरे रंगमहल में रहने हो राजी हो ?'

निर्मलकुमारी हाथ जोड़कर बोली, 'मेरे पति हैं।'

'अगर तुम इस्लाम-धर्म कबूल कर लो और उसे पति को तलाक दे दो तो उदयपुर से बढ़कर इज्जत हासिल कर सकती हो।'

निर्मल हंसकर बोली, 'यह न होगा जहांपनाह !'

'क्यों न होगा ? और भी तो राजपूत लड़कियां मुगलों के यहां आई हैं।' औरंगजेब बोला।

'वे अपने पतियों को छोड़कर नहीं आईं।' निर्मल बोली।

'यदि तुम्हारा पति न होता तो तुम आतीं।'

'ऐसा क्यों कहते हैं अब ?' निर्मल ने कहा।

'यह बात कहते भी लज्जा लगती है। मैंने यह बात कभी किसी से नहीं कही। मैंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया। केवल तुमसे प्रेम किया है। यदि तुम कहतीं कि पति के न होने पर तुम मेरी बेगम होतीं तो मेरे दिल को राहत मिलती।'

निर्मल ने औरंगजेब की बात का विश्वास किया। निर्मल ने औरंगजेब के लिए कुछ दुःखी होकर कहा, 'जहांपनाह ! इस बांदी ने वह क्या काम किया है, जिससे आपका प्रेम प्राप्त कर सकी ?'

'यह मैं नहीं कहता कि तुम सुन्दर हो, सही, परन्तु अब मेरी आयु सुन्दरता पर ललचाने वाली नहीं है। तुम सुन्दरी होने पर भी उदयपुरी जैसी सुन्दर नहीं हो। मैंने तुम्हारे अलावा अन्य किसी से सच्ची बातें नहीं सुनीं। तुम्हारी बुद्धि, चतुराई और साहस को देखकर मैं तुम्हें अपनी उप-बेगम समझ बैठा हूं। आलमगीर सिवाय तुम्हारे कभी किसी पर आसक्त नहीं हुआ।' औरंगजेब बोला।

'शहंशाह ! मुझसे एक बार चंचलकुमारी ने पूछा था कि तुम किससे विवाह करना चाहती हो ? मैंने उनसे कहा था 'आलमगीर से।' उन्होंने पूछा, 'क्यों ?' मैंने कहा, 'बचपन में मैंने एक बाघ पाला था। बाघ को वश में रखने में मुझे आनन्द आता था। बादशाह को भी वश में करने में मुझे आनन्द मिलेगा।' मेरा दुर्भाग्य रहा कि अविवाहित अवस्था में आपसे मेरी भेंट नहीं हुई। मैंने जिस दरिद्र को अपना पति बनाया है, अब मैं उसी से सुखी हूं। अब मुझे विदा दीजिए।'

'दुनिया का बादशाह होने पर भी कोई खुश नहीं होता। मैंने केवल तुमसे प्रेम किया, किन्तु तुम्हें पाया नहीं। तुमसे प्रेम किया है, इसलिए तुम्हें रोकूंगा भी नहीं। मैं वहीं करूंगा, जिसमें तुम सुखी हो। तुम जाओ, मुझे याद रखना। यदि कभी मुझसे तुम्हारा कोई उपकार हो सके, तो मुझे सूचना देना,' औरंगजेब ने कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल ने सलाम करके कहा, 'मेरी केवल एक ही भिक्षा है। जब मैं दोनों पक्षों के मंगल के लिए संधि की बात करूं, तो मेरी बात पर ध्यान दीजिएगा। मैं दोनों के हित की बात कहूंगी।'

'इस बात का विचार उसी समय होगा।'

निर्मल ने औरंगजेब को अपना कबूतर देकर कहा, 'इसे आप रखें। जब इस दासी को आप याद करें तो इसे उड़ा दें। इसके द्वारा अपना निवेदन मैं आप पर प्रकट करूंगी। अभी मैं सेना के साथ हूं। जब मेरी विदाई का समय होगा तब बेगम साहिबा मुझे विदा कर देंगी।'

औरंगजेब सेना के संचालन में लग गए, परन्तु उनके मन में निर्मल बसी थी। वह उसे भुला नहीं सकते थे।

20

दूसरे दिन प्रातःकाल बादशाह की सेना ने कूच किया। उनके मार्ग में एकाएक बाधा उपस्थित हुई। अकबर जिस राह पर गया था, औरंगजेब भी उसी राह पर जा रहे थे। उनकी इच्छा थी कि यदि जयसिंह की सेना मिले तो वह उसे समाप्त कर दें और उदयपुर में प्रवेश करें, परन्तु पहाड़ी पर पहुंचने से पहले उन्होंने देखा कि राजसिंह ऊपर पहाड़ पर उनकी प्रतीक्षा में बैठे थे। उनकी सेना औरंगजेब की बाट जोह रही थी।

मुगलों ने देखा कि राजसिंह के हाथों उनका सर्वनाश निश्चित था। मुगल सेना जिस मार्ग पर चल रही थी, उस मार्ग से राजसिंह बगल में आ जाते थे। वह महासंकट का स्थान था। उन पर मुगल-सेना सीधा आक्रमण नहीं कर सकती थी।

आगे का मार्ग देखकर आगे वाला सरदार बोला, 'जिस मुगल ने मुझे यह रास्ता दिखाया, उसे मैंने पहाड़ पर भेज दिया है। यदि उसे राजपूत सेना दिखाई देगी तो वह मुझे संकेत करेगा।'

'क्या वह हमारा सैनिक है ?'

'जी नहीं सौदागर है। वह उदयपुर में माल बेचने आया है।'

'तब उसी राह पर सेना को आगे बढ़ाओ।' बादशाह बोले।

यह देखकर राजसिंह पर्वत से उतरकर मुगल-सेना पर टूट पड़े। मुगल-सेना दो टुकड़ों में बंट गई।

युद्ध नहीं हुआ। राजपूतों ने बिना युद्ध किए ही सब मुगल सैनिकों को बन्दी बना लिया। उनकी सब बेगमें राजसिंह के हाथों में आ गई।

माणिकलाल राजसिंह के साथ थे। माणिकलाल ने कहा, 'महाराज ! आज्ञा हो तो इन बिल्लियों को उदयपुर भेज दूं।'

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजसिंह हंसकर बोले, 'इतना दूध-दही उदयपुर में कहां है ?'

उसी समय एक हाथी पर से निर्मलकुमारी ने राजसिंह और माणिकलाल दोनों को हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजसिंह ने माणिकलाल से पूछा, 'यह कौन है ? यह तो हिन्दू बेगम जान पड़ती है।'

माणिकलाल बोले, 'महाराज ! यह तो दासी है, बेगम नहीं ?' यह कहकर माणिकलाल ने निर्मल को अपने पास बुलाकर पूछा, 'तुम कौन-सी बेगम हो ?'

निर्मल आंखें मटकाकर बोली, 'मैं निर्मली बेगम हूं।'

'मैं जानता हूं कि तुम बेगम नहीं हो, परन्तु तुम्हारा यह वेश कैसा है ? माणिकलाल ने पूछा।

'पहले मेरा हुक्म मानो। व्यर्थ बातें अभी रहने दो।'

'महाराज ! बेगम साहिबा की धमकी तो देखिए।'

मेरा हुक्म है कि उदयपुरी बेगम को, जो सामने के हाथी पर तशरीफ रखती हैं, मेरे हुजूर में हाजिर करो।'

माणिकलाल ने तुरन्त उदयपुरी बेगम को हाथी से उतरने की आज्ञा दी। उदयपुरी रोती हुई उतरी। माणिकलाल ने एक पालकी हाथी के पास भेज दी। उसमें उदयपुरी बिठाई गई।

'क्या तुम जेबुन्निसा को भी पहचानती हो ? माणिकलाल ने निर्मल से पूछा।

'पहचानती क्यों नहीं हूं ? वह मेरी बेटी है। वह सामने के हाथी पर बैठी है। उसे भी उतरवा लो।'

माणिकलाल ने उसे भी पालकी में बिठा लिया।

उदयपुरी और जेबुन्निसा निर्मलकुमारी के साथ उदयपुर में चंचलकुमारी के पास भेज दी गई।

21

औरंगजेब की सेना और आगे न बढ़ सकी। राजसिंह ने मार्ग बन्द करा दिया था। वह बीच में फंस गई थी।

राजसिंह माणिकलाल से बोले, 'मैं उस मुगल से बहुत सन्तुष्ट हूं। उसको मेरे पास लाओ।'

माणिकलाल ने मुबारक को बुलाया। राजसिंह ने मुबारक की प्रशंसा में कहा, 'यदि तुम मुगल सौदागर बनकर मुगल-सेना को गुफा में ले जाते तो आज बहुत आदमियों की हत्या हो जाती।'

मुबारक बोला, 'महाराज ! जो आदमी सबके सामने मर चुका, जिसे कब्र दी जा चुकी, उसे कौन पहचानता ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरा कार्य सिद्ध हो गया। तुम जो पुरस्कार मांगो, मैं दूंगा।'

'महाराज ! बेअदबी क्षमा हो। मैंने मुगल होकर मुगलों को सर्वनाश कराया है। मैंने बादशाह का नमक खाकर नमकहरामी की है। मैं मृत्यु से भी अधिक कष्ट पा रहा हूं। मुझे कोई पुरस्कार नहीं चाहिए। अब मेरी जीने से इच्छा नहीं है।'

'यदि इस कार्य से तुम्हें इतना कष्ट हुआ, तो ऐसा क्यों किया ?'

मुबारक माणिक की ओर संकेत करके बोला, 'इन्होंने मुझे दुबारा जन्म दिया है, इन्हीं के कहने पर मैंने यह काम किया है। मेरे न होन से यह काम सिद्ध न होता, क्योंकि मुगल हिन्दू पर विश्वास न करते। अब मैं जीना नहीं चाहता। मुझे आप बादशाह के पास भेज दें।'

राजसिंह बोले, 'मैं कल तुम्हें मुगल-सेना के पास भेज दूंगा, परन्तु मैं जानना चाहता हूं कि औरंगजेब ने तुम्हें क्यों मरवाया था ?'

'यह बात महाराज के सामने कहने योग्य नहीं है।'

'माणिकलाल के सामने।'

'उनसे मैं कह चुका हूं।'

'तुम एक दिन और ठहरो।'

माणिकलाल ने मुबारक को एकान्त से ले जाकर पूछा, 'यदि आपकी मरने की ही इच्छा है तो शाहजादी को आपने क्यों पकड़वाया ?'

'मुझसे भूल हुई। अब मैं शाहजादी को लेकर क्या करूंगा ? जिसने प्रेम के बदले मृत्यु के हवाले किया, उससे क्या बदला लूं ? मैंने अब मरने का ही निश्चय किया है।'

'मेरी एक बार उसे देखने की इच्छा है। एक बार देखना चाहता हूं कि मुझे देखकर क्या कहती है ?'

'इसका मतलब है कि आप भी उस पर अनुरक्त हैं ?'

'मैं केवल एक बार देखना चाहता हूं।'

इधर यह काण्ड चल रहा था और उधर औरंगजेब गुफा में परेशान थे। उनकी सारी सेना गुफा में घुस गई थी।

मुगल-सेना का भोजन राजपूतों ने लूट लिया था। उनके घोड़ों को घास तक भी न मिली थी। भूख से सभी अधमरे-से हो गये थे। मुगल-सेना नष्ट हो रही थी। उसकी दशा बहुत खराब हो गई थी।

मुगल-सेना ने रात्रि बड़ी कठिनाई से काटी। प्रातःकाल औरंगजेब ने उसे कूच की आज्ञा दी। भूख और प्यास से सभी लोग बेहाल थे। सेना गुफा के मुहाने पर पहुंची तो देखा, सर्वनाश की तैयारी थी। मुहाना बन्द था। रात्रि को राजपूतों ने असंख्य बड़े-बड़े वृक्ष काटकर गुफा के मुहाने पर लगा दिये थे। कहीं से बाहर निकलने का मार्ग नहीं था।

राह साफ करने वालों का दल इस सैन्य के विपरीत गति से आगे बढ़ने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे रह गया था। औरंगजेब ने उसे आगे आने की आज्ञा दी। परन्तु उसमें देरी की सम्भावना थी। अतः औरंगजेब ने पैदल सैनिकों को आज्ञा दी कि वे पेड़ों को एक किनारे फेंक दें। कार्य आरम्भ किया ही था कि उन पर पत्थरों की वर्षा आरम्भ हुई। औरंगजेब भयभीत हो उठे। उनके समक्ष सर्वनाश का दृश्य उपस्थित हो गया। पहाड़ों पर हजारों राजपूत खड़े थे। औरंगजेब की प्रगति रुक गई। उनके सैनिक कुछ भी न कर सके।

औरंगजेब ने सेना को पीछे लौटने की आज्ञा दी। सेना भूख से निढाल थी। सेना लौटकर जब गुफा के दूसरे मुहाने पर पहुंची, जहां से उसने उसमें प्रवेश किया था, तो वहां और भी भयंकर स्थिति पैदा हो चुकी थी। मृत्यु सेना को निगलने के लिए वहां तैयार खड़ी थी। वह रास्ता भी पेड़ों से बन्द था और निकलने का कोई मार्ग नहीं था। राजपूत उधर भी पहाड़ों पर कतार बांधे खड़े थे। राजसिंह की तोपों से गोले बरसने लगे। मुगल-सेना गुफा में घुस गई। बादशाह ने निराश होकर अपना सिर जमीन पर पटका। इससे बड़ा अपमान उन्होंने जीवन में पहले कभी सहन नहीं किया था।

उन्होंने निराश होकर निर्मलकुमारी का दिया हुआ कबूतर आकाश में उड़ाया और संधि करने का निश्चय किया।

22

निर्मलकुमारी ने उदयपुरी बेगम और जेबुन्निसा को उपयुक्त स्थान पर पहुंचाकर महारानी चंचलकुमारी के पास जाकर प्रणाम किया। चंचलकुमारी ने पहले उदयपुरी बेगम को बुलाया। उदयपुरी का स्वागत करने के लिए वह स्वयं उठीं। उदयपुरी चंचलकुमारी के सौजन्य को देखकर समझी कि वह भय से सौजन्य दिखा रही थी। वह बोली, 'तुम लोगों को मौत का भय नहीं है ?'

चंचलकुमारी मुस्कराकर बोलीं, 'हम लोग मृत्यु से नहीं डरते।'

उदयपुरी ने घृणापूर्वक कहा, 'बादशाह तुम्हें डराना सिखा देंगे। उदयपुर की ईंट-से-ईंट बजा दी जाएगी।'

'बेगम साहिबा, आप भूल कर रही हैं। उदयपुरी में आज जो ज्वाला सुलगी है उसमें बादशाह स्वयं जलकर भस्म हो जाएंगे।'

चंचलकुमारी ने बेगम के साथ जैसा सौजन्य प्रकट किया, बेगम यदि उसी के अनुरूप व्यवहार करतीं तो शायद उन्हें अपमानित न होना पड़ता, परन्तु उन्होंने चंचलकुमारी को अपमानित करना चाहा। उन्हें उसका फल भोगना पड़ा। तम्बाकू भरने की बात सामने आने पर उदयपुरी का बदन पसीना-पसीना हो गया। फिर भी वह बोली, 'बादशाह की बेगम तम्बाकू नहीं भरती हैं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इस समय तुम मेरी बांदी हो, बादशाह की बेगम नहीं। तुम्हें तम्बाकू भरना ही होगा।' चंचलकुमारी ने कड़ककर कहा।

उदयपुरी रोकर बोली, 'तुम्हारी इतनी हिम्मत। बादशाह की बेगम को तम्बाकू भरने को कहती हो। तुम्हें इसका नतीजा भुगतना होगा। मैं तुम्हारी बादशाह से शिकायत करूंगी।'

'तुम्हारे बादशाह को महाराणा की चिलम भरनी होगी। उन्हें भी चिलमें भरना सिखा देना। आज तुम भी सीख लो चिलम भरना।'

चंचल ने दासियों को आज्ञा दी, 'इनसे चिलम भरवाओ।'

दासी ने उदयपुरी से कहा, 'चिलम उठाओ जी।'

उदयपुरी न उठी तो दासी उनका हाथ पकड़कर खींचने लगी। अपमान के भय से बेगम ने चिलम उठा ली।

उदयपुरी बेगम को चंचलकुमारी की चिलम भरनी पड़ी।

जेबुन्निसा को जब उदयपुरी के द्वारा चंचलकुमारी की चिलम भरने की सूचना मिली तो वह अपने विषय में चिंतित हुई। उसे भी चंचलकुमारी के पास ले जाया गया।

चंचलकुमारी ने आदरपूर्वक उसे उसके योग्य आसन पर बिठाया और बहुत-सी बातें कीं। जेबुन्निसा ने सौजन्य के साथ उत्तर दिया। ऐसी बात किसी ने नहीं उठाई जिससे विद्वेष प्रकट हो। अंत में चंचलकुमारी ने उनके लिए उपयुक्त प्रबंध की आज्ञा दी, परंतु जेबुन्निसा उठी नहीं। वह बोली, 'महारानीजी ! मैं यहां किसलिए लाई गई हूं ? क्या मैं जान सकती हूं ?'

'क्या यह बात आपसे नहीं कही गई ? किसी ज्योतिषी के कहने से आपको यहां लाया गया है। आपको कोई कष्ट न पहुंचेगा। आज रात्रि को आप कोई स्वप्न देखेंगी। वह स्वप्न कल मुझे बताना।'

जेबुन्निसा वहां से विदा हो गई।

जेबुन्निसा दिन भर की थकी थी, इसलिए उसे नींद आ गई। जेबुन्निसा ने स्वप्न में मुबारक को देखा। उसने आंखें खोली तो देखा सामने मुबारक खड़ा था। जेबुन्निसा ने चीखकर आंखें बंद कर लीं और वह अचेत हो गई।

दूसरे दिन जब जेबुन्निसा उठी तो उसका हृदय जल रहा था।

जेबुन्निसा ने अनिच्छा से कपड़े बदले और जलपान किया। पहिले वह उदयपुरी बेगम से मिलने गई। उसने जाकर देखा उदयपुरी ईसा की तस्वीर लिए बैठी थीं। वैसे उदयपुरी ईसा को भूल गई थीं, परंतु आज दुर्दिन में उन्हें उसकी याद आई। जेबुन्निसा ने देखा, उदयपुरी की आंखों में आंसू बह रहे थे। जेबुन्निसा को उदयपुरी इतनी सुंदर पहिले कभी नहीं लगी थीं।

उदयपुरी जेबुन्निसा से अपने दुःख की बातें कहने लगीं। वह बोलीं, 'मैं बांदी थी जेबुन्निसा ! बांदी ही क्यों न रही ?' यह कहकर उदयपुरी ने जेबुन्निसा की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर कहा, 'तुम्हारी यह क्या दशा हो गई ? रात तुम्हें क्या हो गया था ? क्या तुम पर भी अत्याचार किया गया है ? क्या तुम्हारे साथ भी बुरा व्यवहार हुआ है?'

'यह सब कुछ खुदा ने किया है।'

'वही तो सब करते हैं। क्या मैं सुन सकती हूं कि क्या हुआ ?'

'अभी मैं वह बात जबान पर नहीं ला सकती। मरते समय कहूंगी।' जेबुन्निसा बोली।

'ईसा इन राजपूतों को सजा देंगे।' उदयपुरी ने कहा।

'राजपूतों का इसमें कोई दोष नहीं है।' यह कहकर जेबुन्निसा चुप हो गई। उदयपुरी भी कुछ न बोली। फिर जेबुन्निसा ने चंचलकुमारी से मिलने की आज्ञा मांगी।

'क्यों क्या उसने तुम्हें बुलाया है ?' उदयपुरी ने पूछा।

'नहीं, ? मुझे खुद ही जाना है।' जेबुन्निसा ने कहा।

'तुम बादशाह की लड़की हो, उससे मुलाकात न करो।'

'मैं अपनी आवश्यकता से जा रही हूं।'

'उससे पूछना कि वह कितनी अशरफियां लेकर हमें छोड़ेगी।'

'पूछूंगी।' कहकर जेबुन्निसा चंचलकुमारी के पास गई। चंचलकुमारी ने आदरपूर्वक पूछा, 'अच्छी नींद आई ?'

'आपकी आज्ञा-पालन करने में नींद नहीं आई।'

'क्या कोई स्वप्न देखा था तुमने ?'

'स्वप्न तो नहीं, हां इन आंखों ने कुछ देखा अवश्य था।'

'अच्छा या बुरा ?'

'भला या बुरा मैं नहीं कह सकती। मैं आप से एक बात कहूं।'

'कहिए क्या कहना चाहती हैं आप ?'

'मैं उसे एक बार फिर देखना चाहती हूं।'

'मैं ज्योतिषी के पास दिन में आदमी भेजूंगी।'

'क्या अब नहीं भेज सकतीं आप ?' जेबुन्निसा बोली।

'इतनी जल्दी क्या है शाहजादी ?'

'आप इसी समय उसे दिखा सकें तो मैं आपकी बांदी हो जाऊं।'

'आश्चर्य की बात है शाहजादी ! ऐसी क्या चीज है उसमें ?'

जेबुन्निसा की आंखों से आंसू गिरने लगे। चंचलकुमारी को दया आ गई। वह बोली, 'मैं इस पर विचार करूंगी।'

जेबुन्निसा हिन्दू-मुसलमान का भेद भूलकर चंचलकुमारी के पास जा खड़ी हुई। उसने चंचलकुमारी के चरणों को अपने आंसुओं से भिगो दिया। वह बोली, 'मेरी प्राण-रक्षा करो महारानी !'

चंचलकुमारी ने उसे ऊपर उठाया। वह बोलीं, 'शाहजादी ! आप जैसे कल द्वार खोलकर सोई थीं, वैसे ही आज भी सोयें। आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब जेबुन्निसा चली गई तो उदयपुरी ने चंचलकुमारी से भेंट करने की आज्ञा मांगी। भेंट के समय उदयपुरी ने चंचलकुमारी से पूछा कि कितनी अशरफियां मिलने पर चंचलकुमारी उन्हें मुक्त कर देंगी।

चंचलकुमारी बोलीं, 'यदि बादशाह सलामत अपनी सब मस्जिदें तुड़वा दें, मयूर सिंहासन को उदयपुर भेज दें और निश्चित रूप से हमें मालगुजारी देना स्वीकार करें, तो मैं आपको छोड़ सकती हूं।'

उदयपुरी क्रोधित होकर बोलीं, 'गंवार जमींदारिन ! तेरा इतना साहस !' यह कहकर उदयपुरी बेगम उठकर चलने लगीं।

चंचलकुमारी हंसकर बोलीं, 'बिना मेरी आज्ञा के तुम उठकर कैसे चल दीं ? क्या भूल गई कि तुम इस समय मेरी बांदी हो ?' उन्होंने एक दासी को आज्ञा दी, 'मेरी नई बांदी को राणा की रानियों के पास ले जाकर इनका परिचय देना कि यह दाराशिकोह की खरीदी हुई वह बांदी है जिसे औरंगजेब ने अपने हरम में डाल लिया है।'

उदयपुरी रोती हुई दासी के साथ चली गई। उसका राणा राजसिंह के महल में इसी रूप में परिचय कराया गया। उदयपुरी रो-रोकर बेहाल हो गई।

23

हवा ने जेबुन्निसा के कमरे में प्रवेश कर वहां की सब बत्तियों को बुझा दिया। जेबुन्निसा भयभीत हो उठी, परंतु फिर उसने सोचा कि वह डरे क्यों ? अभी-अभी वह मृत्यु की बात सोच रही थी। जो मृत्यु चाहे, वह भयभीत क्यों हो ? कल मैंने एक मृतक व्यक्ति को देखा था। अब लगता है कि मैं स्वयं ही मृत्यु-लोक में जा रही हूं।

जेबुन्निसा पलंग पर बैठी थी। उसे एक चींवटी ने काट लिया। जेबुन्निसा के बदन में कुछ जलन-सी हुई। वह अपने मन में सोचने लगी कि चींवटी के काटने से वह छटपटा उठी। वह चींवटी का काटना भी सहन न कर सकी और उसने अपने प्राणों से भी प्रिय व्यक्ति को सांप से काटे जाने के लिए भेज दिया। 'हा वह सांप ...मुबारक !' उसके मुख से निकल गया।

एकांत में मर्मभेदी चिंता के अंदर डूबने पर मन की बातें उभरकर मुख पर आ जाती हैं। उसी समय किसी ने कहा, 'सांप या मुबारक !'

'क्या मुबारक को प्राप्त करने पर भी तुम प्राण दोगी ?'

'कौन !' जेबुन्निसा उठ बैठी। 'मैंने किसका स्वर सुना ? जो व्यक्ति जन्नत को चला गया, क्या उसका भी स्वर सुनाई दे सकता है ? तुम जन्नत से कैसे आए मुबारक? कल तुम मुझे दिखाई दिए थे। आज तुम्हारा मैंने स्वर सुना। तुम मृतक हो या जीवित? क्या तुम मेरे पलंग पर आकर नहीं बैठ सकते ? एक बार फिर बोलो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या तुम दिल से चाहती हो कि मैं तुम्हारे पास आकर बैठूं ?'

जेबुन्निसा गिड़गिड़ाकर बोली, 'मैं तुमसे कुछ कहूंगी। मैंने जो कभी तुमसे नहीं कहा, वह बात आज कहना चाहती हूं। मैं दिल से कह रही हूं कि तुम मेरे पास आकर बैठो।'

मुबारक जेबुन्निसा के पलंग पर आकर बैठ गया। जेबुन्निसा की बांह से उसकी बांह छू गई। जेबुन्निसा ने मुबारक का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसने कहा, 'मुबारक ! अब मैं तुम्हें न छोडूंगी। मुझे क्षमा कर दो। मैं पगली हो गई हूं। मेरा मस्तिष्क ठीक नहीं है।'

मुबारक बोला, 'मैं जीवित हूं जेबुन ! एक राजपूत ने मुझे बचा लिया था। उसी के साथ मैं यहां चला आया था।'

जेबुन्निसा ने मुबारक का हाथ नहीं छोड़ा। उसकी आंख के आंसुओं ने मुबारक के पैर भिगो दिए। मुबारक ने उसका हाथ पकड़कर उठाया, परन्तु जेबुन्निसा उठी नहीं। वह बोली, 'मुझे क्षमा कर दो मुबारक !'

'क्षमा न करता तो तुम्हारे पास आता ही क्यों जेबुन ?'

'यदि आप आये हो, और क्षमा किया है तो मुझसे शादी करो। शादी के पश्चात् यदि इच्छा हो तो मुझे सांप से कटवा देना। मैं शपथ लेती हूं कि अब मैं दिल्ली लौटकर न जाऊंगी। मैं तुम्हारे साथ रहूंगी।'

मुबारक सांप के काटे जाने और दरिया को भूल गए। उस समय केवल जेबुन्निसा का रूप उनकी आंखों में बसा था। जेबुन्निसा की वाणी उनके कानों में गूंज रही थी। मुबारक बोले, 'क्या तुम इस गरीब को पति के रूप में पाकर प्रसन्न होगी ?'

जेबुन्निसा आंखों में आंसू भरकर बोली, 'मैं बहुत प्रसन्न हूंगी मुबारक ! मैं बहुत प्रसन्न हूंगी।'

मुबारक बोला, 'तब मेरे साथ आओ।'

मुबारक बत्ती जलाकर बाहर जा खड़े हुए। जेबुन्निसा और मुबारक सिंहद्वार तक पैदल गए। फिर मुबारक ने घोड़े पर चढ़कर जेबुन्निसा को पालकी पर सवार कराया और उसे अपने साथ लेकर आगे बढ़ गया। उदयपुर में एक छोटी-सी मस्जिद थी। मुबारक जेबुन्निसा को उस मस्जिद में ले गए। मुल्ला ने मुबारक और जेबुन्निसा की शरियत के मुताबिक शादी कराई। सब कार्य विधिवत सम्पन्न हुआ। उस समय माणिकलाल भी वहां उपस्थित थे।

मुबारक ने कहा, 'अब तुम्हें जहां से लाया हूं वहीं पहुंचा देता हूं। अभी तुम कैद में हो। आशा है शीघ्र छूट जाओगी।'

मुबारक ने जेबुन्निसा को फिर उसी स्थान पर पहुंचा दिया जहां से उसे वह लाया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

23

माणिकलाल महाराणा से हाथ जोड़कर बोले, 'महाराज ! इस सेवक को दूसरे युद्ध-क्षेत्र में भेज दें।'

'क्यों यहां क्या हुआ ?' राणा ने पूछा।

'यहां अब कोई काम शेष नहीं रहा है। केवल भूखे मुगलों के सूखे मुंह देखने और उनके आर्तनाद सुनने का कार्य शेष रह गया है। यह कार्य तो कोई भी कर सकता है ? मैं सोच रहा हूं कि इतने मनुष्य, हाथी, घोड़े, ऊंट इस गुफा में सड़ जाएंगे तो दुर्गन्धि से उदयपुर में भी कोई न बचेगा।'

'तब क्या मुगल-सेना को भूखों न मरने देना चाहिए ?'

'युद्ध में लाखों सैनिकों को मरते देखकर तनिक भी दुःख नहीं होता, परन्तु इस प्रकार एक आदमी के मरने से भी दुःख होता है।'

'तब क्या किया जाए ?' महाराणा ने पूछा।

'महाराज ! मैं इतनी बुद्धि नहीं रखता कि इस विषय में परामर्श दे सकूं। मेरी राय में तो सन्धि करने का यही समय है।'

सन्ध्या को राजसभा में सेनापति और राजमन्त्री उपस्थित हुए। राजसिंह ने सबकी राय मांगी कि उन्हें इस समय क्या करना चाहिए ? क्या उन्हें संधि कर लेनी चाहिए?

अनेकों विचार सामने आए, परंतु अंत में सबने राणा की बात मान ली और सन्धि की बात निश्चित हो गई। सबने यही सोचा कि इस समय औरंगजेब दबकर सन्धि करेगा।

एक पत्र लिखा गया, जिसमें लिखा कि यदि बादशाह अपनी सेना लौटा दें और मेवाड़ में गौ-हत्या और देवालयों को तोड़ना बन्द कर दें और जजिया-कर न मांगा जाए तो हम गुफा का रास्ता खोल सकते हैं।

पत्र माणिकलाल को देकर सभा भंग हुई। सन्धि-प्रस्ताव औरंगजेब के पास ले जाने का कार्य माणिकलाल को सौंपा गया।

सब चले गए, परन्तु माणिकलाल वहीं रुके रहे। वह महाराणा से बोले, 'मुबारक के पुरस्कार की स्मृति महाराणा को कराता हूं। उसे पुरस्कार मिलना चाहिए।'

'वह क्या चाहता है ?' महाराणा ने पूछा।

'वह बादशाह की कन्या जेबुन्निसा को चाहता है।'

'यदि उसे बादशाह के पास न भेजा गया तो संधि रुक जाएगी।'

'कल रात्रि में शाहजादी से मुबारक की शादी हो गई है।'

'यह बात बादशाह से शाहजादी कहेगी तो बात समाप्त हो जाएगी।'

'दोनों के सिर उड़ा दिये जाएंगे।'

'क्यों ?' महाराणा ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'शाहजादी शाहजादे से ही शादी कर सकती है। जेबुन्निसा ने एक सैनिक से शादी करके बादशाह के कुल को कलंक लगाया है। राजमहल की प्रथा के अनुसार उसे विष-पान करना होगा और मुबारक को सूली पर चढ़ाया जाएगा।'

'मैं इसमें क्या कर सकता हूं ?' महाराणा ने पूछा।

'आप बादशाह पर दबाव डाल सकते हैं कि यदि वह अपनी कन्या और दामाद को क्षमा न करेंगे तो यह सन्धि सम्भव न होगी।'

'मैं इसके लिए बादशाह को पृथक् से एक पत्र लिख देता हूं। तुम उसे भी इसी के साथ ले जाना।'

राणाराजसिंह ने एक और पत्र लिखकर माणिकलाल को दिया। माणिकलाल दोनों पत्र लेकर उदयपुर गए और निर्मल से सब समाचार कहा तो निर्मल ने भी बादशाह को इस विषय में एक पत्र लिखा। निर्मल का पत्र इस प्रकार था, 'बांदी के असंख्य सलाम। हुजूर ने बांदी को जो आज्ञा दी, उसे बांदी ने पूरा किया। अब मेरी प्रार्थना है कि आप सन्धि कर लें।' वह पत्र भी निर्मल ने माणिकलाल को दे दिया।

निर्मल ने जेबुन्निसा से सब बातें कीं। वह सन्तुष्ट हुईं परन्तु माणिकलाल ने मुबारक को सतर्क रहने को कहा, 'बादशाह के पास लौट जाने पर एक बार वह आपको क्षमा कर देंगे, परन्तु उसके बाद का मुझे भरोसा नहीं।'

माणिकलाल ने निर्मलकुमारी से कबूतर लेकर वे पत्र उसके पैरों में बांध दिये। कबूतर उड़ा और बादशाह के पास जा पहुंचा। औरंगजेब ने पत्रों को पढ़कर उसका उत्तर लिखा।

कबूतर को औरंगजेब का उत्तर लाने में देर न लगी। राणा राजसिंह ने जो चाहा वह औरंगजेब ने स्वीकार कर लिया, परन्तु विवादग्रस्त प्रश्न चंचलकुमारी का रहा।

राजसिंह बोले, 'उनकी यह बात मानने से उनको यहीं पर कब्र देना मैं उत्तम समझूंगा।'

लाचार होकर औरंगजेब को वह मोह भी छोड़ना पड़ा। उन्होंने संधि पत्र पर लिख दिया, 'स्वीकार।'

जेबुन्निसा और मुबारक के लिए उन्होंने क्षमा स्वीकार की, परन्तु एक शर्त रखी कि शादी की बात कभी किसी पर प्रकट न होगी। बादशाह ऐसा उपाय कर देंगे, जिसमें कन्या को अपने पति से मिलने में कोई बाधा न हो।

राजसिंह ने सन्धि-पत्र पाते ही मुगल-सेना को मुक्त करने की आज्ञा दे दी। राजपूतों ने कन्दरा के मुख से वृक्ष हटवा दिए। मुगल-सेना मुक्त हो गई।

उदयपुरी बेगम को जब मुक्ति का संदेश मिला तो वह चंचलकुमारी से बोली, 'मैं तुम्हारी जीभ के टुकड़े-टुकड़े करा दूंगी। तुम्हारी क्या मजाल जो बादशाह की बेगम को रोक सको ? आखिर छोड़ना ही पड़ा ना। तूने मेरा अपमान किया है। मैं तुझे इसका आनन्द चखाऊंगी। मैं उदयपुर का नाम मिटाकर ही दम लूंगी।'

यह सुनकर चंचलकुमारी बोलीं, 'सुना है कि महाराणा ने बादशाह पर दया करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम लोगों को छोड़ दिया है, परन्तु तुम तनिक-सी मीठी बात बोलना भी नहीं जानतीं, इसलिए तुम न छोड़ी जाओगी। तुम बांदियों के साथ जाकर मेरे लिए तम्बाकू भरकर लाओ।'

जेबुन्निसा बोलीं, 'यह आपने क्या कहा महारानीजी ?'

'आप जा सकती हैं। इन्हें मैं अभी नहीं जाने दूंगी।'

जेबुन्निसा ने बहुत प्रार्थना की, परंतु चंचलकुमारी दृढ़ रहीं। वह बोलीं, 'यह एक बार तम्बाकू और भर दें, तो जा सकेंगी।'

लाचार होकर उदयपुरी ने चंचलकुमारी के लिए तम्बाकू भरा, तब चंचलकुमारी ने उन्हें मुक्त किया। चंचलकुमारी ने उदयपुरी बेगम का मद चूर्ण कर दिया।

24

निर्मलकुमारी और चंचलकुमारी परस्पर बातें कर रही थीं। निर्मल बोली, 'राजकुमारी जी ! आप अब अपने पिता को आने के लिए क्यों नहीं लिखतीं ?'

'उन्हें मैं क्या लिख सकती हूं निर्मल ?'

'पिता के ऊपर क्रोध और अभिमान नहीं करना चाहिए।'

'उनके पत्र को स्मरण कर छाती फटती है निर्मल ! अब क्या लिखने का साहस करूं !' चंचलकुमारी बोलीं।

निर्मल पत्र लिखने लगी, 'जब मुगल बादशाह राजपूतों के हाथों से पराजित होकर राजपूताने से निकले जा रहे हैं तब अपनी संतान के लिए आपकी क्या आज्ञा है ? मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हूं।'

पत्र का उत्तर आया, 'मैं दो हजार सेना लेकर उदयपुर आ रहा हूं। महाराणा से कहना, द्वार खुला रखें।'

इस उत्तर का अर्थ चंचल और निर्मल न समझ सकीं। अंत में दोनों ने निश्चय किया कि जब उन्होंने सेना की बात लिखी है तो राणा को बताना आवश्यक है। निर्मलकुमारी ने वह पत्र विचारार्थ माणिकलाल के पास भेज दिया।

राणा ने भी महाराज विक्रमसिंह सोलंकी को एक पत्र लिखा था। उसके उत्तर में भी उन्होंने इसी प्रकार का उत्तर दिया था।

राणा भी उस पत्र का अर्थ लगाने में असमर्थ रहे। वह समझ नहीं पा रहे थे कि उन्होंने यह क्यों लिखा। उन्होंने सोचा, दो हजार सैनिक लाकर विक्रमसिंह उनकी क्या हानि कर सकते हैं, परन्तु फिर भी उन्हें सतर्क रहना चाहिए।

कन्द्रा से मुक्त होकर औरंगजेब ने अपना दरबार लगाया। वह मुबारक से बोले, 'मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया, क्योंकि अब तुम मेरे दामाद हो गए हो। मैंने तुम्हें दो हजारी मनसबदार बनाया। तुम दिलेरखां के साथ युद्ध में जाओ।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुबारक ने विनीत भाव से बादशाह से विदा होकर दिलेरखां की छावनी की ओर जाने का निश्चय किया। उन्हें ज्ञात नहीं था कि इस प्रकार औरंगजेब ने उनकी मृत्यु का षड्यन्त्र रचा था।

औरंगजेब ने एक दूत द्वारा दिलेरखां को आदेश भिजवाया, 'मुबारक को तुम्हारे पास भेज रहा हूं। यह जीवित न लौटे।'

औरंगजेब से विदा होकर मुबारक सीधा जेबुन्निसा के पास गया। जेबुन्निसा उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी।

मुबारक जेबुन्निसा से बड़े दुःख के साथ बोले, 'मैंने तुम्हें फिर प्राप्त किया, परन्तु सुख मैं एक दिन भी न भोगने पाया।'

'क्यों, अब क्या बाधा है ?' जेबुन्निसा ने पूछा।

'मैं युद्ध में जा रहा हूं। युद्ध में मरना-जीना दोनों ही सम्भव हैं, परन्तु मेरे लिए मृत्यु ही निश्चित है।'

जेबुन्निसा आंखों में आंसू भरकर बोली, 'तुम लड़ाई में जीतकर बहुत शीघ्र लौटोगे। तुम न आओगे तो मैं प्राण दे दूंगी।'

जेबुन्निसा बोली, 'इस अन्धकार में डेरे के पर्दे के पीछे कोई छिपा है ? तुम्हारे लिए मेरा मन भयभीत हो रहा है।'

मुबारक ने पर्दे के पीछे जाकर देखा। वहां सचमुच एक आदमी बैठा था। मुबारक ने उसे पकड़ा। वह उसे खींचकर खेमे के द्वार पर ले आया। उसने देखा वह एक स्त्री थी। वह अपना मुंह कपड़े से छिपाए हुए थी। उसने अपना मुंह नहीं खोला। मुबारक उसे अन्दर ले आये।

जेबुन्निसा ने पूछा, 'तुम कौन हो स्त्री ? तुम यहां क्यों छिपी हुई थीं ? तुम अपने मुंह से कपड़ा हटाओ।'

उस स्त्री ने अपने मुंह का कपड़ा हटा दिया। दोनों ने विस्मय के साथ देखा कि वह दरियाबीवी थी।

जेबुन्निसा और मुबारक पर वज्र-सा गिर पड़ा। तीनों में किसी ने एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। कुछ देर पश्चात् मुबारक बोला, 'या अल्लाह ! मुझे अब अवश्य मरना होगा।'

मुबारक दरिया से बोला, 'मेरे साथ आओ।' उसने दीन भाव से जेबुन्निसा से विदा ली।

राणा राजसिंह को समाचार मिल चुका था कि विक्रमसिंह रूपनगर से दो हजार सेना लेकर आ गए हैं।

विक्रमसिंह सोलंकी को राजसिंह ने सादर आसन प्रदान किया।

राजसिंह बोले, 'आज आपने सोलंकी जैसा कार्य सम्पन्न किया है।

दुष्ट मुगल मेरे हाथों नष्ट हो रहे थे। सन्धि करके उन्होंने छुटकारा पा लिया। अब वे मुक्त होकर कहते हैं कि सन्धि कुछ नहीं है। वे फिर युद्ध कर रहे हैं। दिलेरखां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकबर के साथ युद्ध करने आ रहा है। आप बहुत अच्छे समय पर आए हैं। उसे मार्ग में ही समाप्त करना होगा।'

विक्रमसिंह सोलंकी ने उसी समय प्रसन्न होकर कहा, 'आप उसकी चिन्ता न करें। मैं अपने सैनिकों के साथ प्रस्थान कर रहा हूं।'

गोपीनाथ राठौर, विक्रमसिंह सोलंकी और माणिकलाल दिलेरखां को परास्त करने के लिए चल पड़े।

दिलेरखां अकबर की दुर्दशा का स्मरण करके बहुत सावधानी से आगे बढ़ रहा था।

माणिकलाल दिलेरखां की सेना की प्रगति रुकी देखकर उस पर पीछे से टूट पड़े। दिलेरखां उनसे जमकर युद्ध कर रहा था। उसी समय विक्रमसिंह सोलंकी दो हजार सवारों को लेकर उसके सामने से जा भिड़े। दो ओर से आक्रमण होने पर मुगल सेना न ठहर सकी।

धीरे-धीरे मुबारक के सब साथी मारे गये। यह देखकर माणिकलाल बोले, 'ठहरो, इन्हें मारो नहीं, यह वीर पुरुष हैं।'

मुबारक बोला, 'मैं युद्ध में पीछे नहीं हटूंगा।'

माणिकलाल मुबारक से बोला, 'खां साहब ! अब युद्ध करने से क्या लाभ है? दिलेरखां मैदान से भाग गया।'

'मैं मृत्यु चाहता हूं। अब जीने की इच्छा नहीं रही।'

'तब तुमने विवाह क्यों किया था ?' माणिकलाल ने पूछा।

उसी समय एक बन्दूक का स्वर पहाड़ी पर से गूंज उठा। मुबारक सिर पर गोली खाकर भूमि पर गिर पड़े। मुबारक का प्राणान्त हो गया। गोली उनके मस्तक पर लगी थी। माणिकलाल ने देखा पहाड़ के ऊपर एक स्त्री बन्दूक लिए खड़ी थी। वह दरियाबीवी थी। वह हंसती हुई एक ओर को भाग गई। फिर दरियाबीवी को किसी ने कहीं नहीं देखा।

युद्ध में विजय प्राप्त कर विक्रमसिंह सोलंकी छावनी को लौटे। राणा राजसिंह ने उनका सादर आलिंगन किया। विक्रमसिंह सोलंकी बोले, 'एक बात अब और शेष है। आज मैं चंचलकुमारी को आशीर्वाद देकर उसका विवाह-संस्कार सम्पन्न करना चाहता हूं।'

'पहले उदयपुर चलिए।' राणा राजसिंह बोले।

विक्रमसिंह सोलंकी राणा राजसिंह के साथ उदयपुर आये। उसी रात्रि को राणा राजसिंह ने चंचलकुमारी का पाणिग्रहण किया।

औरंगजेब और आजम ने भागकर चित्तौड़ में शरण ली, परन्तु रक्षा वहां भी न हो सकी। सुबलदास नामक एक राजपूत ने चित्तौड़ और अजमेर के बीच अपनी सेना बिछा दी थी। औरंगजेब को अजमेर की ओर भागकर अपनी प्राण-रक्षा करनी पड़ी।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

आनन्दमठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द मठ

1

एक दिन सन् 1778 में पद्चिह्न गांव में भयंकर गर्मी थी। गांव में मनुष्य दिखाई नहीं देते थे। बाजार में दुकानें, सड़कें, गलियां, गृह, ऊंची-नीची अट्टालिकाएं, सब नीरव प्रतीत होते थे। कोई दिखाई नहीं दे रहा था। कोई भिक्षुक तक दिखाई नहीं पड़ रहा था। राजपथ पर भीड़ नहीं थी। सरोवर पर, गृह-द्वारों पर मनुष्य दिखाई नहीं पड़ते थे। वृक्षों पर पक्षी नहीं थे। एक गगन-चुम्बी अट्टालिका की गुम्बदें दिखाई दे रही थीं। परन्तु उसके भी द्वार बन्द थे। उस घर में अंधेरा छाया हुआ था। एक कमरे में एक स्त्री-पुरुष चिन्तानिमग्न बैठे थे। उनके समक्ष अकाल का भीषण रूप खड़ा थ।।

1774 में फसल खराब हो गई थी। सन् 1775 में अकाल पड़ा। शासकों ने फिर भी कौड़ी-कौड़ी लगान वसूल किया। जनता ने भूखों मरकर मालगुजारी अदा की थी। 1775 में बरसात अच्छी हुई। लोगों ने समझा कि देवता प्रसन्न हो गए। मठ-मन्दिरों में गाना-बाजाना आरंभ हुआ। किसान की पत्नी ने अपने पति से पायजेब बनवाने को कहा, परन्तु आश्विन में फिर देवता रुष्ट हो गए। क्वार-कार्तिक में एक बूंद न पड़ी। खेती सूखकर राख हो गई। पहले वर्ष एक समय उपवास हुआ था, इस वर्ष पूरे उपवास की नौबत आ गई। दो-दो संध्या उपवास होने लगा। मालगुजारी के अफसर रजाखां को यह समय अपना क्रोध प्रदर्शित करने का अच्छा मिला। उसने दस प्रतिशत मालगुजारी और बढ़ा दी। बंगाल भर में कुहराम मच गया। जनता हा-हाकार कर उठी।

लोगों ने भीख मांगनी शुरू की, परन्तु भिक्षा देता कौन ? उपवास प्रारम्भ हो गया। जनता रोगग्रस्त होने लगी। गांव उजड़ गए। जानवर भी भूखों मरने लगे। अनाज के अभाव में लोगों ने पेड़ों के पत्ते खाए। छोटी जाति के लोगों ने कुत्ते, बिल्ली चूहे, खाए। जो भागे, वे विदेशों में जाकर भूखों मरे। जो नहीं भागे, वे वहीं तबाह होने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वर, हैजा, क्षय, चेचक, फैले। चेचक का बड़ा प्रकोप रहा। लोग बाग महामारी से मरने लगे। कोई किसी की चिकित्सा नहीं कर सका। मरने पर शवों को कोई उठाने वाला नहीं था। शव सड़कर बदबू करने लगे। जिन घरों में चेचक फैली वहां के रहने वाले रोगी को छोड़कर भाग गए।

महेन्द्रसिंह पदूचिह्न के धनाढ्य व्यक्ति थे। परन्तु इस दुर्भिक्ष ने अमीर-गरीब सबको बराबर कर दिया था। उनके आत्मीय-जन, दास, उन्हें छोड़ गए थे। कोई मर गया, कोई भाग गया। घर में केवल उनकी स्त्री, वह और गोद की एक कन्या रह गए थे।

उनकी पत्नी कल्याणी ने गौशाला में जाकर गऊ दूही। फिर दूध गर्म करके कन्या को पिलाया और गऊ को घास डाल दी। वह लौटकर घर आई, तो महेन्द्रसिंह बोले, 'ऐसे कितने दिन चलेगा कल्याणी ?'

'अधिक दिन तो नहीं, परन्तु जितने दिन चले, उतने दिन तक तो चलाते ही रहेंगे। फिर तुम शहर चले जाना।'

'यदि शहर ही चलना है तो तुम्हें इतना कष्ट क्यो दूं ? चलो हम अभी चलते हैं शहर।'

फिर दोनों बहुत देर तक परस्पर शहर जाने के विषय में बातें करते रहे।

'शहर जाने से क्या कुछ विशेष लाभ होगा ?'

'हो सकता है शहर की दशा भी यहां जैसी ही हो।'

'मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ता जाने से प्राण बच सकते हैं। इस स्थान को त्याग देना ही उचित है।'

'हमारे चले जान पर चोर इस घर की क्या दशा करेंगे ?'

'जानते हो यदि वे आज लूटने आएं तो क्या हम इसकी रक्षा कर सकते हैं ? प्राण ही न रहे तो धन कौन भोगेगा ? चलो इसे बन्द करके शहर चलें। यदि जीवित बचे तो फिर आकर इसमें बस जाएंगे।

'क्या तुम पैदल चल सकोगी ? पालकी के कहार सब मर गए। गाड़ी है, परन्तु बैल नहीं रहे।'

'तुम इसकी चिन्ता न करो। मैं पैदल चल सकती हूं।'

कल्याणी ने सोचा कि वह राह में मर भी जाएगी तो ये दोनों बच जाएंगे।

दूसरे दिन सवेरे कुछ धन साथ लेकर, घर का ताला बन्द कर, गऊओं को मुक्त कर, कन्या को गोद में ले दोनों राजधानी की ओर चल पड़े। महेन्द्र बोले, 'मार्ग बड़ा भयानक है। डाकू और लुटेरों का भय है। खाली हाथ जाना उचित नहीं है।' यह सोचकर महेन्द्र ने अपनी बन्दूक उठा ली।

यह देखर कल्याणी बोली, 'आपने बन्दूक ली है तो मैं भी अस्त्र ले लूं।' यह कहकर वह घर की ओर बढ़ी।

'तुम हथियार लोगी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणी एक विष की डिबिया उठाकर बोली, 'यही मेरा अस्त्र है।'

जेठ का महीना था और भयंकर गर्मी से पृथ्वी जल रही थी। आग की लपटें दौड़ रही थीं। आकाश गर्म तवे के समान जल रहा था। कल्याणी के शरीर से पसीना बहने लगा। कभी पीपल के नीचे, कभी अन्य वृक्ष के नीचे, छाया देखकर दोनों प्राणी कुछ देर तक बैठ जाते थे। तालाबों का मैला जल पीकर वे आगे बढ़ रहे थे। लड़की महेन्द्र की गोद में थी। महेन्द्र को कल्याणी के साहस पर आश्चर्य हुआ। वह पास के एक जलाशय पर गए। एक वस्त्र को जल से तर करके महेन्द्र ने कन्या का चेहरा पौंछा। उसने आंखें खोलकर महेन्द्र की ओर देखा।

दोनों को भूख लगी थी। बच्चे की भूख उन्हें और भी अधिक खल रही थी। इसलिए वहां अधिक न ठहरकर वे फिर चल पड़े। संध्या से कुछ पहले वे एक बस्ती में पहुंचे। महेन्द्र को आशा थी कि वहां कुछ मिलेगा, परन्तु उन्होंने देखा कि बस्ती में एक भी मनुष्य नहीं था। बड़े-बड़े घर खाली पड़े थे। इधर-उधर देखकर वह एक घर में गए। फिर बाहर निकलकर वह जोर से पुकारे, परन्तु कोई उत्तर न आया। तब वह कल्याणी से बोले, 'तुम जरा यहीं ठहरों, मैं देखूं शायद कहीं कोई गाय दिखाई दे जाए।' यह कहकर महेन्द्र एक मिट्टी का पात्र लेकर घर से बाहर निकल पड़े।

महेन्द्र के चले जाने पर कल्याणी अकेली बालिका को लिए बैठी रह गई। वह मन में डर रही थी। किसी मनुष्य का शब्द सुनाई नहीं पड़ रहा था। केवल कुत्तों और स्यारों की आवाजें सुन जाती थीं। वह सोचने लगीं, 'उन्हें उसने क्यों जाने दिया?' फिर सोचा, दरवाजे बन्द कर ले, परन्तु दरवाजों पर किवाड़ नहीं थे।

देखते-देखते उसे द्वार पर एक छाया सी दिखाई दी। वह कंकाल कोयले की तरह काला, नग्न दरवाजे पर खड़ा था। कुछ देर बाद उसने अपना हाथ उठाया और किसी को अपने पास बुलाया। कल्याणी प्राण-विहीन-सी हो गई। फिर वैसी ही एक छाया और उसके पास आकर खड़ी हो गई। फिर एक और, एक और...। इसी तरह कितनी ही छायाएं घर में प्रवेश करने लगीं। घर में श्मशान-सा दिखाई देने लगा। वे कल्याणी और उसकी कन्या को घेरकर खड़ी हो गई। कल्याणी मूर्छित हो गई। वे नर-कंकाल कल्याणी और उसकी कन्या को उठाकर घर से बाहर निकले और उन्हें जंगल में ले गए।

कुछ देर पश्चात् महेन्द्र दूध लेकर वहां आए, परन्तु देखा वहां कोई नहीं था। वह कल्याणी का नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगे, परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

2

डाकू जिस वन में कल्याणी को लेकर गए थे, वह बहुत घिनका था। डाकुओं ने कल्याणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसकी कन्या को जमीन पर लिटा दिया। वे उन्हें घेरकर बैठ गए। फिर सोचने लगे कि उनका क्या किया जाए। कल्याणी के आभूषण, अलंकार डाकुओं ने उतार लिए। वे उन्हें आपस में बांटने लगे। एक डाकू बोला, 'हम लोग सोना-चांदी लेकर क्या करेंगे ? भूख से प्राण निकल रहे हैं। आज सवेरे केवल कुछ पत्ते खाए थे।'

सब चिल्लाने लगे, 'भात चाहिए, हम भूख से मर रहे हैं। सोना-चांदी नहीं चाहिए।' दलपति ने उन्हें शान्त करना चाहा, परन्तु कौन सुनता था ? ऊंचे स्वर में बातें हुईं, गाली-गलौज हुई और फिर मार-पीट होने लगी। सब मिलकर दलपति को मारने लगे। दलपति दो-चार आघातों में ही गिरकर मर गया। उन डाकुओं में से एक बोला, 'सियार का मांस हम खा चुके है। भूख से प्राण जा रहे हैं। आओ आज इसी को खाएें।'

सबने मिलकर 'जयकाली' का उच्च नाद किया। 'जयकाली ! आज नर-मांस खाएंगे।' कहकर वे सब खिलखिलाकर हंस पड़े और तालियां बजाकर नाचने लगे। वे दलपति को भूनने के लिए आग जलाने लगे। उसके शव पर सूखी लकड़ियां रखकर आग जला दी, आग की लपटों से चारों ओर प्रकाश फैल गया। उसी समय एक बोला, 'ठहरो यदि नर-मांस की खाकर ही भूख मिटानी है तो इस सूखे नर-कंकाल को न भूनकर, उस लड़की को भूनकर खाया जाए।'

'जो हो भैया ! एक को तो भूनो ! भूख से मर रहे है।' इस पर सबने लोलुप दृष्टि से कन्या की ओर देखा, परन्तु वह स्थान शून्य था। न वहां कन्या थी और न माता। डाकुओं की मारपीट के समय कल्याणी अपनी बच्ची को उठाकर वन में भाग गई थी।

जंगल के अंधकार में कल्याणी को मार्ग मिलना कठिन हो गया। कांटों से बिंधती कल्याणी डाकुओं से बचने के लिए भागी जा रही थी।

बच्ची को भी कांटे लग रहे थे। वह चीखकर रोने लगी। उसका रोना सुनकर डाकू चिल्लाने लगे, परन्तु कल्याणी पगली की तरह भागी जा रही थी। कुछ देर पश्चात् चांद निकला। चांद का प्रकाश फैलाने पर वह और अधीर हो उठी। चन्द्रमा ने आकाश में उगकर अपना प्रकाश फैला दिया। जंगल चांदनी में चमक उठा। तब डाकू और शोर मचाते हुए खोजने लगे। कन्या भी शोर को सुनकर और जोर से चिल्लाने लगी। कल्याणी थककर चूर हो गईं वह भागना छोड़कर वट-वृक्ष के नीचे बैठ गई और उसने भगवान की याद की। थकावट से कल्याणी धीरे-धीरे अचेत हो गई।

वन में एक मठ था। कल्याणी चेतना आने पर उसे देखने लगी। यह देखकर, महापुरुष ने, जो उसके सामने खड़े थे, कहा, 'बेटी ! यह देवताओं की जगह है, डरना नहीं। थोड़ा दूध पिओ, मैं तुमसे बातें करूंगा।'

धीरे-धीरे कल्याणी के हृदय में धैर्य बंधा। उसने उठकर जमीन से मस्तक लगाकर प्रणाम किया। महात्मा ने आशीर्वाद देकर दूसरे कमरे से एक मिट्टी का बर्तन लाकर उसमें दूध गर्म किया। दूध कल्याणी को देकर बोले, 'बेटी ! लो यह दूध कन्या को पिलाओ और स्वयं भी पिओ।' कल्याणी कन्या को दूध पिलाने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा बोले, 'मैं जब तक न आऊं, तुम चिन्ता न करना।' यह कहकर वह कमरे के बाहर चले गए। कुछ देर बाद उन्होंने लौटकर देखा कि कल्याणी ने कन्या को तो दूध पिला दिया, पर स्वयं नहीं पिया। इस पर महात्मा बोले, 'बेटी ! तुमने दूध नहीं पिया। मैं फिर बाहर जाता हूं। जब तक तुम दूध न पिओगी, मैं वापस न आऊंगा।'

कल्याणी हाथ जोड़कर बोली, 'आप दूध पीने की आज्ञा न दें। इसमें एक बाधा है। मैं पी न सकूंगी।'

'क्या बाधा है ? मैं ब्रह्मचारी हूं। तुम मेरी कन्या के समान हो। ऐसी क्या बात है जो तुम मुझसे कह न सको। मैं जब तुम्हें वन से उठा कर यहां लाया था, तो तुम भूखी थीं। तुम दूध न पियोगी, तो कैसे बचोगी ?'

कल्याणी आंखों से अश्रु बहाकर बोली, 'आप देवता है। आपसे अवश्य निवेदन करूंगी। मेरे स्वामी ने अभी तक कुछ नहीं खाया है। उनसे भेंट हुआ बिना मैं भोजन न कर सकूंगी ?'

'तुम्हारे पतिदेव कहां है ?'

कल्याणी बोली, 'यह मुझे ज्ञात नहीं। उनके दूध की खोज में घर से निकलने पर डाकू मुझे उठा लाए थे।' ब्रह्मचारी ने कल्याणी से उसके पति का वृतान्त ज्ञात किया। कल्याणी ने पति का नाम न बताया। परिचय से ब्रह्मचारी समझ गए। उन्होंने पूछा, 'तुम महेन्द्र की पत्नी हो ?'

कल्याणी ने सिर नत कर लिया। ब्रह्मचारी बोले, 'तुम मेरी बात मानो मैं तुम्हारे पति की खोज करता हूं। लेकिन जब तक तुम दूध न पिओगी मैं न जाऊंगा ?'

'क्या थोड़ा जल मिलेगा ?' कल्याणी बोली। ब्रह्मचारी ने जल-कलश दिखा दिया। कल्याणी ने जल की अंजलि महात्मा के चरणों के पास ले जाकर कहा, 'इसमें पद्रेणु डाल दें।'

महात्मा ने उसे अंगूठे से छू दिया। कल्याणी ने उसे पीकर कहा, 'मैंने अमृत-पान कर लिया। अब और कुछ खाने को न कहिए। जब तक मेरे पतिदेव का पता न लगेगा मैं कुछ न खाऊंगी।' ब्रह्मचारी ने संतुष्ट होकर कहा, 'तुम इसी देव-स्थान में रहो, मैं तुम्हारे पति को खोजने जाता हूं।'

3

काफी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा ऊपर आकाश में था। इस मठ के समीप से मुर्शिदाबाद और कलकत्ते को राह जाती थी। मार्ग के किनारे पर एक छोटी पहाड़ी थी। पहाड़ी पर आम के वृक्ष थे। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ी के शिखर पर चढ़ गए। उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्तों की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ी। पहाड़ के नीचे भयानक जंगल था। ऊपर नीचे जंगल, बीच में मार्ग था। ब्रह्मचारी उसी ओर चल पड़े। उन्होंने उस भयानक जंगल में देखा, कुछ आदमी बैठे थे। वे सब लम्बे, काले और सशस्त्र थे। ब्रह्मचारी उनके बीच में जाकर खड़े हो गए। उन्होंने एक पुरुष से पूछा, 'महेन्द्रसिंह की कुछ सूचना मिली?'

'आज सवेरे वह अपनी स्त्री और कन्या के साथ गृह त्यागकर निकले थे। बस्ती में...।'

इतना कहते ही ब्रह्मचारी ने बात काटकर कहा, 'बस्ती में जो घटना हुई है, जानता हूं। ऐसा किसने किया ?'

गांव के किसान थे। वे पेट की ज्वाला से डाकू हो गए हैं। आज-कल कौन डाकू नहीं है ? दरोगा साहब के लिए दो मन चावल ले जा रहा था। आज हमने वही लूटा है।'

'डाकुओं से हमने स्त्री और कन्या को छुड़ा लिया है। उन्हें मठ में बिठा आया हूं। तुम महेन्द्र को खोलकर स्त्री और कन्या को उनके हवाले करो। यहां जीवानन्द का रहना काफी है।'

भवानन्द एक ओर चल पड़े और ब्रह्मचारी दूसरी दिशा में।

उधर महेन्द्र गांव से निराश होकर चल पड़े थे। उन्होंने देखा कि कुछ बैलगड़ियों को घेरकर कुछ सिपाही चले आ रहे थे।

सन् 1773 में बंगाल अंग्रेजों के अधीन नहीं हुआ था। अंग्रेज उस समय बंगाल के दीवान थे। उस समय तक बंगालियों की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर न लिया था।

शासन का भार नवाब मीरजाफर पर था। जहां अंग्रेज कर स्वयं वसूल करते थे, वहां उन्होंने अपनी ओर से कलेक्टर नियुक्त कर दिए थे। मालगुजारी कलकत्ते जाती थी। जनता चाहे भूखों मरे, मालगुजारी देनी पड़ती थी। मालगुजारी फिर भी पूरी वसूल नहीं नहीं होती थी। आज कल डाकुओं का उत्पाद बहुत बढ़ गया था। इसीलिए पचास सशस्त्र सिपाही गाड़ियों के साथ चल रहे थे। उनका अध्यक्ष एक गोरा था। गोरा घोड़े पर था। उन गाड़ियों और सिपाहियों के कारण महेन्द्र का मार्ग रुक गया। वह सड़क के किनारे खड़े हो गए।

एक सिपाही बोला, 'यह डाकू मालूम देता है।' महेन्द्र के हाथ में बन्दूक देखकर उसका विश्वास दृढ़ हो गया। उसने महेन्द्र का गला पकड़ कर कहा, 'साले चोर !' और उसने एक घूंसा जमाकर उनकी बन्दूक छीन ली। महेन्द्र ने घूंसे का उत्तर घूंसे से दिया। घूंसा खाकर सिपाही गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इस पर अन्य सिपाहियों ने आकर महेन्द्र को पकड़ लिया और उन्हें गोरे सेनापति के पास ले गए। महेन्द्र पर अभियोग लगाया गया कि उसने एक सिपाही का खून कर दिया। गोरा साहब बोला, 'इसे पकड़कर शादी कर लो।' सिपाही आश्चर्यचकित रह गए कि उस बन्दूक-धारी डाकू से वे शादी कैसे कर लें ? सिपाहियों ने एक रस्सी लेकर महेन्द्र के हाथ-पैर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांध दिए और उसे गाड़ी पर लाद दिया। महेन्द्र ने सोचा, इतने सिपाहियों से जोर करना व्यर्थ है। स्त्री-कन्या के दुःख में महेन्द्र सोचने लगे, 'अच्छा है, मर जाना ही अच्छा है।'

उधर भवानन्द हरिकीर्तन करते हुए उस बस्ती की ओर चले, जहां महेन्द्र का अपनी पत्नी से बिछोह हुआ था। उन्होंने सोचा कि महेन्द्र का पता वहीं से लगेगा।

भवानन्द आगे बढ़े तो उनकी भी उन धन-रक्षक सिपाहियों से भेंट हुई। भवानंद सिपाहियों की बगल से निकले। सिपाहियों ने भवानन्द को भी एक डाकू ही समझा और उसे पकड़ लिया।

भवानन्द मुस्कुराकर बोले, 'ऐसा क्यों करते हो भाई ?'

'तुम डाकू हो।'

'मैं तो ब्रह्मचारी हूं। डाकू क्या मेरे जैसे होते हैं ?'

'बहुत से साले ब्रह्मचारी भी डकैत होते हैं।' सिपाही भवानन्द को खींच लाए। भवानन्द की आंखों से आग निकलने लगी। वह विनीत भाव से बोले, 'प्रभु ! आज्ञा करो, अब क्या करना होगा ?'

सिपाही बोला, 'लो, अपने सिर पर यह बोझ लादकर चलो।' यह कहकर सिपाही ने भवानन्द के सिर पर एक गठरी रख दी।

दूसरा सिपाही बोला, 'नहीं-नहीं यह भाग जाएगा। इसे भी पहले वाले की तरह बांधकर गाड़ी पर लाद दो।'

भवानन्द को उत्कण्ठा हुई कि पहले किसे बांधा गया था। भवानन्द ने गठरी फेंक दी और पहले सिपाही को एक चांटा लगाया। सिपाहियों ने उन्हें भी बांधकर गाड़ी पर महेन्द्र के पास डाल दिया। भवानन्द पहिचान गए कि वही महेन्द्रसिंह थे।

सिपाही फिर निश्चिन्त होकर आगे बढ़े। गाड़ी का पहिया घूमने लगा। भवानन्द ने धीमे स्वर में कहा, 'महेन्द्रसिंह ! मैं तुम्हें पहिचानता हूं। मैं तुम्हारी सहायता करने आया हूं। मैं कौन हूं, यह अभी तुम्हें जानने की आवश्यकता नहीं है। मैं जो कहता हूं, वह सावधान होकर करो। तुम अपने हाथ के बन्धन गाड़ी के पहिए के ऊपर रखो।'

महेन्द्र ने आश्चर्य से भवानन्द को देखा। उन्होंने भवानन्द के कहे अनुसार कार्य किया। उन्होंने अंधेरे में गाड़ी के पहियों की ओर सरककर अपने हाथ की रस्सी को पहिए से लगा दिया। थोड़ी देर में उनके हाथ के बन्धन कट गए। फिर उसी तरह उन्होंने पैरों के बन्धन काटे। इस प्रकार बंधनमुक्त होकर वह चुपचाप गाड़ी पर लेट गए। भवानन्द ने भी उसी तरह अपने बंधन काट लिए। दोनों चुपचाप गाड़ी पर पड़े रहे।

जिस स्थान पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारों ओर देखा था, उसी मार्ग से इन्हें जाना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचकर सिपाहियों ने देखा कि एक शिलाखण्ड पर एक पुरुष खड़ा था। चांदनी में उस पुरुष को देखकर सिपाही बोला, 'वह देखो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाकू यहां भी खड़ा रहा, भागा नहीं। उसे पकड़कर हवलदार के पास लाने पर भी वह कुछ नहीं बोला।

हवलदार बोला, 'इसके सिर पर गठरी लाद दो।'

सिपाहियों ने एक भारी गठरी उसके सिर पर रख दी। उसी समय पिस्तौल चलने की आवाज आई और हवलदार माथे पर गोली खाकर गिर पड़ा।

'इसी ने हवलदार को मारा है।' कहकर एक सिपाही ने उस आदमी का हाथ पकड़ना चाहा। उसके हाथ में पिस्तौल थी। उसने अपने सिर का बोझ फेंककर उस सिपाही पर आक्रमण किया। सिपाही का माथा फट गया और वह जमीन पर गिर पड़ा। उसी समय, 'हरि ! हरि ! हरि !' कर दो सौ आदमियों ने आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही गोरे की प्रतीक्षा में थे। गोरा तुरन्त गाड़ी के पास पहुंचा और सिपाहियों को चोरों पर आक्रमण करने को कहा। सिपाहियों ने अपनी-अपनी बन्दूकें संभालीं, परन्तु उसी समय साहब की तलवार किसी ने छीन ली। उसने एक ही वार में साहब का सिर उड़ा दिया। साहब घोड़े से गिर पड़े। वह फायर करने का हुक्म न दे सके। लोगों ने देखा कि एक आदमी गाड़ी पर हाथ में नंगी तलवार लिए ललकार रहा था, 'मारो इन सिपाहियों को !' वह 'हरि-हरि !' नाद करता हुआ भवानन्द था।

गोरे को मरा देखकर सरकारी सिपाही निश्चेष्ट हो गए। तेजस्वी डाकुओं ने सिपाहियों को हताहत कर दिया। सरकारी सिपाही भयभीत होकर भाग गए।

वह व्यक्ति जो दल का नेतृत्व कर रहा था, आगे बढ़कर उसने भवानन्द को गले से लगा लिया। भवानन्द बोला, 'भाई जीवानन्द ! तुमने व्रत सार्थक किया !'

जीवानन्द बोला, 'भवानन्द ! तुम्हारा नाम सार्थक हो।'

4

बैलगाड़ी से कूदकर महेन्द्रसिंह ने चाहा कि युद्ध में योग दें, परन्तु युद्ध में संलग्न दल को डाकुओं का दल जानकर वह दूर जा खड़े हुए। उन्होंने सोचा कि डाकुओं का साथ देने से भी दोष में फंसना पड़ेगा। वह एक ओर जा रहे थे कि तभी भवानन्द उनके पास गए।

महेन्द्र ने पूछा, 'महाशय ! आप लोग कौन हैं ?'

'इससे तुम्हारा प्रयोजन ?'

'मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, परन्तु अभी-अभी जा कुछ आप लोगों ने किया, वह सब क्या था ?'

'तुम नहीं जानते वह क्या था ?'

'क्या यह डकैती नहीं थी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हां डकैती ही थी। हमने तुम्हारा कुछ उपकार किया है। और भी कुछ उपकार करने की हमारी इच्छा है।'

'तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है, परन्तु अब तुम क्या उपकार करोगे? डाकुओं द्वारा उपकृत होने से अनुपकृत होना ही अच्छा है।'

भवानन्द बोले, 'तुम हमारा उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यही इच्छा हो तो यही करना। मेरे साथ आओ। मैं तुम्हारी स्त्री और कन्या से तुम्हारी भेंट करा देता हूं।'

महेन्द्र बोले, 'क्या कहा ?'

भवानन्द ने उत्तर न देकर पैर आगे बढ़ाया।

महेन्द्र उसके साथ-साथ आगे बढ़े। वह सोच रहे थे कि वे सब कैसे डाकू हैं? दोनों जंगल पार करते चले जा रहे थे और दोनों मौन थे।

भवानन्द ने गाना आरम्भ किया !

'वन्दे मातरम् !
सुजलां, सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां, मातरम्।'

महेन्द्र गीत सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। उनकी समझ में कुछ भी न आया, 'सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्यश्यामलाम्, माता कौन है ? उन्होंने पूछा, 'यह माता कौन है ?'

कोई उत्तर न देकर भवानन्द ने आगे बढ़कर गाना आरम्भ किया।

'शुभ्रज्योत्सनांम् पुलकित यामिनीम्
फुल्लुकुसुमित द्रुम-दल शोभिनीम,
सुहासिनी, सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां, वरदां, मातरम्।'

महेन्द्र ने पूछा, 'यह तो देश है हमारा, मां कैसे है यह ?'

भवानन्द बोले, 'हम लोग दूसरी मां को नहीं मानते। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' हमारी माता जन्मभूमि ही है, हमारे मां, पिता, भाई कुछ नहीं है, स्त्री नहीं, घर नहीं, मकान नहीं, हमारी अगर कोई है, तो यही सुजलां, सुफलां, मलयजसमीरण—शीतलाम, शस्यश्यामला है।'

अब महेन्द्र ने समझकर कहा, 'तो फिर गाओ।'

भवानन्द फिर गाने लगे।

'वन्दे मातरम्।
सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम,
फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं, सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदां, वरदां मारतम्।।
सप्तकोटि कण्ठ कल-कल निनाद, कराले,
द्विसप्तकोटि भुजै घृत खर करवाले,
अवला केनो मां ! एतो बेले !
बहुबलधारिणीम्, नमामितारिणीम्,
रिपुदल वारिणीम्, मातरम्।।
तुमी विद्या, तुमी धर्म,
तुमी हरि, तुमी कर्म,
त्वं हि प्राण शरीरे।
बाहुले तुमी मां-शक्ति,
हृदये तुमी मां-भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गढ़ी मन्दिरे-मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा, दशप्रहर धारिणीम्।
कमला कमल-दल बिहारिणीं,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां,
नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां, मातरम्
वन्दे मातरम्।।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषियाम्
धरणीं भरणीं मातरम्।।'

महेन्द्र ने देखा भवानन्द गाते-गाते रोने लगे। महेन्द्र ने विस्मय के साथ पूछा, 'तुम लोग कौन हो ?'

'हम माता की संतान हैं।'

'कौन-सी माता की ?'

'भारत माता की।'

'तो क्या माता की संतान डकैती करके मां की पूजा करती है ? यह कैसी मातृ-भक्ति है ?'

'हम लोग डकैती नहीं करते।'

'अभी-अभी तो गाड़ी लूटी है आप लोगों ने।'

'यह क्या डकैती थी ? हमने रुपए लूटे हैं ?'

'नवाब के ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इन रुपयों पर उसका क्या अधिकार है ? ये उसे क्यों मिलने चाहिएं ?'

'यह नवाब का भाग है।'

'जो नवाब राज्य की चिन्ता न करे, जनता की सेवा न करे, वह नवाब कैसे हैं ? उसका क्या अधिकार है इस रुपए पर ?'

'लगता है तुम्हें किसी दिन फौज की तोप से उड़ा दिया जाएगा।'

'मैं बहुत से सिपाहियों को देख चुका हूं। आज भी देखे हैं। आगे भी देखे जाएंगे।'

'अभी अच्छी तरह नहीं देखा है। एक दिन देखोगे।'

'मैं सब देख चुका हूं। आदमी एक ही बार मरता है, दो बार नहीं।'

'जान बूझकर मरने से क्या लाभ ?'

'महेन्द्रसिंह ! मैं सोच रहा था कि तुम साधारण मनुष्यों जैसे न होगे, परन्तु देख रहा हूं कि तुम भी वैसे ही निकले। घी-दूध खा-पीकर भी दम नहीं। सांप मिट्टी पर रेंगकर चलता है। उससे बढ़कर कौन नीच होगा। उसके बदन पर पैर रख देने से वह भी डंक मारता है। तुम लोगों का धैर्य क्या कभी नष्ट न होगा ? किस देश के मनुष्य भोजन की जगह घास खा रहे हैं ? किस देश की जनता लता और पत्ती खाती है ? किस देश के मनुष्य सियार, कुत्ते और मुर्दे खाते हैं ? हर देश का राजा प्रजा के भरण-पोषण का ध्यान रखता है। हमारे नवाब साहब को हमारा क्या ध्यान है ? धर्म गया, जाति गई, मान गया, अब प्राणों पर आ बनी है। इन नवाबों को भगाए बिना चैन नहीं मिल सकती।'

'तुम इन्हें कैसे भगाओगे ?'

'हम इन्हें मारकर भगाएंगे।'

'अकेले भगाओगे ? थप्पड़ मारकर भगाओगे ?'

भवानन्द ने फिर गाना आरम्भ किया।

'सप्तकोटि कण्ठ कल-कल निनाद कराले,
द्विसप्त कोटि भुजै घृत खर करवाले,
अबला केनो मां बोले।'

'परन्तु तुम तो अकेले हो।'

'क्यों, अभी क्या दो सौ आदमियों को नहीं देख चुके हो तुम ?'

'क्या वे सब सन्तान हैं ?'

'सब सन्तान हैं।'

'और कितने लोग हैं इस विचारधारा के ?'

'हजारों हैं। हमारी संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है ?'

'तुम बहुत होगा तो दस-बीस हजार हो जाओगे, परन्तु इतने से ही क्या मुसलमान भाग जाएंगे ?'

'प्लासी में अंग्रेजों की फौज कितनी थी ?'

'क्या अंग्रेज और बंगाली बराबर हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अधिक हैं। बदन में अधिक बल होने से क्या गोला तेज चलता है ?'

'तब अंग्रेजों और मुसलमानों में इतना अन्तर क्यों है ?'

'अंग्रेज संकट पड़ने पर भी नहीं भागता और मुसलमान पसीना आते ही भाग खड़ा होता है। अंग्रेज जो करना चाहते हैं वह करके छोड़ते हैं। उनमें लगन होती है और मुसलमान आरामतलब हैं। अंग्रेज साहसी होते हैं। मुसलमान एक गोले के छूटते ही भाग जाते हैं।'

'क्या तुम लोगों में ये सब गुण हैं ?'

'गुण पेड़ पर नहीं उगते। अभ्यास से हर आदमी इन गुणों को प्राप्त कर सकता है।'

'तुम लोग क्या अभ्यास करते हो ?'

'देखते नहीं, हम लोग संन्यासी हैं ? यह संन्यास हमारा अभ्यास है। अभ्यास पूरा होने पर हम लोग गृहस्थ हो जाएंगे। हम लोगों के स्त्री बच्चे सब कुछ हैं।'

'तुम लोग उन सबको त्यागकर मुक्त हो सके हो ?'

'सन्तान झूठ नहीं बोलते। हम तुम्हारे सामने मिथ्या बड़ाई नहीं करेंगे। हम माया से परे नहीं हैं ? जो ऐसा कहे, वह मिथ्यावादी है। हम माया से परे नहीं हुए हैं, परन्तु हम लोग व्रत की रक्षा करते हैं। तुम सन्तान बनोगे ?'

'बिना स्त्री और कन्या का पता पाए और उनसे मिले मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'चलो, तुम अपनी स्त्री और कन्या से भेंट करो।'

दोनों आगे बढ़े। भवानन्द ने फिर वन्देमातरम् गाना आरम्भ किया। महेन्द्र का गला भी सुरीला था। संगीत में कुछ अभ्यास और रुचि भी थी। वह भी भवानन्द के साथ गाने लगे। उन्होंने देखा कि गाते-गाते उनकी आंखों में जल आने लगा। महेन्द्र बोले, 'यदि स्त्री और कन्या का त्याग न करना पड़े, तो इस व्रत से मुझे भी दीक्षित कर लो।'

'जो यह व्रत लेता है, उसे स्त्री और कन्या का त्याग करना पड़ता है। तुम यदि यह व्रत लेना चाहोगे तो स्त्री और कन्या से भेंट न करने पाओगे। उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त प्रबन्ध कर दिया जाएगा। तुम व्रत की सफलता तक उनसे भेंट न कर सकोगे।'

'मैं यह व्रत ग्रहण नहीं करूंगा।'

5

'आनन्द-मठ' में ब्रह्मचारी सत्यानन्द मृगछाला पर बैठे संध्या कर रहे थे। उनके पास जीवानन्द बैठे थे। तभी महेन्द्र को साथ लिए स्वामी भवानन्द वहां आए। ब्रह्मचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संध्या में तल्लीन रहे। कोई कुछ न बोला। संध्या समाप्त होने पर भवानन्द तथा जीवानन्द ने उनके चरणों में प्रणाम किया। पद-धूलि ग्रहण कर दोनों बैठ गए। फिर सत्यानन्द भवानन्द को संकेत से बाहर बुलाकर ले गए। उन्होंने आपस में कुछ बातें कीं। ब्रह्मचारी महेन्द्र से बोले, 'बेटा ! मैं तुम्हारे दुःख से बहुत दुःखी हूं। प्रभु की कृपा से कल रात तुम्हारी स्त्री और कन्या की किसी तरह रक्षा हुई।' यह कहकर ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का वृत्तांत सुनाया। वह बोले, 'चलो, तुम्हें उनके पास ले चलें।'

ब्रह्मचारी के पीछे-पीछे महेन्द्र उनके साथ देवालय में गए। महेन्द्र ने देखा एक बड़ा कमरा था। उसमें सभी देवताओं की मूर्तियां थीं। ब्रह्मचारी ने गम्भीर वाणी में महेन्द्र से पूछा, 'सब कुछ देख रहे हो ?'

महेन्द्र ने उत्तर दिया, 'देख रहा हूं।'

'विष्णु की गोद में क्या है ?'

'देखा, कौन हैं वह ?'

'यह मां।'

'हम जिसकी सन्तान हैं।'

'कौन है वह ?'

'समय पर पहिचान सकोगे। बोलो, वन्देमातरम् !'

ब्रह्मचारी फिर महेन्द्र को एक दूसरे कमरे में ले गए। वहां जाकर महेन्द्र ने देखा जगद्धात्री की मूर्ति विराजमान थी। महेन्द्र ने पूछा, 'यह कौन हैं ?'

'मां जो वहां थीं।'

'यह कौन हैं ?'

'उन्होंने कुन्जर, केशरी इत्यादि वन के पशुओं को पैरों से कुचलकर पद्मासन ग्रहण किया है। इन्हें प्रणाम करो।'

महेन्द्र ने भक्तिभाव से मातृभूमि को प्रणाम किया। फिर ब्रह्मचारी ने उन्हें एक अंधेरी सुरंग दिखाकर कहा, 'इधर आओ।' ब्रह्मचारी आगे-आगे चले। महेन्द्र भयभीत से पीछे-पीछे चल रहे थे। फिर उन्हें काली की मूर्ति दिखाई दी।

'देखो, अब मां का वह स्वरूप देखो।'

'काली माई।'

'हां, यह कालीदेवी हैं। इसीलिए मग्न हैं। आज देश श्मशान हो रहा है। इसीलिए मां कंकालिनी हैं।' ब्रह्मचारी की आंखों मं आंसू की धारा बहने लगी।

'इनके हाथ में खड्ग-खप्पर क्यों हैं ?'

'हम लोग संतान हैं। मां के हाथ में अभी अस्त्र मात्र दिया है। बोलो वन्देमातरम्!'

'वन्देमातरम्' कहकर महेन्द्र ने काली को प्रणाम किया। ब्रह्मचारी बोले, 'इस राह से आओ।' यह कहकर वे दूसरी सुरंग में चले। सहसा उन लोगों के सामने प्रातःकालीन सूर्य दमक उठा। चारों ओर मधुर-कण्ठ से पक्षी कूज उठे। उनके समक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
माता का नवीन रूप आया।

दोनों के भक्ति-भाव से प्रणाम कर चुकने के बाद भरे हुए गले से महेन्द्र बोले, 'मां की ऐसी मूर्ति कहां देखने को मिलेगी ?'

'जिस दिन मां की सारी सन्तानें एक साथ मां को बुलाएंगी, उसी दिन मां प्रसन्न होंगी।'

'मेरी स्त्री और कन्या कहां हैं ?'

'चलो, देखोगे उन्हें भी, चलो।'

'मैं उन लोगों से एक बार मिलूंगा। उसके बाद उन्हें विदा कर दूंगा।'

'क्यों, विदा क्यों करोगे ?'

'मैं भी यह महामंत्र ग्रहण करूंगा।'

'उन्हें कहां विदा करोगे ?'

'मेरे घर पर कोई नहीं है। उसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। अब और कहां स्थान मिलेगा ?'

'जिस मार्ग से आए हो, उसीसे मन्दिर के बाहर जाओ। मन्दिर के द्वार पर तुम्हें स्त्री और कन्या दिखाई देंगी। कल्याणी अभी तक निराहार है। जहां वे हैं, वहीं भोजन की सामग्री पाओगे। उसे भोजन कराके तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना। अब हम लोगों में से किसी से कुछ देर भेंट न होगी। यदि तुम्हारा मन इधर होगा, तो समय पर मैं तुमसे मिलूंगा।'

उसके बाद ब्रह्मचारी अन्तर्हित हो गए। महेन्द्र ने पूर्वपरिचित मार्ग से लौटकर देखा, मन्दिर में कल्याणी कन्या को लिए बैठी थी।

सत्यानन्द दूसरी सुरंग से एक कोठरी में उतर गए। वहां जीवानन्द और भवानन्द बैठे रुपये गिन रहे थे। सत्यानन्द कमरे में प्रवेश करके बोले, 'जीवानन्द ! महेन्द्र आएगा। उसके आने से सन्तानों का विशेष कल्याण होगा। उसके आने से उसके पूर्वजों का संचित धन मां की सेवा में अर्पित होगा। यहां का काम समाप्त होने पर तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उससे बातें करना। समय देखकर उसे श्री विष्णु-मण्डप में लाना और समय या कुसमय में इन लोगों की रक्षा करना।'

6

अनेक कष्टों के बाद महेन्द्र की कल्याणी से भेंट हुई। कल्याणी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। महेन्द्र भी रोए। रोने-गाने के पश्चात् आंखें पोंछीं, परन्तु फिर भी बार-बार आंसू भर आते थे। आंसू बन्द करने के लिए कल्याणी ने भोजन की बात उठाई। ब्रह्मचारीजी के अनुचर खाना रख गए थे। कल्याणी ने महेन्द्र से भोजन करने के लिए कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भिक्ष के दिनों में भोजन की कमी थी, परन्तु सन्तानों के लिए वह कठिनाई नहीं थी। साधारण मनुष्यों के लिए वह जंगल, जहां वे रहते थे, अगम्य था। उस वन के वृक्षों के फल कोई नहीं पाता था। ब्रह्मचारी के अनुचर बहुत से फल और दूध लाकर रख गए थे। वहां अनेक गौएं थीं। कल्याणी के अनुरोध पर महेन्द्र ने भोजन किया। उसके पश्चात् कल्याणी ने खाया। थोड़ा दूध कन्या को पिलाया और शेष रख दिया। उसके बाद दोनों सो गए। नींद से जागने पर दोनों ने विचार किया, 'अब हमें कहां चलना चाहिए।' कल्याणी बोली, 'घर पर कष्ट समझकर हमने घर छोड़ा। अब देख रही हूं कि घर से अधिक कष्ट बाहर है। चलो, घर ही लौट चलें।' महेन्द्र की भी यही इच्छा हुई। महेन्द्र की इच्छा थी कि कल्याणी को घर पहुंचाकर कोई विश्वासी व्यक्ति वहां नियुक्त कर दें। यह कार्य सम्पन्न करके स्वयं मातृ-सेवा-व्रत ग्रहण करें। वह घर वापस लौटने के प्रस्ताव पर सहमत हो गए। थकावट दूर होने पर दोनों ने कन्या को गोद में लेकर पदचिह्न की ओर यात्रा आरम्भ की।

पदचिह्न जाने के लिए उन्हें कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए, वह यह न जानते थे। उन्होंने समझा था कि जंगल पार करके उन्हें मार्ग मिल जाएगा और पदचिह्न पहुंच जाएंगे, परन्तु वन पार करना कठिन हो गया। वे लोग बहुत देर वन में इधर-उधर चक्कर काटते रहे। वे बार-बार घूम-फिरकर मठ में पहुंच जाते थे। उन्हें जंगल पार करने की राह नहीं मिलती थी। उनकी यह दशा देखकर वैष्णवी वेशधारी हंस रहे थे। महेन्द्र ने उनसे रुष्ट होकर कहा, 'गोस्वामी जी ! खड़े-खड़े हंस क्यों रहे हैं आप ?'

'मैं सोच रहा था कि तुम लोग इस वन में आए कैसे ?'

'जैसे भी हो, आ गए हम लोग।'

'प्रवेश कर सके, तो बाहर क्यों नहीं निकल पा रहे हैं ?'

यह कहकर वैष्णव फिर हंसने लगे।

महेन्द्र रुष्ट स्वर में बोले, 'हंसते हैं तो क्या आप हमें इस वन से बाहर निकाल सकते हैं ?'

वैष्णव बोले, 'मेरे साथ आओ, मैं माग बता दूं तुम्हें। तुम ब्रह्मचारीजी के साथ आए होगे। यहां न कोई आ सकता है और न यहां से बाहर निकल सकता है।'

यह सुनकर महेन्द्र बोले, 'क्या आप भी सन्तान हैं ?'

'हां मैं भी सन्तान हूं, मेरे साथ आओ। तुम्हें राह दिखाने के लिए ही मैं यहां खड़ा हूं।'

'आपका नाम क्या है ?'

'मेरा नाम धीरानन्द स्वामी है।'

धीरानन्द आगे-आगे चले और कल्याणी के साथ महेन्द्र पीछे-पीछे। धीरानन्दजी ने एक दुर्गम मार्ग से उन्हें जंगल से बाहर निकाल दिया और स्वयं जंगल में प्रवेश कर गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दाण्य से बाहर निकलकर चलने पर कुछ दूर तक जंगल उनके मार्ग के एक ओर रहा। जंगल की बगल में ही यह मार्ग था। छोटी-सी नदी कलकल नाद करके बह रही थी। उसका जल बहुत स्वच्छ था, परन्तु देखने पर जंगल की छाया से जल काला दिखाई देता था। नदी के दोनों ओर बड़े-बड़े वृक्ष थे। विभिन्न जाति के पक्षी उन पर कलरव कर रहे थे। उनका कलरव नदी की कल-कल ध्वनि से मिल रहा था। वृक्षों का हरित रंग नदी के जल में दमक रहा था। कल्याणी के मन का रंग भी उसी रंग में मिल गया। कल्याणी तट के एक वृक्ष से लगकर बैठ गई। वह अपने पति से बोली, 'कुछ देर यहीं बैठो।' उसने महेन्द्र की गोद से कन्या को अपनी गोद में ले लिया। कल्याणी अपने पति के हाथों को अपने हाथ में लिए बैठी रही। फिर बोली, 'तुम आज बहुत उदास हो। विपदा से तो उद्धार मिल गया, अब इतने उदास क्यों हो तुम ?'

महेन्द्र एक ठण्डी सांस लेकर बोले, 'मैं अब अपने आपे में नहीं हूं। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आ रहा।'

'क्यों ? ऐसी क्या घटना घट गई ?'

'तुम्हारी खोज में मेरी क्या दशा हुई, वह तुम्हें सुनाता हूं।' यह कहकर महेन्द्र ने अपनी सारी कहानी कल्याणी को सुनाई।

कल्याणी बोली, 'मुझे भी बड़ी विपदा सहन करनी पड़ी। तुम उसे सुनकर क्या करोगे ? इतने दुखों पर भी कैसे नींद आई, मैं कह नहीं सकती। कल रात भी मैं सो गई थी। नींद में मैंने एक स्वप्न देखा। न जाने किस पुण्य-बल से मै एक अपूर्व स्थान पर गई। वहां मिट्टी नहीं थी, केवल प्रकाश था। वहां मनुष्य नहीं थे, केवल कुछ मूर्तियां थीं। वहां शब्द नहीं था, केवल संगीत जैसा नाद सुनाई पड़ता था। बहुत सुगंधि थी वहां। वहां सबसे ऊंचे स्थान पर कोई बैठा था। उसके मस्तक पर सूर्य के जैसा प्रकाश था। उसके चार हाथ थे। उसके दोनों ओर कौन था, मैं पहिचान न सकी, परन्तु कोई स्त्री थी। उसमें इतनी ज्योति इतना रूप, इतना सौरभ था कि मैं उसे देखकर विस्वल हो गई। मैं उधर देख न सकी कि वह कौन थी ? जो चतुर्भुज के समक्ष एक ओर खड़ी थी, वह भी ज्योतिर्मयी थी। वह नारी अति दुर्बल और पीड़ित हो रही थी। पवन ने मुझे घुमाते-फिराते चतुर्भज मूर्ति के सामने ला खड़ी किया। उस स्त्री ने मुझे देखकर कहा, 'वह यही है, जिसके कारण महेन्द्र मेरी गोद में नहीं आ रहा है।'

फिर वंशी जैसा मधुर शब्द सुनाई पड़ा। वह चतुर्भुज का शब्द था। वह बोले, 'तुम अपने पति को छोड़कर मेरे पास चली आओ। यह तुम्हारी मां है। महेन्द्र इनकी सेवा करेगा। तुम यदि पति के पास रहोगी तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा।' मैंने रोकर कहा, 'पति को छोड़कर कैसे चली आऊं ?' उन्होंने कहा, 'मैं स्वामी, पुत्र, माता, पिता और कन्या हूं, मेरे पास आओ !' मैंने क्या उत्तर दिया, मुझे याद नहीं। फिर मेरी नींद खुल गई।' यह कहकर कल्याणी चुप हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेन्द्र स्तंभित से रह गए। वृक्ष पर कोई पक्षी चहक उठा। सामने सरिता कलोल कर रही थी। वन्य-पुष्पों के सौरभ से मन प्रसन्न हो रहा था। दूर नीली पर्वत-श्रेणी दिखाई दे रही थी। दोनों उधर देखते रहे। बहुत देर बाद कल्याणी बोली, 'क्या सोच रहे हो तुम ?'

'मैं सोचता हूं कि क्या करना चाहिए ? क्या यह स्वप्न केवल विभीषिका मात्र था ? चलो, घर चलें। वहां चलकर सोचेंगे कि यह सब क्या था ?'

'जहां देवता तुम्हें जाने को कहते हैं, तुम वहीं जाओ।' यह कहकर कल्याणी ने कन्या को अपने पति की गोद में दे दिया। महेन्द्र ने पुत्री को अपनी गोद में लेकर कहा, 'और तुम ? तुम कहां जाओगी ?'

कल्याणी अपने दोनों हाथों से आंखों को बन्द करके बोली, 'मुझे भी भगवान् ने जहां जाने को कहा है, मैं वहीं जाऊंगी।'

महेन्द्र चौंककर बोले, 'वह कहां ? वहां तुम कैसे जाओगी ?'

कल्याणी ने जहर की डिबिया महेन्द्र को दिखाई।

महेन्द्र भयभीत स्वर में बोले, 'यह क्या ? क्या तुम जहर खाओगी ?'

'मन में तो सोचा था, खा लूंगी, परन्तु....।' कल्याणी चुप हो गई।

महेन्द्र उसके मुंह की ओर देखते रहे। उन्हें निमेष वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। उन्होंने देखा कि कल्याणी ने बात पूरी न कही। वह बोले, 'उसके पश्चात् आगे क्या कह रही थीं, तुम कल्याणी ?'

'मन में यही था कि विष खा लूंगी, परन्तु तुम्हें और सुकुमारी को छोड़कर बैकुण्ठ जाने की इच्छा नहीं होती। मैं मरूंगी नहीं।' यह कहकर कल्याणी ने विष की डिबिया एक ओर रख दी। फिर दोनों भविष्य की बातें करने लगे। बातें करते-करते दोनों अन्यमनस्क हो उठे। सुकुमारी ने विष की डिबिया उठा ली और उसे किसी ने देखा ही नहीं। उसने डिबिया से खेलते-खेलते उसे खोल लिया और जहर की टिकिया बाहर निकलकर गिर पड़ी। बच्ची ने टिकिया को उठाकर मुंह में रख लिया।

सुकुमारी का मुंह चलता देखकर कल्याणी बोली, 'क्या खा लिया ! गजब हो गया !' यह कहते हुए कल्याणी ने कन्या के मुंह में उंगली डाली। महेन्द्र ने देखा विष की डिबिया खाली पड़ी थी। सुकुमारी ने टिकिया को दांतों से दबा लिया था। जहर के कडुए स्वाद से उसका मुंह बिगड़ रहा था। टिकिया दांतों में चिपक गई थी। कल्याणी ने तुरन्त उसे निकालकर एक ओर फेंका। सुकुमारी रो रही थी।

कल्याणी ने तुरन्त बच्ची को नदी-तट पर ले जाकर उसके मुंह में जल डालकर धोया और कातर वाणी में महेन्द्र से पूछा, 'विष इसके हलक के अन्दर तो नहीं उतर गया होगा ?'

महेन्द्र ने कभी देखा नहीं था कि टिकिया पहले कितनी बड़ी थी। उन्होंने टिकिया को उठाकर देखा और बोले, 'मालूम तो होता है कि यह कुछ खा गई है।'

कल्याणी को भी ऐसा ही प्रतीत हुआ। टिकिया हाथ में लेकर वह बहुत देर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे देखती रही। कन्या थोड़ी देर पश्चात् छटपटाने लगी और अचेत हो गई। कल्याणी बोली, 'अब क्या देखते हो ? जिस मार्ग पर भगवा ने बुलाया है, उसी मार्ग पर सुकुमारी चली गई। मुझे भी अब वही मार्ग अपनाना होगा।' यह कहकर कल्याणी ने उस टिकिया को अपने मुंह में डाल लिया और निगल गई।

महेन्द्र दहाड़ मारकर रो उठे। 'यह क्या किया तुमने कल्याणी ? तुम सब मुझे इस प्रकार छोड़कर क्यों चल दिए ?'

कल्याणी उत्तर न देकर पति के चरणों पर अपना मस्तक रखकर बोली, 'प्रभु की इच्छा....मै। चली।'

'कल्याणी यह तुमने क्या किया ? ' कहकर महेन्द्र चिल्लाकर रो पड़े। कल्याणी धीमे स्वर में बोली, 'मैंने उचित ही किया है यह सब। मेरे पीछे तुम मातृभूमि की सेवा से वंचित रह जाते। मैं तुम्हारे मोह से देव-वाक्य का उल्लंघन करने जा रही थी। कन्या ने मुझे मार्ग दिखला दिया। मैं भी जा रही हूं। तुम्हें सब बन्धनों से मुक्त करके जा रही हूं।'

महेन्द्र रोते हुए बोले, 'तुम्हें घर छोड़कर मैं चला आता कल्याणी। कार्य सिद्ध हो जाने पर हम लोग फिर मिल जाते। तुम मेरी सर्वस्व थीं। तुमने यह क्या किया? जिस भुजा के बल पर मैं तलवार पकड़ता, तुमने मेरी वही भुजा काट दी। तुम्हें खोकर मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा ?'

'तुम मुझे वहां छोड़ आते ! मां-बाप सगे-सम्बन्धी सब चल बसे। घर पर मैं अकेली कैसे रहती ? मैंने विष खाकर उचित ही किया है। अब आशीर्वाद दो। मैं परमात्मा के पास जाकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी। मैं तुम्हारे बिना अकेली नहीं रह सकती थी।' इतना कहकर कल्याणी ने फिर महेन्द्र के चरणों पर मस्तक रख दिया। उसकी आंखों से जल-धारा बह रही थी। महेन्द्र मौन प्रस्तर-मूर्ति के समान हो गए।

कल्याणी फिर मधुर स्वर में बोली, 'देवताओं की इच्छा की कोई अवज्ञा नहीं कर सकता। मुझे उन्होंने जाने की आज्ञा दी तो मैं कैसे रुक सकती थी ? मैं स्वयं न मरती तो कोई मुझे मार डालता ? यह उचित ही किया मैंने। तुमने माता की सेवा का जो व्रत लिया है, उसे तन-मन-धन से पूर्ण करो। इसीमें तुम्हारा और देश का हित है। अब मुझे इसीसे शांति प्राप्त होगी।'

बच्ची ने एक बार दूध की उल्टी की। वह कुछ संभलने लगी। अन्दर अधिक विष नहीं गया था, परन्तु महेन्द्र का ध्यान उस समय उसकी ओर नहीं था। उन्होंने कन्या को कल्याणी की गोद में देकर फूट-फूटकर रोना आरम्भ किया। उसी समय अरण्य में मधुर शब्द सुनाई दिया :

'हरे मुरारे, मधुकैटभारे !'

कल्याणी पर विष का प्रभाव हो रहा था। वह भी गा उठी :

'हरे मुरारे, मधुकैटभारे !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह महेन्द्र से बोली, 'आप आप भी कहें :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

महेन्द्र नेत्र बन्द करके बोले :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

चारो ओर से ध्वनि आने लगी :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'
'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कल्याणी का कण्ठ धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। फिर भी वह गा रही थी :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

इसके बाद कल्याणी का कण्ठ निस्तब्ध होने लगा। कल्याणी के मुंह से शब्द नहीं निकला। उसकी आंखें गड़ गईं, बदन शीतल हो गया। महेन्द्र समझ गए कि कल्याणी ने 'हरे मुरारे' कहते हुए बैकुण्ठ को प्रस्थान किया। वह पागलों की तरह उच्च स्वर से कानन को कंपित करते हुए पुकारने लगे :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

उसी समय किसी ने उसके समक्ष आकर मधुर-स्वर में कहा :

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

7

राजधानी के मार्ग पर बड़ी भारी हलचल थी। वहां शोर मचा था कि नवाब के यहां आने वाला खजाना संन्यासियों ने छीन लिया। नवाब ने संन्यासियों को पकड़ने के लिए सेना भेजी। इस हलचल को देखकर संन्यासी वेशधारियों ने अपने वेश बदल लिए। राजा के भूखे सैनिक संन्यासियों को न पाकर अन्य घरों में घुसने लगे और जो मिला उसे लूटने और अपने पेट भरने लगे।

ब्रह्मचारी सत्यानन्द ने अपने गैरिक वस्त्रों को नहीं छोड़ा था। उसी नदी के तट पर शाही मार्ग की बगल में पेड़ के नीचे कल्याणी का शव पड़ा था। महेन्द्र और सत्यानन्द भी वहीं थे। उसी समय जमादार सिपाहियों के दल के साथ वहां पहुंच गया। वह संन्यासी पर झपटकर बोला, 'ओ संन्यासी के बच्चे ! इधर आ जरा तू।' दूसरा सिपाही महेन्द्र पर झपटा। तीसरा कल्याणी की ओर लपका। उसने देखा कि वह मरी पड़ी थी। उसने उसे छोड़ दिया। उन्होंने सत्यानन्द और महेन्द्र को रस्से से जकड़कर बांध लिया और उन्हें साथ ले चले। कल्याणी का मृत देह और कन्या पेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के नीचे रह गई।

महेन्द्र विचेतन-सी अवस्था में थे। यह सब क्या हो रहा था, वह समझ न सके। उन्होंने कोई आपत्ति न की, परन्तु थोड़ा आगे बढ़ते ही वह समझ गए कि वे उन्हें पकड़कर ले जा रहे थे। कल्याणी का शरीर पड़ा हुआ था। उसका संस्कार नहीं हुआ था। कन्या भी पड़ी थी। इस अवस्था में उन्हें पशु भी खा सकते थे। मन में यह भाव आते ही महेन्द्र के शरीर में बल आ गया। उन्होंने अपनी कलाइयों को मरोड़कर बंधन तोड़ डाला और जमादार को इतने जोर की लात लगाई कि वह मुंह के बल गिर पड़ा। फिर उन्होंने पास के एक सिपाही को उठाकर फेंक दिया, परन्तु उसी समय पीछे के तीन सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया। वह दुःख से कातर होकर सत्यानन्द से बोले, 'आप जरा भी मेरी सहायता करते, तो मैं इन दुष्टों को यमराज के पास भेज देता।'

सत्यानन्द बोले, 'मेरे इस बूढ़े शरीर में बल कहां है ? मैं जिन्हें बुला रहा हूं, उनके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं है। जो होना है, वह होकर रहेगा। तुम विरुद्धाचरण न करो। हम इन सब को नष्ट न कर सकेंगे। देखें, ये हमें कहां ले जाते हैं। भगवान् रक्षा करेंगे ?'

उसके पश्चात् उन्होंने मुक्ति का फिर कोई प्रयत्न न किया। वे चुपचाप सिपाहियों के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर होने पर सत्यानन्द ने सिपाहियों से पूछा, 'बाबा! मैं तो हरिनाम गा रहा था। क्या भगवान् का नाम लेनेमें भी कोई बाधा है ?' जमादार समझ गया कि सत्यानन्द भला आदमी है। उसने कहा, 'तुम भगवान् का नाम लो, तुम्हें मैं नहीं रोकूंगा। तुम वृद्ध ब्रह्मचारी हो। तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो जाएगा, परन्तु यह बदमाश फांसी चढ़ेगा।'

सत्यानन्द मधुर स्वर में गाने लगे।

नगर में पहुंचने पर वे लोग कोतवाल के सामने पेश किए गए। कोतवाल ने नवाब के पास सूचना भेजकर उन्हें फाटक के पास की हवालात में रखा। वह भयानक कारागार थी। जो उसमें जाता था वह बाहर नहीं निकलता था। न तो वह अंग्रेजों का जेलखाना था और न उस समय अंग्रेजों का न्याय था।

महेन्द्र हवालात में पड़े-पड़े न जाने क्या-क्या सोचते रहे। अंधकार पूर्ण रात्रि छा गई थी। सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा, 'आज बड़े आनन्द का दिन है। हम लोग कारागार में हैं। कहो, 'हरे मुरारे !'

महेन्द्र ने बड़े कातर स्वर में कहा, 'हरे मुरारे !'

'कातर न हो बेटे ! तुम्हारे इस महाव्रत को ग्रहण करने पर तुम्हें स्त्री और कन्या का त्याग तो करना ही पड़ता। उनसे तो तुम्हारा कोई सम्बन्ध न रह जाता। उनकी मृत्यु से तुम मुक्त हो गए।'

'त्याग एक बात है, यम-दण्ड दूसरी बात। जिस शक्ति के सहारे मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री और कन्या के साथ चली गई।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वह शक्ति फिर आएगी। मैं तुम्हें शक्ति दूंगा ? मैं तुम्हें महामंत्र से दीक्षित करूंगा। महाव्रत ग्रहण करो तुम।'

महेन्द्र ने विरक्त होकर कहा, 'जब मेरी स्त्री और कन्या को सियार और कुत्ते खाते होंगे, तब आप मुझसे किसी व्रत की बात न करें।'

'इस विषय में तुम चिन्ता न करो। सन्तानों ने तुम्हारी स्त्री की अंत्येष्टि-क्रिया करके तुम्हारी पुत्री को उपयुक्त स्थान पर पहुंचा दिया होगा।'

महेन्द्र को इस बात पर तनिक भी विश्वास न हुआ। उन्होंने पूछा, 'यह आपने कैसे जाना ? आप तो तब से बराबर मेरे साथ हैं।'

'हम महामंत्र से दीक्षित हैं। देवता हम पर दया करते हैं। आज रात्रि को तुम यह संवाद सुनोगे और आज ही तुम बन्दीगृह से मुक्त हो जाओगे।'

महेन्द्र कुछ न बोले। सत्यानन्द ने समझ लिया, महेन्द्र को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। वह बोले, 'तुम्हें विश्वास नहीं है तो परीक्षा करके देखो।' यह कहकर सत्यानन्द कारागार के द्वार पर गए। उन्होंने क्या किया, यह महेन्द्र कुछ न जान सके, परन्तु यह जरूर जान गए कि उन्होंने किसी से बातें कीं। उनके लौटने पर महेन्द्र ने पूछा, 'मैं क्या परीक्षा करूं ?'

'तुम अभी बन्दीगृह से मुक्त होगे।'

उनके यह बात कहते-कहते बन्दीगृह का द्वार खुल गया। एक व्यक्ति ने आकर कहा ,'महेन्द्रसिंह किसका नाम है ?'

'मेरा नाम है।' महेन्द्र ने कहा।

'तुम्हारी रिहाई का हुक्म हुआ है। तुम जा सकते हो।'

महेन्द्र आश्चर्यचकित रह गए। फिर सोचा, यह बात झूठ है। परीक्षार्थ वह बाहर आए। किसी ने उन्हें न रोका। महेन्द्र सड़क तक चले गए। फिर भी किसी ने उन्हें नहीं रोका।

'महाराज ! आप भी क्यों नहीं आ जाते ? मैं तो आपके लिए ही आया हूं।' आगंतुक बोला।

'तुम कौन हो ? गोस्वामी धीरानन्द ?'

'जी हां। मैं वही हूं।'

'तुम प्रहरी कैसे बने यहां के ?'

'भवानन्द ने मुझे भेजा है। मैं नगर में आने के बाद और यह सुनकर कि आप इस बन्दीगृह में हैं, अपने साथ धतूरा मिली विजया ले आया था। पहरे के खां साहब उसके नशे में जमीन पर पड़े सो रहे हैं। यह पगड़ी, भाला जो मुझ पर है, उन्हीं की है।'

'तुम यह पहने हुए नगर से बाहर चले जाओ। मैं इस तरह न आऊंगा।'

'परन्तु....ऐसा क्यों ?'

'आज सन्तानों की परीक्षा होगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेन्द्र भी वापस आ गए। सत्यानन्द ने पूछा, 'तुम वापस क्यों आए ?'

'आप सिद्ध पुरुष हैं। मैं आपका साथ छोड़कर यहां से नहीं जाऊंगा।'

'ठीक है। तब हम दोनों ही आज रात को दूसरी तरह से बाहर होंगे।' धीरानन्द बाहर चले गए। सत्यानन्द और महेन्द्र बन्दीगृह में ही रहे।

8

ब्रह्मचारी का गाना जीवानन्द के कानों में भी पहुंचा था। महेन्द्र की रक्षा में रहने का उन्हें आदेश था। वह उधर चले, परन्तु मार्ग में एक स्त्री से भेंट हो गई। सात दिन से उसने कुछ खाया न था। सड़क के किनारे पड़ी थी। उसे जीवन-दान देने में जीवानन्द को एक घंटा लग गया। उसे बचाकर वह चले आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिए जा रहे थे। स्वामीजी गाते हुए चले जा रहे थे।

जीवानन्द महाप्रभु के संकेतों को समझते थे। वह नदी के किनारे-किनारे चले। जीवानन्द ने देखा था कि ब्रह्मचारी मुसलमानो के बन्दी होकर जा रहे थे। अतः ब्रह्मचारी का उद्धार करना उनका प्रथम कर्तव्य था, परन्तु जीवानन्द ने सोचा, 'इस संकेत का तो यह अर्थ नहीं है। उनकी जीवन-रक्षा से भी बढ़कर था, उनकी आज्ञा का पालन करना। यही उनकी पहली शिक्षा थी। अतः उनकी आज्ञा की पालन करूंगा।'

जीवानन्द नदी के किनारे-किनारे चले। कुछ दूर जाकर उन्होंने देखा नदी-त्तट पर एक स्त्री का शव पड़ा था और एक जीवित कन्या थी। जीवानन्द ने सोचा, ये ही महेन्द्र की स्त्री और कन्या होगी। प्रभु के साथ ही उन्होंने महेन्द्र को देखा था। माता मृत थी, कन्या जीवित। पहले इसकी रक्षा होनी चाहिए, अन्यथा इसे जानवर खा जाएंगे। भवानन्द स्वामी यहीं कहीं होंगे। वह स्त्री का अन्तिम संस्कार कर देंगे।' यह सोचकर जीवानन्द कन्या को गोद में लेकर वहां से चले गए।

लड़की को गोद में लेकर जीवानन्द जंगल में घुसे। जंगल पार कर वह भैरवीपुर ग्राम में पहुंचे। लोग इसे भरुईपुर कहते थे। यह सामान्य लोगों की बस्ती थी। पास में अन्य और कोई गांव नहीं था। उसे पार करके फिर जंगल था। हर-घर के आंगन में गाय, बछड़े और बैल थे, परन्तु आजकल देश में धान नहीं था और न अन्य सामग्री थी। सभी लोग दुर्भिक्ष के कारण दुर्बल, क्लान्त और मलिन थे। फिर भी इन ग्रामवासियों में जीवट थी। गांव के लोग वहां से फल-फूल खाकर दुर्भिक्ष में अपनी जान बचाए हुए थे।

एक आम के बागीचे में एक छोटा-सा घर था। चारों ओर मिट्टी की चाहरदीवारी थी और चारों कोनों पर कमरे, परन्तु घर में प्राणी अधिक नहीं थे। जीवानन्द कन्या को लिए हुए उस घर में गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में पहुंचकर जीवानन्द चिल्लाए। यह सुनकर एक युवती बाहर आई। युवती बांए हाथ पर बांया गाल रखे गर्दन झुकाए खड़ी होकर देखने लगी। वह बोली, 'यह क्या दादा ! यह लड़की कहां से आई ? तुम्हारे लड़की हुई है क्या ? क्या दूसरी शादी की है ?'

जीवानन्द लड़की को उसकी गोद में देकर बोले, 'मैंने क्या किया है, यह समझ लिया तूने ? घर में दूध है ?'

'दूध क्यों न होगा ? लाऊं, पिओगे ?'

'हां पिऊंगा ?'

युवती दूध गर्म करने लगी। तब तक जीवानन्द बैठकर चरखा कातने लगे। लड़की ने युवती की गोद में जाकर रोना बन्द कर दिया। उसने क्या समझा, कह नहीं सकते। शायद उस युवती को उसने अपनी मां समझ लिया था। वह केवल एक बार रोई, शायद आग की गर्मी से। लड़की का रोना सुनकर जीवानन्द न आवाज दी, 'निमी ! यह क्या है ? क्या तेरा दूध गर्म नहीं हुआ ?' उसने कहा, 'हो गया।' यह कहकर वह दूध लेकर जीवानन्द के पास आ गई। जीवानन्द ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, 'मन् करता है, यही गर्म दूध तेरे ऊपर उंडेल दूं। तूने क्या समझा कि मैं दूध पिऊंगा?'

'तब कौन पिएगा ?'

'वह लड़की पिएगी। देखती नहीं, यह दूध पीने वाली बच्ची है।'

निमाई आलती-पालथी मारकर कन्या को चम्मच से दूध पिलाने बैठी। यकायक उसकी आंखों से कई बूंद आंसू ढुलक पड़े। उसे पहले एक बालक हुआ था, वह मर गया था। उसे इस प्रकार दूध पिलाने में उसे अपने बच्चे की याद आ गई।

निमाई ने अपने आंसू पोंछकर हंसते-हंसते जीवानन्द से पूछा, 'दादा ! यह किसकी लड़की है ?'

'तुझे क्या पड़ी है ?'

'यह लड़की मुझे दे दो।'

'तू इसे लेकर क्या करेगी ?'

'मैं इसे दूध पिलाऊंगी, गोद खिलाऊंगी, बड़ी करूंगी और फिर इसकी शादी करूंगी।' कहते-कहते निमाई की आंखों से आंसू ढुलक पड़े। आंसू पोंछकर वह फिर हंसने लगी।

जीवानन्द बोले, 'तू इसे लेकर क्या करेगी ? तेरे तो आप ही कितने बाल-बच्चे हो जायेंगे।'

'जब होंगे तो तब होंगे। इस समय तुम इस लड़की को मुझे दे दो। बाद में चाहो तो ले जाना।'

'तो लेले, लेकर मर। मैं बीच-बीच में आकर देख जाया करूंगा। यह कायस्थ की लड़की है। मैं अब चला.... ।'

'वाह दादा ! कुछ खाओगे नहीं ? समय हो गया है। तुम्हें मेरी कसम, कुछ खाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना।'

'तेरी कसम टाल कर तुझे खाऊं, या भात ! पर रहने दे, तुझे न खाऊंगा, ला भात ला।'

निमाई कन्या को गोद में लिए हुए खाना परोसने लगी। उसने खाने की जगह पानी से धो-पोंछ दी, पीढ़ा-पानी रख दिया। फिर थाली में भात, अरहर की दाल, परवल, रोहू मछली, रसा और दूध लाकर रख दिया। खाने के लिए बैठकर जीवानंद ने कहा, 'छी बहन ! कौन कहता है कि देश में अकाल है ? तेरे गांव में शायद अकाल घुसा भी नहीं।'

निमाई बोली, 'अकाल क्यों नहीं है ! भयंकर अकाल है। हम लोग दो ही प्राणी तो हैं। दे दिलाकर भी भगवान एक मुट्ठी में भात हमें दे देते हैं। हम लोगों के गांव में पानी बरसा था, याद नहीं है। इसलिए हमारे गांव में धान हो गया। गांव वाले और लोग शहर में चावल बेच आये। हम लोगों ने नहीं बेचा।'

'जीजाजी कहां हैं ?'

'दो-तीन सेर चावल बांधकर क्या जाने किसको देने गए हैं। किसी ने चावल मांगा था ?'

इधर जीवानन्द को कई दिन से ऐसा भोजन नहीं मिला था। व्यर्थ बातचीत में समय नष्ट न कर क्षण-भर में सारा भोजन समाप्त कर दिया। निमाई ने भोजन केवल अपने और पति के लिए ही बनाया था। अपना भाग उसने भाई को खिला दिया। थाली खाली देखकर पति का भाग लाकर थाली में डाल दिया। जीवानन्द ने वह भी खा लिया। फिर निमाई ने पूछा, 'दादा ! और कुछ खाओगे ?'

जीवानन्द डकार लेते हुए बोले, 'और क्या है ?'

'एक पक्का कटहल है।'

निमाई ने कटहल भी ला रखा। जीवानन्द ने वह भी खा लिया।

निमाई ने हंसकर कहा, 'दादा ! और कुछ नहीं है ?'

'अब रहने दे। फिर किसी दिन आकर खाऊंगा।'

निमाई ने दादा के हाथ-मुंह धुलाए। जल देती हुई निमाई बोली, 'दादा ! मेरी एक बात मानोगे ?'

'क्या ?'

'तुम्हें मेरी कसम !'

'बोल न कलमुंही !'

'बात मानो तो कहूं।'

'पहले बता भी तो सही या पहले मान ही लूं।'

'तुम्हें मेरी कसम, हाथ जोड़ती हूं।'

'अरे बाबा मानूंगा, बता तो सही क्या कहती है ?'

तब निमाई लजाती-सी नीचे जमीन देखकर बोली, 'एक बार भाभी को बुला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूं, भेंट कर लो।'

जीवानन्द ने हाथ धुलाने वाले लोटे को निमाई पर मारने को उठाया। फिर बोले, 'लौटा दे मेरी लड़की ! तेरा अन्न भी किसी दिन वापस कर जाऊंगा। तू कलमुंही है बन्दरी। जो बात न कहनी चाहिए, वही मेरे सामने कहती है।'

'मैं ऐसी ही सही, पर भैया ! एक बार हां कह दो तो मैं भाभी को बुला लाऊं।'

'तो ले, मैं जाता हूं ! अब फिर न आऊंगा।' यह कहकर जीवानन्द द्वार की ओर बढ़े, परन्तु निमाई ने दौड़कर किवाड़ बन्द कर दिए और किवाड़ों से लगकर खड़ी हो गई। बोली, 'मुझे मारकर ही बाहर जा सकोगे भैया ! आज भाभी से बिना मिले जा न पाओगे।'

'जानती हो, आदमियों का शिकार करना मेरा काम है। मैंने बहुत से आदमियों का शिकार किया है।'

निमाई को क्रोध आ गया। वह बोली, 'खूब किया है। अपनी पत्नी को त्यागा और आदमियों की जानें लीं। क्या इससे मैं डर जाऊंगी ? बहुत करोगे मार दोगे। मैं डरने वाली नहीं हूं। तुम जिस बाप के लड़के हो, मैं भी उसीकी लड़की हूं। आदमियों का खून करना बड़ाई की बात है। लो मुझे भी मार डालो।'

जीवानन्द हंसकर बोले, 'बुला ला, किस पापिन को बुलाएगी, जा बुला। लेकिन देख, आज के बाद फिर अगर ऐसी बात कहेगी, तो उसके भाई को सिर मुंड़ाकर, गधे पर चढ़ाकर, गांव से बाहर निकलवा दूंगा।'

निमाई मन में बोली, 'हुई न मेरी जीत।' यह सोचती हुई वह घर से निकल गई। वह एक झोंपड़ी में घुसी। वहां एक युवती बैठी चरखा कात रही थी। निमाई ने उससे जाकर कहा, 'भाभी ! जल्दी !'

'जल्दी क्या ? नंदोई ने तुझे मारा है क्या ? क्या उनके सिर पर तेल मलना होगा तुझे ?'

'बात ठीक है। घर में तेल नहीं है ?'

युवती ने तेल की शीशी निमाई के सामने खिसका दी। निमाई ने अंजली में तेल लेकर युवती के सूखे बालों में लगा दिया। उसके बालों का जूड़ा बांध दिया। फिर उसके गाल पर चपत जमाकर बोली, 'तेरी ढाके वाली साड़ी कहां है, बोल ?'

युवती ने कुछ आश्चर्य से पूछा, 'क्यों ! क्या पागल हो गई हो ?'

निमाई ने एक मीठा घूंसा मारकर कहा, 'निकाल साड़ी और पहन उसे।'

युवती ने मुस्कराकर साड़ी निकाली। इतना कष्ट सहन करने पर भी उसका चेहरा गुलाब-सा खिला हुआ था। फूले कमल जैसा उसका यौवन मैली टुक्कियों वाली धोती के अन्दर से भी फूटा पड़ता था। वह बोली, 'निमाई ! भला बता तो क्या होगा इस साड़ी का ?'

वह उसके गले में हाथ डालकर बोली, 'तू पहनेगी भी।'

'मैं किसके लिए पहनूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमाई बोली।

'दादा आए हैं। तुझे बुलाया है।'

'अगर मुझे बुलाया है तो साड़ी का क्या बनेगा ? चल ऐसे ही चलती हूं।' उसने कपड़े न बदले। अन्त में दोनों बाहर आ गईं। निमाई अपनी भाभी को लेकर घर के द्वार तक आई। भाभी को अंदर करके उसने द्वार बंद कर दिया और स्वयं बाहर खड़ी रही।

9

उस युवती की आयु लगभग पच्चीस वर्ष की थी, परन्तु देखने में निमाई से अधिक की उम्र की लगती थी। मैली टुक्कियों की धोती पहिनकर भी जब उसने घर में प्रवेश किया तो जान पड़ता था जैसे घर में उजाला हो गया। मानो गुलाब-जल की शीशी महक उठी। युवती ने पति को देखा, वह आंगन में लगे आम के नीचे खड़े रो रहे थे। सुन्दरी ने उनके पास पहुंचकर उनका हाथ पकड़ लिया और अपनी आंखों में आंसू नहीं आने दिये। जीवानन्द का हाथ पकड़कर वह बोली, 'छिः ! छिः! रोते हो ? क्या तुम मेरे लिए रोते हो ? मेरे लिए न रोना। तुमने मुझे जिस तरह रखा है, मैं उसीमें सुखी हूं।'

जीवानन्द ने सिर उठाकर, आंसू पोंछते हुए पूछा, 'शांति ! तुम्हारे शरीर पर यह सैकड़ों टुक्कियों की धोती क्यों है ? तुम्हें तो खाने-पहिनने का कोई कष्ट नहीं है?'

'तुम्हारा धन तुम्हारे लिए ही है। रुपए लेकर क्या करना चाहिए, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे और मुझे ग्रहण करोगे तब....।'

'ग्रहण करूंगा शांति ! मैंने क्या तुम्हें त्याग दिया है ?'

'त्यागा नहीं, जब तुम्हारा व्रत पूर्ण होगा, जब तुम फिर मुझे प्यार करोगे....।'

बात समाप्त होने से पूर्व ही जीवानन्द ने शांति को अपनी छाती से लगा लिया और उसके कन्धों पर माथा रखकर बहुत देर चुप रहे। उसके बाद एक ठण्डी श्वांस लेकर बोले, 'क्यों व्यर्थ भेंट की ?'

'क्या तुम्हारा व्रत भंग हो गया ?'

'हो जाए, उसका प्राचश्चित भी है। उसके लिए शोक नहीं है, लेकिन तुम्हें देखकर तो फिर लौटा नहीं जा रहा। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सारा संसार, व्रत-होम, योग-यज्ञ यह सब एक ओर और तुम दूसरी ओर हो। मैं नहीं जानता कि कौन सा पलड़ा भारी है। देश अशांत है, मैं उसे लेकर क्या करूंगा ? तुम्हारे साथ एक बीघा भूमि पर आनन्द से रह सकता हूं। तुम्हें लेकर मैं स्वर्ग बना सकता हूं। देश की वह सन्तान अभागी है, जो तुम जैसी गृहलक्ष्मी को पाकर भी सुखी नहीं। मुझसे बढ़कर कौन दुःखी होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे बदन पर यह कपड़ा देखकर मुझे लोग दरिद्र समझेंगे। मेरा धर्म तुम हो, तुम अन्य सबसे मूल्यवान हो, मेरा स्पर्श हो। चलो घर चलें, अब मैं वापस न जाऊंगा।'

शांति कुछ देर बोल न सकी। फिर बोली, 'तुम कैसे वीर हो ? मुझे इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा सुख यही है कि मैं वीर-पत्नी हूं। तुम मेरे लिए वीर-धर्म का परित्याग करोगे ? तुम उसका कभी परित्याग न करना। तुम मुझे यह बताते जाओ कि इस व्रत-भंग का क्या प्रायश्चित है ?'

'प्रायश्चित है दान, उपवास।'

'जो प्रायश्चित है, मैं जानती हूं। लेकिन एक अपराध पर जो प्रायश्चित है वही क्या सैकड़ों अपराधों पर भी है ?'

'परन्तु यह सब क्यों ?'

'एक भिक्षा है। कहो मेरे साथ भेंट किए बिना प्रायश्चित न करोगे।'

जीवानन्द हंसकर बोले, 'इस विषय में निश्चिन्त रहो। बिना तुम्हें देखे, मैं न मरूंगा। मरने की ऐसी कोई शीघ्रता भी नहीं है। अब मैं अधिक यहां न ठहरूंगा, परन्तु आंख भरकर तुम्हें न देख सका। एक दिन अवश्य देखूंगा, एक दिन हम लोगों की मनोकामना अवश्य पूरी होगी। मैं अब चला, तुम मेरे एक अनुरोध की रक्षा करना। इस वेश-भूषा को त्याग दो और मेरे मकान पर जाकर रहो।'

'इस समय कहां जाओगे ?'

'मठ से ब्रह्मचारी की खोज में जाऊंगा। वह जिस भाव से नगर गए हैं, उनसे कुछ चिन्ता हो रही है। मठ में उनसे भेंट न हुई तो नगर जाऊंगा।'

जीवानन्द तुरन्त वहां से चल दिए। वह मठ में पहुंचे तो भवानन्द हरिगान गा रहे थे। भवानन्द ने पूछा, 'गोस्वामी ! चेहरा इतना उदास क्यों है ?'

'कुछ गड़बड़ जान पड़ती है। कल के काण्ड से सरकारी सिपाही सब साधुओं को पकड़ रहे हैं। आज सब सन्तानों ने गैरिक वस्त्र उतार दिए हैं। केवल सत्यानन्द प्रभु गेरुवां वस्त्र पहने हुए शहर की ओर गए हैं। कहीं मुसलमानों के हाथ न पड़ जाएं।'

'उन्हें बंदी बनाने वाला बंगाल में कोई मुसलमान नहीं है। मैं जानता हूं, धीरानन्द उनके पीछे-पीछे गए हैं। फिर भी मैं एक बार नगर घूमने जाता हूं। मठ की रक्षा में तुम्हें सौंपता हूं।'

यह कहकर भवानन्द स्वामी ने एक कोठरी से कुछ वस्त्र निकाले। भवानन्द कोठरी से बाहर आए तो उन्हें पचिानना कठिन था। गेरुवां वस्त्र के बदले उनके पैरों में चूड़ीदार पायजामा, शरीर पर अचकन, माथे पर कंगूरेदार पगड़ी और पैरों में नागोरी जूता था। उनके घुंघराले बाल कंधे तक लहरा रहे थे। बगल में तलवार लटक रही थी। इस वेश में उनका चेहरा शोभायमान था। वह पठान प्रतीत होते थे। इस तरह सशस्त्र होकर भवानन्द मठ से निकले। मठ से एक कोस उत्तर में दो छोटी पहाड़ियां थीं। पहाड़ी जंगल से भरी थी। भवानन्द घोड़े पर सवार होकर जा रहे थे। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीधे राजधानी की ओर चल पड़े।

जाते-जाते नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे उन्होंने एक स्त्री को पड़ी देखा। उसमें जीवन का कोई लक्षण नहीं था। विष की खाली डिबिया उसके पास पड़ी थी। जीवानन्द की ही तरह भवानन्द ने भी महेन्द्र की स्त्री और कन्या को नहीं देखा था। कन्या भी वहां न थी। केवल डिबिया देखकर उन्होंने समझा कि उस स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या की थी। भवानन्द ने उस शव के पास बैठकर उसके माथे पर हाथ रख कर देखा। नाड़ी-परीक्षा करके मनमें कहा, 'अभी मरी नहीं है, बचाई जा सकती है, परन्तु बचाकर क्या करना होगा ?' वह उसे उठाकर वन में ले गए। वहां से एक लता की थोड़ी पत्तियां तोड़ लाए। पत्ती हथेली पर रगड़कर उन्होंने रस निकाला और रस को उस स्त्री के दांत खोलकर मुंह में टपकाया, कानों में डाला और मस्तक पर मला। थोड़ा रस उसकी नाक में डाला। इस प्रकार उन्होंने कई बार किया और नाक के पास हाथ ले जाकर देखा कि श्वांस चली या नहीं। पहले तो भवानन्द को निराशा हुई, परन्तु फिर उनका मुंह प्रसन्नतत्ता से खिल उठा। उंगली पर निश्वास की अनुभूति हुई। उन्होंने उत्साहित होकर बारम्बार वही प्रक्रिया की। अब श्वांस आने-जाने लगा। नाड़ी भी चलने लगी थी। उसके बाद कल्याणी अपनी आंखें खोलने लगी। यह देखकर भवानन्द ने कल्याणी के अर्धजीवित शरीर को घोड़े पर रखा और स्वयं पैदल ही नगर की ओर चल पड़े।

× × ×

संध्या होने से पूर्व ही सन्तान-संप्रदाय ने जान लिया कि महेन्द्र के साथ सत्यानन्द स्वामी भी बंदीगृह में हैं। वे एक-एक दो-दो, दस-दस सौ-सौ, हजार-हजार की संख्या में आकर मठ के पास वाले वन में एकत्रित होने लगे। सभी सशस्त्र थे। उनकी आंखों से क्रोध की चिनगारियां निकल रही थीं। उन लोगों के पर्याप्त संख्या में एकत्रित हो जाने पर मठ के फाटक पर हाथ में नंगी तलवार लिए स्वामी ज्ञानानन्द गगनभेदी स्वर में बोले, 'हम अनेक दिनों से सोच रहे थे कि नवाब का महल तोड़कर नदी के जल में डुबा देंगे। इनके दांत तोड़कर माता वसुन्धरा का उद्धार करेंगे। भाइयो ! आज वह दिन आ गया है। हम लोगों के परम गुरु आज उनके बंदीगृह में हैं। क्या हम लोगों की तलवार पर धार नहीं है ? या हमारी बाहुओं में बल नहीं है ?' वह छाती ठोककर बोले, 'भाइयो बोलो हरे मुरारे मधुकैटभारे ! जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दंतवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों का निधन-साधन किया है, जिनके चक्र के प्रचण्ड निर्घोष से मृत्युंजय शम्भु भी भयभीत हुए थे, जो अजेय हैं, रण में विजय दाता हैं, हम उनके उपासक हैं। उनके ही बल से हमारी भुजाओं में अनन्त बल है। तुम विजयी होगे। चलो, हम लोग उस यवनयेरी का विनाश करें और उसे धूलि में मिला दें। बोलो, 'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके साथ ही कान में भीषण स्वर गुंजायमान हो उठा।

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

सहस्त्रों कण्ठों के शब्द से आकाश कांप उठा, वसुन्धरा डगमगा उठी। हजारों ढोलों की आवाज से कानों के पर्दे फटने लगे। कोलाहल करते हुए पशु-पक्षी जंगल से निकलकर भाग खड़े हुए। सेना की तरह संतानगण निकल पड़े। ये लोग मुंह से हरिनाम जपते हुए नगर की ओर चले। अंधेरी रात में पत्र दलों का मर्मर शब्द, अस्त्रों की झंकार, कण्ठों का अस्फुट नाद-तुमुल हरिनाम ! सरोष संतान-वाहिनी ने नगर में जाकर नगर को त्रस्त कर दिया। इस अकस्मात् वज्राघात से नागरिक कहां और किधर भागे पता न लगा। नगर-रक्षक हतबुद्धि हो गए।

संतानों ने राजमहल में पहुंचकर उसे तोड़ डाला, रक्षकों को मार डाला और सत्यानन्द तथा महेन्द्र को मुक्तकर कंधों पर चढ़ाकर संतानगण आनन्द से नृत्य करने लगे। हरिकीर्तन का अद्भुत दृश्य उपस्थित हुआ। महेन्द्र और सत्यानन्द को मुक्त कर संतानों ने नगर में आग लगा दी। यह देखकर सत्यानन्द बोले, 'अनर्थ की आवश्यकता नहीं है। चलो, लौट चलो।' नगर के अधिकारियों ने संतानों का यह उपद्रव सुनकर एक सिपाहियों का दल दमन के लिए भेजा। उनके पास केवल बंदूकें ही नहीं, एक तोप भी थी। यह सूचना पाते ही संतानगण पलट पड़े, क्योंकि तोप के सामने उनके हथियार पर्याप्त नहीं थे। उन्हें भाग जाना पड़ा।

10

शांति का बहुत कम आयु में ही माता से वियोग हो गया था। उसके पिता एक अध्यापक थे। उनके घर में और कोई स्त्री नहीं थी।

स्वभावतः शांति के पिता जब पाठशाला में बालकों को पढ़ाते थे, तो शांति भी उनके पास जाकर बैठ जाती थी। जो छात्र पाठशाला में रहते थे, शांति उन्हीं में मिलकर खेला करती थी। वे सब शांति का आदर करते थे।

इस प्रकार बचपन से शांति ने लड़कियों की तरह कपड़ा पहिनना नहीं सीखा। वह लड़कों की तरह धोती बांधती थी। अगर कोई उसे लड़कियों की तरह कपड़े पहिना देता था, तो वह तुरन्त उन्हें उतार देती थी। वह न तो चोटी करती थी और न जूड़ा बांधती थी। फिर उसका जूड़ा बांधता ही कौन ? घर में कोई औरत नहीं थी। उसके घुंघराले बाल वैसे ही पीठ पर लहराया करते थे। शांति मस्तक पर चंदन लगाया करती थी।

बड़ी होने पर शांति, लड़कों के साथ पढ़ने लगी। वह व्याकरण न पढ़ती थी, परन्तु रघुवंश, कुमारसंभव, नैषधादि के श्लोक व्याख्या के साथ उसने रट लिए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह देखकर शांति के पिता ने उसे थोड़ा व्याकरण भी पढ़ाया। व्याकरण के साथ उन्होंने कुछ साहित्य भी उसे पढ़ाया था। उसके बाद सब गोलमाल हो गया। शांति के पिता का स्वर्गवास हो गया।

शान्ति आश्रयविहीन हो गई। पाठशाला उठ गई। छात्र चले गए, परन्तु वे सब शान्ति को प्यार करते थे। अतः उनमें से एक छात्र शान्ति को अपने घर ले गया। उसे छात्र ने बाद में 'सन्तान-सम्प्रदाय में नाम लिखाकर अपना नाम जीवानन्द रखा।

उस समय जीवानन्द के माता-पिता जीवित थे। उन्होंने कहा, 'इस पराई लड़की का भार अपने ऊपर कौन लेगा ?'

मै लाया हूं तो इसका भार मैं ही लूंगा ?'

उन्होंने कहा, 'ठीक है।'

जीवानन्द ने शान्ति के साथ शादी कर ली थी।

विवाह के पश्चात सब लोगों ने कहा, 'यह काम तो ठीक नहीं हुआ। शान्ति ने लड़कियों की तरह धोती न पहिनी। वह चोटी बांधने को उद्यत न हुई। वह घर में न रहती थी। पड़ौस के लड़कों के साथ बाहर खेला करती थी। जीवानन्द के घर के पास एक जंगल था। शांति जंगल में अकेली मोरों और हरिणों से खेला करती थी। सास-ससुर ने पहिले तो मना किया फिर भर्त्सना की, फिर मारा-पीटा और फिर कोठरी में बन्द कर दिया। डांप-डपट से शान्ति बहुत क्रुद्ध हुई। एक दिन द्वार खुला देखकर बाहर निकली और बिना किसी ने कहे-सुने कहीं चली गई।

जंगल-से टेसू के फूल लेकर शांति ने उनसे अपने कपड़े रंगे और साधुनी बन गई। साधुनियों के साथ शांति भिक्षा-मांगती-खाती ज़गन्नाथ-पुरी की ओर निकल गई।

सन्यासी लोग पहले कोमल अंग देखकर उसे दल में मिलाते न थे, लेकिन शांति की बुद्धि-प्रखरता और कार्य-दक्षता को देखकर उन्होंने उसे अपने दल में मिला लिया। शांति उनके दल में मिलकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी, अतः परिश्रमी हो गई। उनके साथ उसने देश-विदेश का भ्रमण किया।

संन्यासियों में अनेक विद्वान् भी थे। शांति को संस्कृत का कुछ ज्ञान था। यह देखकर एक संन्यासी उसे पढ़ाने लगा, परन्तु वह चरित्रभ्रष्ट निकला। शांति का यौवन देखकर वह अपनी इन्द्रियों पर अधिकार न रख सका। वह शांति को रस-काव्य पढ़ाने लगा और उसकी व्याख्या खोलकर सुनाने लगा। उससे शांति का उपकार न होकर कुछ अपकार ही हुआ। लज्जा का उदय हुआ। शांति ने पढ़ना छोड़ दिया।

शिकारी जैसे हिरणी के पीछे दौड़ता है, वैसे ही संन्यासी शांति के पीछे लपका, परन्तु शांति में पुरुष जितनी शक्ति थी। एक दिन एकान्त में संन्यासी ने शक्ति लगाकर शांति का हाथ पकड़ लियाा। शांति हाथ न छुड़ा सकी। संन्यासी ने दुर्गाग्यवश शांति का बांया हाथ पकड़ा था। शांति ने सीधे हाथ से संन्यासी के सिर पर जोर का घूंसा लगाया तो संन्यासी धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। उसी दिन शांति संन्यासी-सम्प्रदाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़कर उससे पृथक् हो गई।

शांति निर्भय थी। वह अकेली ही अपने देश की ओर चल पड़ी। वह निर्विघ्न यात्रा करती रही। भिक्षा मांगकर और जंगली-कंद--मूंल-फलों से भूख मिटाती अपनी ससुराल में पहुंची। उस समय तक उसके श्वसुर का स्वर्गवास हो चुका था। सास ने उसे घर में स्थान न दिया। उसे घर से निकल जाना पड़ा।

उस समय जीवानन्द घर में ही थे। उन्होंने शांति का पीछा किया और मार्ग में उसे पकड़कर कहा, 'तुम घर छोड़कर कहां चली गई थी ? इतने दिनों तक कहां रहीं ?' शांति ने सच्ची बात उससे कह दी। जीवानन्द ने शांति की बात का विश्वास कर लिया।

'मैं तुम्हारा परित्याग न करूंगा। मैं जब तक लौट न आऊं, तुम यहीं खड़ी रहना।' जीवानन्द बोला।

'तुम लौटकर तो आओगे न ?' शांति ने पूछा।

जीवानन्द और कोई उत्तर न देकर, नारियल के वृक्ष की छाया में शांति के अधरों पर अधर रखकर चले गए।

जीवानन्द ने अपनी माता को समझा-बुझाकर उनसे विदा ली और शांति के पास लौट आए। जीवानन्द की बहिन निमाई की शादी भैरवी में हुई थी। बहनोई के साथ जीवानन्द का प्रेम था। जीवानन्द शांति को लेकर वहीं गए। बहनोई ने उसे थोड़ी जमीन दे दी। जीवानन्द ने उस पर एक घर बनाया। वहीं वह शांति के साथ रहने लगे। स्वामी के सहवास में शांति का पुरुष-भाव धीरे-धीरे जाता रहा। सुख से उसका जीवन बीतने लगा, परन्तु सहसा वह सुख-स्वप्न भंग हो गया। जीवानन्द सत्यानन्द के हाथों में पड़कर 'सन्तान-धर्म', ग्रहण कर शांति को परित्याग कर चले गए। परित्याग के बाद अब प्रथम मिलन निमाई के उद्योग से हुआ था।

जीवानन्द के चले जाने पर शांति निमाई के पास जा बैठी। निमाई गोद में लड़की लेकर उसके पास आ गई। शांति की आंखों में आंसू नहीं थे, उसने उन्हें पोंछ डाला था। उसके चेहरे पर मधुर मुस्कान थी। फिर भी, वह कुछ गम्भीर, चिन्तामुक्त और अनमनी-सी थी। निमाई बोली, 'भेंट हो गई ना ?'

शांति ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रही। निमाई ने देखा कि शांति मन का भाव न बताएगी। शांति अपने मन की बात बताना पसन्द भी नहीं करती थी। यह जानती हुई निमाई बोली, 'बताओ भाभी ! यह कन्या कैसी है ?'

'यह लड़की कहां से पाई तुमने ?'

'यह दादा की लड़की है।'

निमाई ने शांति को जलाने के लिए यह बात कही थी। दादा की लड़की माने, वह लड़की उसने अपने भाई से पाई थी। शांति ने यह न समझा कि निमाई उसे चिढ़ाने के लिए यह कह रही थी। शांति बोली, 'मैं लड़की के बाप की बात नहीं पूछती हूं, इस लड़की की मां कौन है ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निमाई बोली, 'कौन जाने किसकी लड़की है। दादा क्या जाने कहां से पकड़कर उठा लाए हैं। पूछने का अवसर ही नहीं मिला। अकाल के दिनों में कितने लोग लड़के-बच्चे फेंक जाते हैं। मेरे ही पास कितने अपनी सन्तान बेचने के लिए आए थे। दूसरों के बाल-बच्चों को कौन ले ?' उसकी आंखों में फिर जल भर आया। निमाई ने आंखे पोंछकर कहा, 'लड़की है, सुन्दर, भोली-भाली, गोरी-चिट्टी। दादा से मैंने मांग ली है।'

फिर शांति की निमाई से बहुत सी बातें हुई। निमाई के स्वामी को घर लौटते देखा तो शांति उठकर अपने घर चली गई। घर में पहुंचकर उसने अपना द्वार बन्द कर लिया। उसने चूल्हे की राख बटोरकर पके चावल वहां से हटा दिए। वह बहुत देर तक सोचती रही और फिर आप-ही-आप बोली, 'इतने दिन से जो सोच रखा था, वही करूंगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, वह आज निष्फल हुई। मैं प्रायश्चित करूंगी।'

कुछ सोचते हुए शांति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। जंगल से कन्द-मूल-फल ले आई। अन्न के बदले उन्हीं को खाकर उसने अपना पेट भरा। उसके बाद उसने ढाका की साड़ी निकाली, जो निमाई ने दी थी। उसका किनारा फाड़ डाला और शेष को गेरुआ रंग लिया। वस्त्र रंगते और सुखाते संध्या हो गई। उसने अपने केशों का कुछ भाग कैंची से काट डाला। शेष बालों की जटाएं बना लीं। रंगे हुए कपड़े उसने पहिन लिए और फिर शीशा निकालकर उसमें अपना रूप देखा। रूप देखकर उसने कहा, 'हाय ! मैं क्या करने जा रही हूं ?' फिर दुःखी हृदय से वह अपने उन काटे हुए बालों को लेकर मूंछ और दाढ़ी बनाने लगी, लेकिन बना न सकी। उसने उन्हें छिपाकर अपने पास रख लिया। फिर एक बड़ा हरिण-चर्म पहिनकर गांठ लगा ली। आधी रात हो जान पर शांति ने इस प्रकार संन्यासिनी-वेश में द्वार खोलकर अन्धकारपूर्ण वन में प्रवेश किया।

11

आनन्द मठ के कमरे में निरुत्साह बैठे तीन-तीन नायक बातें कर रहे थे। जीवानन्द ने सत्यानन्द से पूछा, 'महाराज भगवान् हम लोगों पर इतने अप्रसन्न क्यों हैं ?'

सत्यानन्द ने कहा, 'भगवान् अप्रसन्न नहीं होते। युद्ध में जय-पराजय दोनों होती हैं। उस दिन हम लोगों की जीत हुई थी। आज पराजय हुई। अन्त में फिर विजय होगी। हमें भरोसा है कि जिन्होंने इतने दिन तक हमारी रक्षा की है, वह फिर भी रक्षा करेंगे। उनके पद्स्पर्श कर हम लोग जिस महाव्रत से व्रती हुए हैं, उस व्रत की हमें साधना करनी होगी। विमुख होने से हमें नरक भोगना पड़ेगा। हम लोग पराजित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं उसका कारण यह है कि हम निःशस्त्र थे। गोली, बन्दूक के सामने लाठी, तलवार, भाला क्या कर सकते थे ? हमें अस्त्रों की कमी पूरी करनी चाहिए।'

'यह तो बहुत कठिन कार्य है।'

'कठिन है जीवानन्द ! सन्तान होकर तुम मुंह से ऐसी बात निकालते हो ? सन्तानों के लिए कठिन क्या है ?'

'आज्ञा दीजिए, इनका संग्रह किस प्रकार किया जाए ?'

'इसके लिए मैं आज रात्रि को यात्रा करूंगा। जब तक मैं लौटकर न आऊं, तब तक तुम लोग किसी बड़े काम में हाथ न डालना। संतानों की आपसी एकता की रक्षा करना। उनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करना। इसका भार तुम दोनों पर है।'

भवानन्द ने पूछा, 'तीर्थ-यात्रा करके इन चीजों का संग्रह आप कैसे करेंगे ? गोला-गोली, बन्दूक, तोप आप कहां पाएंगे ?'

'ये सब चीजें खरीदकर नहीं लाई जा सकतीं। मैं कारीगर लाकर इन्हें यही तैयार कराऊंगा।'

'आनन्द मठ में ?'

'यह कैसे हो सकता है ? इसके उपाय की चिंता मैं बहुत दिन से कर रहा था। भगवान ने अब उसका सुयोग उपस्थित कर दिया है। तुम लोग कहते थे, भगवान प्रतिकूल हैं, लेकिन मैं देखता हूं कि भगवान अनुकूल हैं।'

'कारखाने कहां खोलेंगे ?'

'पद्चिह्न में। महेन्द्रसिंह को मैंने इसीलिए व्रत ग्रहण करने को उद्यत किया है?'

'क्या महेन्द्र ने व्रत ग्रहण कर लिया है ?'

'अभी व्रत ग्रहण नहीं किया है। आज रात्रि को मैं उसे दीक्षित करूंगा।'

'महेन्द्र को व्रत ग्रहण कराने का क्या उपाय हुआ, हम लोग नहीं जानते। उसकी स्त्री का भी जाने क्या हुआ ? नदी किनारे मैंने एक कन्या पाई थी। उसे मैंने अपनी बहिन के पास पहुंचा दिया है। उस कन्या के पास एक सुन्दर स्त्री मरी पड़ी थी। क्या वही महेन्द्र की स्त्री थी ? मुझे यही भ्रम हुआ था।'

'वे महेन्द्र की स्त्री और कन्या ही थे।'

भवानन्द चमक उठे। अब वह समझ गए कि जिस स्त्री को उन्होंने जिलाया था, वही महेन्द्र की स्त्री कल्याणी थी, परन्तु उसकी कोई बात उस समय उठाना उन्होंने उचित न समझा।

'महेन्द्र की स्त्री मरी कैसे ?'

'विष खाकर।'

'विष क्यो खाया ?'

'भगवान ने उसे स्वप्न में प्राण-त्याग करने का आदेश दिया था ?'

'महाराज ! वह स्वप्नादेश क्या संतानों के कार्यो के लिए ही हुआ था ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'महेन्द्र से मैंने यही सुना है। अब मैं संध्यादि के लिए जाता हूं। उसके पश्चात नई संतानों को दीक्षा दूंगा।'

'क्या महेन्द्र के अतिरिक्त और भी कोई सन्तान-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुआ चाहता है ?'

'हां, एक और नया आदमी आया है। अब से पहले मैंने उसे कभी नहीं देखा। वह आज ही मेरे पास आया है। बहुत तरुणं युवा पुरुष है। मैं उसकी भाव-भंगिमा और बातों से बहुत प्रभावित हूं। खरा सोना जान पड़ता है। उसके सन्तान-कार्य की शिक्षा का भार जीवानन्द पर रहेगा। जीवानन्द लोगों के चित्त आकर्षित करने में बहुत पटु है। एक बात और कहता हूं। उसे तुम मन लगाकर सुनो।'

'आज्ञा कीजिए।'

'तुम दोनों से यदि कोई अपराध हुआ हो, या आगे करो, तो मेरे वापस आने से पूर्व प्रायश्चित न करना। मेरे आ जाने पर ही प्रायश्चित होगा।'

यह कहकर स्वामी सत्यानन्द अपने स्थान पर चले गए। भवानन्द और जीवानन्द ने एक-दूसरे के मुंह की ओर देखा।

'तुम्हारे ऊपर संकेत है क्या ?'

'जान तो यही पड़ता है। मैं बहिन के मकान पर कन्या पहुंचाने गया था।'

'इसमें क्या दोष है ? यह तो निषिद्ध नहीं है। ब्राह्मणी से भेंट तो नहीं हुई।'

'जान पड़ता है, गुरुदेव यही सब समझते हैं।'

सन्ध्या के पश्चात सत्यानन्द स्वामी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा, 'तुम्हारी कन्या जीवित है।'

'वह कहां है महाराज ?'

'तुम मुझे महाराज क्यों कहते हो ?'

'सब यही कहते हैं, इसलिए। मठों के अधिकारियों को भी राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता है। मेरी कन्या कहां है महाराज ?'

यह सुनने से पहले एक बात का ठीक से उत्तर दो। तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करना चाहते हो अथवा नहीं।'

'मैंने मन से निश्चित कर लिया हैं।'

'तब कन्या कहां है, सुनने की इच्छा न करो।'

'क्यों महाराज ?'

'जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे अपनी स्त्री, पुत्र, कन्या, स्वजनों में किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना पड़ता। स्त्री, पुत्र, कन्या का मुंह देखने से भी प्रायश्चित होता है। जब तक सन्तान की मनोकामना सिद्ध न हो, तब तक तुम कन्या का मुंह न देख सकोगे। अतएव यदि सन्तान-धर्म ग्रहण करना है तो कन्या का पता पूछकर क्या करोगे ? उसे देख तो पाओगे नहीं।

'यह कठिन नियम क्यों बनाया है प्रभु ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सन्तानों का कार्य बहुत ही कठिन है। जो सर्वत्यागी है, वह अन्य कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है। माया से जो बंधा रहता है, वह कभी स्वर्ग की ओर नहीं उठ सकता।'

'महाराज ! यह बात मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पाया। जो स्त्री-पुत्र का मुंह देखता है, वह किसी गुरुतर कार्य का अधिकारी नहीं हो सकता, यह बात क्यों ?'

'उनका मुंह देखने से ही वह देवकार्य को भूल जाता है। यह सन्तान-धर्म है। कन्या का चेहरा याद आते ही क्या तुम प्राण दे सकोगे ?'

'तो क्या न देखने से मैं कन्या को भूल जाऊंगा ?'

'यदि न भूल सको, तो ग्रहण न करो।'

'क्या समस्त सन्तानों ने इसी तरह अपने परिवार को भूलकर व्रत ग्रहण किया है ? ऐसी दशा में आपकी सन्तान संख्या में अति अल्प होगी और अल्प ही रहेगी भी।'

'सन्तान दो तरह की है, दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित हैं, वे या तो संसारी हैं अथवा भिखारी। वे लोग केवल युद्ध के समय आकर उपस्थित होते हैं, लूट का भाग या पुरस्कार पाकर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं, वे सर्वस्व त्यागी हैं। वे ही लोग सम्प्रदाय को चलाते हैं। तुम्हें मैं अदीक्षित सन्तान नहीं बनाना चाहता। अदीक्षित सन्तानों की कमी नहीं है। मैं तुम्हें दीक्षित सन्तान बनाकर अधिकारी बनाना चाहता हूं।'

'दीक्षा क्या है ? दीक्षित क्यों होना होगा ? मैं अब से पहले ही ही मंत्र-ग्रहण कर चुका हूं।'

'उस मंत्र का त्याग क़रना होगा।'

'मंत्र का त्याग मैं कैसे करूंगा ?'

'मैं वह पद्धति बता दूंगा।'

मुझे नया मंत्र क्यों लाना होगा ?'

'सन्तान-गण वैष्णव हैं।'

'मैं यह नहीं समझ पा रहा कि सन्तान वैष्णव कैसे हैं ? वैष्णवों का तो अहिंसा परमधर्म है ?'

'वह चैतन्य का वैष्णव-धर्म है। बौद्ध धर्म के अनुसरण से जो वैष्णवता उत्पन्न हुई, वह उसका लक्षण है। प्रकृत वैष्णव-धर्म दुष्टों का दमन है। भगवान विष्णु संसार के पालक हैं। उन्होंने दस बार शरीर धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया है। हिरण्यकश्यप, मधुकैटभ आदि दैत्यों और कंस, रावणादि राक्षसों का तथा शिशुपाल आदि का वध किया है। वहीं सन्तानों के इष्ट देवता हैं। चैतन्य का वैष्णव-धर्म वास्तविक धर्म नहीं है, वह अधूरा है। चैंतन्य के विष्णु प्रेममय हैं, परन्तु भगवान केवल प्रेममय ही नहीं हैं, वह महाशक्तिशाली भी हैं। सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय हैं। मेरी बात समझ गए ?'

'नहीं । वे सब नई-नई बातें हैं। कासिमबाजार में एक पादरी के साथ मेरी भेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई थी। उसने भी कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। 'ईश्वर प्रेममय है। तुम यीशु से प्रेम करो। ये कैसी बातें है ?'

'ईश्वर त्रिगुणात्मक है। तुमने यह सुना है ?'

'जी हां, सत्व, रजः तमः ये तीन गुण हैं ईश्वर के।'

'ठीक है। भक्त इन तीनों गुणों की पृथक्-पृथक् उपासना करते हैं। सत्व से दया प्राप्त होती है। वे भक्ति से उपासना करते हैं। चैतन्य ने वही किया। रजोगुण से शक्ति की उत्पत्ति होती है। इसकी उपासना युद्ध द्वारा होती है। वह हम करते हैं। तमोगुण से भगवान मूर्ति धारण करते है। उसमें उपहार द्वारा पूजा होती है। वह सर्व-साधारण करते हैं अब समझे ?'

'समझ गया। सन्तान-गण उपासक-सम्प्रदाय से हैं।'

'ठीक है। हम लोग राज्य नहीं चाहते। केवल दुष्टों का विनाश चाहते हैं।'

बातचीत समाप्त कर सत्यानन्द महेन्द्र के साथ मठ के देवालय में गए, जहां भगवान विष्णु की मूर्ति विराजमान थी। उस समय वहां अपूर्व शोभा थी। मन्दिर आलोकित हो रहा था। राशि-राशि मन्दिर और देवमूर्ति दमक रहे थे। सुगन्धित धूम्र वायुमण्डल में आच्छादित था। मन्दिर में एक पुरुष बैठा 'हरे मुरारे' गां रहा था। सत्यानन्द के वहां पहुचते ही उसने उठकर प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा, 'तुम दीक्षित होगे ?'

'कृपा कीजिए।'

स्वामीजी ने महेन्द्र और उसे दोनों का सम्बोधन करके पूछा, 'तुम लोग यथा-विधि स्नान कर, उपवास कर चुके हो ?'

'हम लोग उपवास कर चुके हैं।'

'भगवान के समक्ष प्रतिज्ञा करो कि सन्तान-धर्म के सब नियमों का पालन करोगे?'

'मैं नियमों का पालन करूंगा।' दोनों ने एक स्वर में कहा।

'जब तक माता का उद्धार न हो, तब तक गृह-धर्म में लिप्त न होगे।'

'यही होगा।'

'माता-पिता का त्याग करोगे ?'

'करूंगा।'

'भ्राता-भगिनी ?'

'त्याग करूंगा।'

'पुत्र-पत्नी।'

'त्याग करूंगा।'

'आत्मीय-स्वजन ?'

'इन सबका त्याग करूंगा।'

'धन सम्पदा।'

'सबका परित्याग करूंगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'इन्द्रियजित् रहोगे ! नारियों के साथ कभी एक आसन पर न बैठोगे ?'

'हम इन्द्रियों को वश में रखेंगे।'

'भगवान के समक्ष प्रतिज्ञा करो, अपने या अपने स्वजनों के लिए धनोपार्जन नहीं करोगे ? जो कुछ उपार्जन करोगे उसे वैष्णव-कोष में जमा करोगे ? सनातन-धर्म की रक्षा के लिए स्वयं अस्त्र ग्रहण कर युद्ध करोगे ?'

'करेंगे।'

'रण में कभी पीठ न दिखाओगे ?'

'कभी नहीं।'

'यदि प्रतिज्ञा भंग होगी तब ?'

'जलती चिता में प्रवेश कर अथवा विषपान कर प्राण त्याग कर देंगे।'

'तुम किस जाति के हो ? महेन्द्र कायस्थ हैं। तुम्हारी जाति क्या है ?'

मैं ब्राह्मण हूं।'

'ठीक! तुम लोगों को जाति त्याग करना होगा ? समस्त सन्तानों की एक ही जाति है। इस महाव्रत में ब्राह्मण, शूद्र का विचार नहीं है। तुम लोगों का क्या मत है ?'

'हम लोग भी जाति का विचार न करेंगे। हम सब माता की सन्तान हैं। हमारी जाति एक है।'

'अब मैं तुम लोगों को दीक्षित करूंगा। तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भंग न करना। भगवान मुरारि स्वयं उसके साक्षी हैं। वह प्रतिज्ञाभंगकारी को विनष्ट कर देंगे।'

'तथास्तु।' दोनों ने कहा।

'तुम लोग गाओ, वन्देमातरम् !'

फिर दोनों ने मिलकर मन्दिर में भक्तिभाव पूर्वक मातृ-गीत का गान किया। उसके पश्चात् ब्रह्मचारी ने उन्हें यथाविधि दीक्षित किया।

12

दीक्षा समाप्त कर सत्यानन्द महेन्द्र को एकांत स्थान पर ले गए। सत्यानन्द बोले, 'वत्स ! तुमने जो यह महाव्रत लिया है, उससे मुझे जान पड़ता है कि भगवान सन्तानों पर विशेष सदय हैं। तुम्हारे द्वारा माता का महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध होगा। जरा ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनो। तुम्हें जीवानन्द और भवानन्द के साथ वन-वन घूमकर युद्ध नहीं करना होगा। तुम पदचिह्न में वापस लौट जाओ। स्वधाम पर रहकर ही तुम्हें सन्तान-धर्म का पालन करना होगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुनकर महेन्द्र विस्मित रह गए, परन्तु वह बोले नहीं।

ब्रह्मचारी कहने लगे, 'हम लोगों के पास आश्रम नहीं है। ऐसा स्थान भी नहीं है कि यदि प्रबल सेना आकर अवरोधपूर्वक आक्रमण करे, तो हम लोग खाद्यादि के साथ फाटक बन्द करके कुछ दिन युद्ध कर सकें। हम लोगों के पास गढ़ नहीं है। वहां तुम्हारा गढ़ भी है और गांव भी। मेरी इच्छा है कि वहां एक गढ़ तैयार हो। पद्चिह्न की चहारदीवारी बनाकर उसमें घाटी, खंदक आदि युद्धोपयोगी किलेबन्दी करके जगह-जगह तोपें लगा देने से बहुत उत्तम गढ़ तैयार हो सकता है। तुम वहीं जाकर रहो। दो हजार सन्तानें वहां जाकर उपस्थित होंगी। उनसे घाटी, खंदक प्राचीर तैयार कराते रहो। वहां तुम्हें एक कारखाना बनाना होगा। वहीं सन्तानों का अर्थ-भण्डार होगा। सोने से भरे संदूक तुम्हारे पास पहुंचेंगे। तुम उस धन-राशि से यह सब तैयार कराना। मैं विदेश जा रहा हूं। वहां से कुछ अच्छे कारीगर भेजूंगा। उनके आ जाने पर तुम पद्चिह्न में कारखाना तैयार कराना। वहां तोपें, गोले, बारूद, बन्दूक बनवाना। इसीलिए मैं तुम्हें घर जाने को कह रहा हूं।'

महेन्द्र ने स्वीकार करके सिर झुका लिया।

महेन्द्र को विदा करके उसके साथ वाली दूसरी सन्तान को सत्यानंद ने अपने पास बुलाया। सत्यानन्द ने उसे आशीर्वाद देकर बैठाया। फिर कुछ मीठी बातें करके बोले, 'भगवान कृष्ण में तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति है या नहीं ?'

'कैसे बताऊं ? मैं जिसे भक्ति समझता हूं वह शायद आत्मप्रतारणा मात्र हो।'

'तुम्हारी भक्ति प्रगाढ़ता की ओर अग्रसर हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं। तुम अभी आयु में बहुत कम हो। तुम्हें क्या कहकर बुलाऊं, अभी तक मैंने यह नहीं पूछा।'

'आपकी जो इच्छा हो। मैं वैष्णवों का दासानुदास हूं।'

'तुम्हारी नई आयु देखकर तुम्हें नवीनानन्द कहने की इच्छा होती है। तुम अपना यही नाम रखो, परन्तु तुम्हारा पहला नाम क्या है ? यदि बताने में कोई बाधा हो, तब भी बता देना। मुझसे कहने पर बात दूसरे के कानों में नहीं पहुंचेगी। अवाच्य बात गुरु से कह देनी चाहिए। कहने में कोई हानि न होगी।'

'मेरा नाम शांतिराम शर्मा है।'

'तुम्हारा नाम शांतिमणि पापिष्ठा है।'

यह कहकर सत्यानंद ने उसकी काली-काली दाढ़ी को बांए हाथ से पकड़कर खींच लिया। नकली दाढ़ी पृथक हो जाने पर सत्यानंद बोले, 'बेटी ! तुम मुझे ही ठगना चाहती थीं ? इस आयु में डेढ़ हाथ की दाढ़ी तुम्हारी कैसे हो सकती थी ? तुम्हारा स्वर, तुम्हारी कोमल दृष्टि, क्या छिप सकती हैं ? मैं यदि इतना अबोध होता तो क्या इतने बड़े काम में हाथ डालता ?'

शांति कुछ देर अपनी आंखों पर हाथ रखे बैठी रही। फिर हाथ हटाकर सत्यानन्द की ओर देखकर बोली, 'प्रभु ! तो इसमें दोष ही क्या है ? स्त्री की बाहुओं में क्या बल नहीं होता ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बहुत कम।'

'संतानों के बाहुबल की परीक्षा कभी आपने की है ?'

'की है।'

यह कहकर सत्यानन्द एक इस्पात का धनुष और लोहे का थोड़ा तार ले आए। उसे शांति को देते हुए बोले, 'वे इस इस्पात के धनुष पर लोहे के तार की डोरी चढ़ाते हैं। इसकी प्रत्यंचा का परिणाम दो हाथ होता है। डोरी चढ़ाते समय धनुष सीधा हो जाता है और चढ़ाने वाले को दूर फेंक देता है। जो इसे चढ़ा सकता है, वह प्रकृत बलवान है।'

शांति ने धुनष और तार को अच्छी तरह देखकर पूछा, 'क्या सभी संतान इस परीक्षा में उतीर्ण हुए हैं ?'

'नहीं, इसके द्वारा केवल उन लोगों के बल की थाह मापी जाती है।'

'क्या कोई भी इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका है ?'

'केवल चार व्यक्ति अभी तक उत्तीर्ण हुए हैं।'

'क्या मैं पूछ सकती हूं कि वे कौन-कौन हैं ?'

'कोई निषेध नहीं है। एक तो मैं स्वयं हूं।'

'और ?'

'जीवानन्द, भवानन्द और ज्ञाननन्द।'

शांति ने धनुष और तार लिए और एक झटके में उस पर प्रत्यंचा चढ़कार धुनष सत्यानन्द के पैरों के पास फेंक दिया।

सत्यानन्द स्तंभित रह गए। फिर कुछ देर बाद बोले, 'यह क्या ! तुम देवी हो या दानवी !'

शांति ने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं सामान्य मानवी हूं, परन्तु ब्रह्मचारिणी हूं।'

'क्या तुम बाल-विधवा हो ? नहीं, बाल-विधवा में इतना बल नहीं होता। वह एकाहारी होती है।'

'तब तुम कौन हो ?'

'मैं सधवा हूं महाराज ! मेरा पति जीवित है।'

'तो क्या तुम्हारे स्वामी का पता नहीं है ?'

'उनका मुझे पता हैं । मैं उन्हीं के उद्देश्य से यहां आई हूं।'

सहसा सत्यानन्द की स्मृति जाग पाती। उन्होंने कहा, 'याद आ गया। जीवानन्द की स्त्री का नाम शांति है। क्या तुम जीवानन्द की पत्नी हो ?'

शांति लजा गई। उसने अपनी जटाओं से मुंह ढांप लिया।

'तुम यह पापाचार करने क्यों आई हो ?' सत्यानन्द ने पूछा।

शांति गम्भीर वाणी में बोली, 'इसमें पापाचार क्या है प्रभु ? पत्नी यदि पति का अनुसरण करे, तो यह पापाचार कैसे हुआ ? सन्तान-धर्म के शास्त्र में यदि इसे पापाचार कहते हैं, तो सन्तान-धर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूं। वह धर्माचरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवृत हैं। मैं भी उनके साथ धर्माचरण के लिए आई हूं।'

शांति की तेजस्विनी वाणी सुनकर सत्यानन्द बहुत प्रसन्न हुए। वह बोले, 'तुम साध्वी हो, लेकिन देखो बेटी ! पत्नी केवल ग्रह-धर्म में ही सहधर्मिणी होती है, वीर-धर्म में रमणी का क्या काम है ?'

'बिना पत्नी के आज तक कौन महावीर हो सका है ? सीता के न रहते क्या राम वीर हो सकते थे ? अर्जुन के कितने विवाह हुए थे, जरा गिनिए तो। भीम में कितना बल था ? उतनी ही क्या उनकी पत्नियां नहीं थीं ? कितना गिनाऊं ? फिर क्या यह सब आपको बताने की आवश्यकता है ?'

'बात ठीक है, परन्तु रण-क्षेत्र में कौन वीर पत्नी को साथ ले गया था ?'

'अर्जुन ने जब दानवी सेना के साथ अन्तरिक्ष में युद्ध किया था तो रथ को कौन चला रहा था ? दौपदी के साथ न रहते क्या पाण्डव कभी कुरुक्षेत्र में जूझ सकते थे ?'

'सामान्य मनुष्यों का हृदय स्त्रियों पर आसक्त रहता है और वहीं उन्हें कार्य से विमुख करता है। इसलिए सन्तानों का यह व्रत है कि वे कभी स्त्री के साथ न बैठेंगे। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। क्या तुम मेरा दाहिना हाथ काटने को यहां आई हो ?'

'मैं आपके दाहिनी हाथ में बल बढ़ाने के लिए आई हूं। मैं ब्रह्मचारिणी हूं और प्रभु के समीप ब्रह्मचारिणी ही रहूंगी। मैं धर्माचरण के लिए आई हूं, स्वामी-दर्शन के लिए नहीं। विरह-यंत्रण से मैं कातर नहीं हूं। पतिदेव ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसी की भागिनी बनने के लिए यहां आई हूं।'

'मैं कुछ दिन तुम्हारी परीक्षा करके देखूंगा।'

'क्या मैं आनन्द-मठ में रह सकूंगी ?'

'आज और कहां जाओगी ?'

'आज के बाद ?'

'मां भवानी के समान तुम्हारे ललाट पर अग्नि-तेज है। सन्तान सम्प्रदाय को तुम क्यों भस्म करना चाहती हो ?'

सत्यानन्द ने आशीर्वाद देकर शांति को विदा किया।

शांति मन-ही-मन बोली, 'रहो, बूढ़े भगवान् ! मेरे कपाल में आग है।'

13

शांति को रात्रि भर के लिए मठ रहने की अनुमति मिली थी। वह अपने ठहरने के लिए कमरा खोज रही थी। अनेकों कमरे खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नाम का परिचारक

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, जो छोटी पद्वी का संतान था। वह हाथ में दीपक लेकर शांति को कमरे दिखाने लगा। उनमें से कोई शांति को पसन्द नहीं आया। हारकर गोवर्द्धन शांति को सत्यानन्द के पास ले जाने लगा। शांति बोली, 'भाई सन्तान ! उधर की तरफ जो कमरे हैं, उन्हें नहीं दिखाया आपने।'

गोवर्द्धन बोला, 'वे सब कमरे संतानों के हैं।'

'उनमें कौन निवास करते हैं ?'

'बड़े-बड़े सेनापति।'

'बड़े-बड़े सेनापति कौन-कौन हैं आपके ?'

'भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द और ज्ञानानन्द।'

'चलो जरा उनके कमरे भी तो देख आऊं।'

गोवर्द्धन पहले शांति को धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोण-पर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्यु ने किस तरह सप्त-महारथियों के साथ युद्ध किया था, उसमें वही विवरण था। शांति बिना कुछ बोले आगे बढ़ गई।

फिर शांति ने भवानन्द के कमरे में प्रवेश किया। उस समय भवानन्द ऊर्ध्वदृष्टि से किसी के चेहरे की स्मृति में लीन थे। वह किसका चेहरा था, यह वह नहीं जानते थे, परन्तु चेहरा बहुत सुन्दर था।

कैसी अनुपम शोभा थी, भवानन्द यही सोच रहे थे। उन्होंने कोई बात न कही। कल्याणी के रूप से उनका हृदय कातर था। शांति के रूप की ओर उनका ध्यान ही न गया।

शांति फिर तीसरे कमरे में गई। उसने पूछा, 'यह किसका कमरा है ?'

'जीवानन्द स्वामी का।'

'वह कहां है ? इस कमरे में तो कोई नहीं है।'

'कहीं गए होंगे, अभी आ जाएंगे।'

'यह कमरा सब कमरों से उत्तम है।'

'भला यह कमरा ऐसा कैसे न होगा !'

'क्यों ?'

'क्योंकि जीवानन्द स्वामी इसमें रहते हैं।'

'मैं इसी में रह जाती हूं। वह कोई दूसरा कमरा खोज लेंगे।'

'ऐसा कैसे हो सकता है ? जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें चाहे मालिक समझिए, या जो समझिए, वह जो कहते हैं यहां वही होता है।'

'तुम आओ, मुझे जगह न मिलेगी तो पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी।' शांति ने यह कहकर गोवर्द्धन को विदा कर दिया। कमरे में प्रवेश करके शांति जीवानन्द के आसन पर बैठकर किताब पढ़ने लगी।

कुछ देर पश्चात जीवानन्द वहां आए। शान्ति का यद्यपि पुरुष-वेश था, फिर भी उन्होंने आते ही उसे पहिचान लिया। वह बोले, 'यह क्या शांति ! तुम यहां कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आई ?'

शांति ने पुस्तक रखकर जीवानन्द के चेहरे की ओर देखकर कहा, 'महाशय ! शांति कौन है ? मैं तो शांति नहीं हूं।'

जीवानन्द भौंचक्के से रह गए। वह बोले, 'शांति कौन है ? क्या तुम शांति नहीं हो ?'

शांति बोली, 'जी नहीं। मैं नवीनानन्द स्वामी हूं।' यह कहकर वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानन्द हंस पड़े। बोले, 'यह नया तमाशा बहुत सुन्दर रहा। अच्छा श्री नवीनानन्द जी ! तुम क्या सोचकर यहां पहुंचे हो ?'

शांति बोली, 'भले आदमी को पहली भेंट में, 'श्रीमान्' या 'महाशय' आदि शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए। मैं भी आपसे उसी प्रकार बातें कर रहा हूं। आप मुझे 'तुम-तुम क्यों कहते हैं ?'

'जो आज्ञा' कहकर गले में कपड़ा डालकर हाथ जोड़कर जीवानन्द बोले, 'अब विनीत भाव से निवेदन है कि किस कारण मसईपुर से इस दीन-भवन में महाशयजी का शुभागमन हुआ ? आज्ञा कीजिए ?'

शांति गम्भीरतापूर्वक बोली, 'व्यंग करने की आवश्यकता नहीं है। मैं मसईपुर को पहिचानता भी नहीं। मैं सन्तान-धर्म ग्रहण करने के लिए आज ही आकर दीक्षित हुआ हूं। मेरा पहला नाम शांतिराम शर्मा था। आज गुरुजी ने मुझे जो नया नाम दिया है वह नवीनानन्द स्वामी है।'

'सर्वनाश ! क्या सचमुच ?'

'सर्वनाश क्यों ? आप भी तो दीक्षित हैं ? क्या आप दीक्षित नहीं हैं ? क्या दीक्षित होने से सर्वनाश होता है ?'

'परन्तु तुम तो स्त्री हो शांति !'

'वह कैसे ? ऐसी बात आपने कैसे कही ?'

'मेरा विश्वास है कि तुम ब्राह्मणी हो।'

'ब्राह्मणी ! यह तुम क्या कह रहे हो ?'

'मैं तो अपने मन से ठीक ही कह रहा हूं।'

'आपको विश्वास है कि मैं ब्राह्मणी हूं ?'

जीवानन्द ने फिर गले में कपड़ा डालकर विनीत भाव से कहा, 'अवश्य महाशयजी !'

'यदि ऐसी उपहास की बात आपके मन में है, तो बताओ आपका क्या कर्त्तव्य है ?'

'आपके शरीर के कपड़ों को बलपूर्वक हटाकर अपनी अधर-सुधा का पान करना।'

'यह आपकी दुष्ट बुद्धि है या मेरे प्रति असाधारण भक्ति का परिचय ? आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षा के अवसर पर शपथ ली है कि आप स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे। यदि आपका यह विश्वास हो कि मैं स्त्री हूं, तो आपके लिए यही उचित है कि आप मुझसे अलग आसन पर बैठें। मुझसे तो आपको बातें भी नहीं करनी चाहिए।'

यह कहकर शांति ने पुस्तक पढ़नी आरम्भ कर दी। अन्त में परास्त होकर जीवानन्द पृथक आसन पर बैठ गए।

14

भगवान् की कृपा से अकाल समाप्त हुआ। उस अकाल के कारण बंगाल के लाखों नर भूखे मरकर यमपुरी पहुंच गए। नए वर्ष में देवता प्रसन्न हुए। अच्छी वर्षा हुई। जो लोग बचे थे, उन्होंने पेट भर भोजन पाया। अल्पाहार के बीमारों को स्वास्थ्य-लाभ मिला। पृथ्वी हरी-भरी हुई। गांव-के-गांव अकाल में खाली हो गए थे। पशुओं की चारागाहें बनों में बदल गई थीं। उपजाऊ भूमि जंगलों में बदल गई थी। बंगाल-प्रदेश जंगल से भर गया था। जहां हंसती हुई हरित भूमि थी, जहां असंख्य गउएं थी, वे वनों में बदल गईं। एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष बीत गए। जंगल बढ़ते ही गए। मनुष्यों के रहने के स्थान हिंसक पशुओं के निवास-स्थान बन गए। जिन गांवों में युवतियां आमोद-प्रमोद करती थीं, वहां भालुओं तथा जीव-जन्तुओं का लालन-पालन शुरू हो गया था।

सन्तान-सम्प्रदाय नित्य विष्णुपाद्-पद्मों की पूजा करने लगा। जिनके घर में पिस्तौल बन्दूकें थीं, संतानगण उन्हें छीन लाए। भवानन्द ने अपने सहयोगियों से कह दिया, 'जिनके घर भी अस्त्र-शस्त्र देखो, छीन लाओ। धन किसी का न छीनना।'

वे लोग गांव-गांव में अपनी संतानों को भेजने लगे। वे लोग हिन्दुओं से कहते थे, 'विष्णु की पूजा करो ?' बीस-पच्चीस संतान किसी मुसलमान बस्ती में पहुंच जाते तो उनके घरों में आग लगा देते। उनका सर्वस्व लूटकर हिन्दुओं में बांट देते। लूट का माल पाने पर लोग संतान बन जाते थे। लोगों ने देखा कि संतान बनने में बड़ा लाभ है। दिन-प्रतिदिन संतानों की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सौ-सौ, मास में हजार-हजार की संख्या में ग्रामीण लोग संतान बनकर उनकी वृद्धि करने लगे। संतानों की संख्या अनन्त होने लगी। वे लोग जहां नवाब के सिपाहियों को पाते थे, अच्छी तरह उनकी मरम्मत करते और उन्हें जान से मार डालते थे। जहां सरकार खजाना पाते, उसे लूट लेते थे। मुसलमानों के गांव भस्म किए जाने लगे। नवाब यह सुनकर अपने सैनिकों को उनके दमन के लिए भेजते थे, परन्तु उस समय तक संतान दल-बद्ध और सशस्त्र हो गए थे। उनके तेज के सामने मुसलिम फौज नहीं ठहर पाती थी। कभी कोई संतानों का दल यदि परास्त भी हो जाता था तो तुरन्त दूसरा बड़ा दल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर मुसलमान फौज को समाप्त कर देता था। उसी समय वारेन हेस्टिंग्स भारत के गवर्नर जनरल बने।

हेस्टिंग्स साहब ने पहिले देशी सेना से विद्रोह को दबाने की चेष्टा की, परन्तु देशी सिपाही जहां हरिनाम सुनते, भाग खड़े होते थे। तब वारेन हेस्टिंग्स ने कप्तान टॉमस सेनापति को गोरी फौज देकर विद्रोह दमन करने के लिए भेजा।

कप्तान टॉमस ने विद्रोह-दमन के लिए गोरी पल्टन के साथ नवाब की सेना से मिलकर एक बड़ी सेना तैयार की। फिर उस सम्मिलित सेना के टुकड़े-टुकड़े करके उपयुक्त नायकों के हाथों में सौंप दिया। उन्हें आज्ञा दी कि जहां संतानों को पाओ, जानवरों की तरह मारो। गोरी सेना को अपने बल पर गर्व था, परन्तु टॉमस की सेना संतानों को नष्ट न कर सकी। उस समय संतान असंख्य थे और प्रदेश भर में फैले हुए थे।

कम्पनी की एक कोठी शिवग्राम में थी। डॉनीवर्थ साहब उस कोठी के अध्यक्ष थे। रेशम-कोठी की रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध था। उन्होंने अपने स्त्री बच्चों को कलकत्ता भेज दिया था। डॉनीवर्थ को संतानों ने बहुत सताया हुआ था। तभी टॉमस सेना लेकर वहां पहुंच गए। कप्तान साहब जो बहुत-सी खाद्य-सामग्री गाड़ियों पर लदवाकर ले गए थे, उसे देखकर डोम-चमारों का दल उस पर टूट पड़ा, परन्तु सिपाहियों की संगीनों से डरकर उन्हें भाग जाना पड़ा। टॉमस ने कलकत्ता रिपोर्ट भेजी, 'हमने आज 157 सिपाहियों को लेकर 14,730 विद्रोहियों को परास्त कर दिया। विद्रोहियों के 2153 व्यक्ति मरे, 1223 घायल हुए, 7 व्यक्ति बन्दी हैं।' इस सूचना की केवल अन्तिम संख्या सत्य थी। कप्तान टॉमस अब रौब-दाब के साथ इधर-उधर ठाट से घूमने लगे। उन्होंने डॉनीवर्थ से कहा, 'अब आपको डरने की आवश्यकता नहीं है। विद्रोहियों का दमन हो गया है। अब आप अपनी स्त्री-बच्चों को यहां बुला लें।'

डॉनीवर्थ बोले, 'ऐसा ही करूंगा, परन्तु आप दस दिन और ठहरें। विद्रोहियों को जरा और शांत होने दें।' डॉनीवर्थ के पास पल्टन की मुर्गियां थीं और बहुत अच्छा पनीर।

उधर भवानन्द सोच रहे थे कि कब कप्तान टॉमस का सिर काटकर द्वितीय शम्बरारि की उपाधि ग्रहण करें।

साहब बहादुर टॉमस शिकार के बहुत शौकीन थे। कभी-कभी वह शिवग्राम के निकट जंगल में शिकार खेलने निकल जाते थे। एक दिन डॉनीवर्थ के साथ अनेक शिकारियों को लेकर टॉमस शिकार के लिए गए। टॉमस साहसी व्यक्ति थे। उस जंगल में शेर, भालू आदि हिंसक जन्तुओं का बाहुल्य था। बहुत दूर निकल जाने पर साथ के शिकारियों ने आगे बढ़ने को मना कर दिया। वे बोले, 'अब अन्दर जाने का मार्ग नहीं है।' डॉनीवर्थ ने भी उस भयानक वन में जाने से इंकार कर दिया। वे सब वापस लौटना चाहते थे, परन्तु कप्तान टॉमस बोले, 'तुम लोग लौट जाओ। मैं नहीं लौटूंगा।' यह कहकर वह भयानक जंगल में घुस गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस जंगल में वास्तव में कोई मार्ग नहीं था। साहब ने घोड़ा भी छोड़ दिया और कंधे पर बन्दूक रखकर पैदल ही आगे बढ़े। उसमें प्रवेश कर वह शेर की खोज करने लगे, पर शेर न मिला। फिर देखा कि वहां एक बड़े पेड़ के नीचे खिले पुष्पों के बीच एक नवीन संन्यासी बैठा था। कप्तान टॉमस पहले कुछ विस्मित हुए और फिर उन्हें क्रोध आया। वह थोड़ी बहुत हिन्दी बोल लेते थे। वह बोले, 'टुम कौन हो ? यहां क्यों बैठे हो ?'

'मैं संन्यासी हूं। संन्यासी जंगल में ही रहते हैं।'

'टुम रीबल है।'

'रीबल क्या होता है ?'

'हम टुमको गोली मारेगा।'

'मारो गोली।'

कप्तान साहब सोच रहे थे कि गोली मारें या न मारें। उसी समय विद्युत्-वेग से संन्यासी ने उन पर आक्रमण कर उनकी बन्दूक छीन ली। कप्तान टॉमस ने देखा कि उसके सामने एक अपूर्व सुन्दरी खड़ी थी। सुन्दरी ने हंसते हुए कहा, 'साहब! हम लोग स्त्री हैं। किसी को चोट नहीं पहुंचातीं। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं कि जब हिन्दू-मुसलमानों में लड़ाई हो रही है तो तुम लोग उसमें क्यों बोलते हो? तुम अपने घर लौट जाओ।'

'टुम कौन हो ?'

'देखते नहीं, मैं संन्यासिनी हूं। जिन लोगों से लड़ने आए हो, उन्हीं में से मैं भी एक स्त्री हूं।'

'टुम हमारा घर में रहेगा ?'

'तुम्हारी स्त्री बनकर ?'

'इसी माफिक रहने शकता है, शादी नहीं करेगा।'

'मुझे भी एक बात पूछनी है। हमारे घर में एक सुन्दर बन्दर था। वह हाल में ही मर गया है। उसकी जगह खाली है। तुम उसके दड़बे में रहोगे ? हमारे बागीचे में खूब केला होता है।'

'टुम बड़ी स्प्रिटेड वूमेन है। टुमारी करेज पर हम खुश है। टुम हमारा घर में चलो। टुमारा आडमी लड़ाई में मरेगा। टब टुम क्या करेगा ?'

'तब हमारी एक शर्त हो जाए। युद्ध तो दो-चार दिन में होगा ही। अगर तुम जीतोगे तो मैं तुम्हारी उप-पत्नी होकर रहूंगी। अगर हम लोग जीते, तो तुम हमारे घर के उसी दड़बे में बन्दर बनकर रहोगे।

'केला बहुत अच्छी चीज है। अभी तुम्हारे पास है ?'

'लो अपनी बन्दूक। ऐसे बेवकूफ के साथ कौन बातें करे ?' यह कहकर शांति बन्दूक फेंककर हंसती हुई भाग गईं।

शांति टॉमस साहब के पास से भागकर खो गई। थोड़ी देर पश्चात साहब ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुर कण्ठ से गाना सुना।

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

उसके साथ ही पुरुष-कण्ठ का स्वर सुना !

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

दोनों स्वरों की झंकार ने जंगल की समूची लताओं को कंपा दिया।

वहीं शाखा-पल्लवों में छिपी एक छोटी कुटी थी। उसकी काठ की जमीन पर मिट्टी पटी थी। शांति ने द्वार खोलकर उसी के अन्दर प्रवेश किया। वहां जीवानन्द बैठे सारंगी बजा रहे थे।

जीवानन्द ने शांति को देखकर पूछा, 'इतने दिनों के बाद गंगा में जल कुछ बढ़ा है क्या ?'

शान्ति ने हंसते हुए कहा, 'बढ़ा हुआ गंगा-जल ही क्या पालों को डुबोता है ?'

जीवानन्द ने दुःखी होकर कहा, 'देखो शांति ! एक दिन तो व्रत भंग होने के कारण प्राण उत्सर्ग करूंगा ही। जो पाप हुआ है उसका प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। अब तक प्रायश्चित कर चुका होता, परन्तु केवल तुम्हारे अनुरोध के कारण न कर सका। परन्तु अब किसी दिन यह भी सम्भव हो जाएगा। इस प्राण का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन...।'

शांति बात काटकर बोली, 'मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूं, सहधर्मिणी हूं, धर्म में सहायक हूं। तुमने अतिशय गुरु-धर्म ग्रहण किया है। उसी धर्म में सहायता के लिए मैं आई हूं। हम दोनों ही एक साथ रहकर उस धर्म में सहायक होंगे। इसीलिए मैं घर त्यागकर आई हूं। मैं तुम्हारे धर्म में वृद्धि ही करूंगी। विवाह इस जीवन के लिए भी है और उस जीवन के लिए भी। इस जीवन के लिए जो विवाह है, समझ लो वह हमने किया ही नहीं। हम लोगों का विवाह केवल उस जीवन के लिए ही हुआ है। फिर प्रायश्चित की बात ही क्यों ? तुमने कौन-सा पाप किया है ? तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठोगे। कौन कहता है कि तुम किसी स्त्री के साथ एक आसन पर बैठते हो ? फिर प्रायश्चित क्यों ? हाय रे प्रभु ! तुम मेरे गुरु हो, क्या मैं तुम्हें धर्म सिखाऊं ? मैं तुम्हें वीर-धर्म सिखाऊं ?'

जीवानन्द ने आह्लाद से गद्‌गद् होकर कहा, 'प्रिये ! सिखाओ तो सही।' शांति प्रसन्नचित्त से कहने लगी, 'और भी देखो, गोस्वामी जी ! इस जीवन में ही क्या हमारा विवाह निष्फल हुआ है ? तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं तुमसे प्रेम करती हूं। इससे बढ़कर और कौन-सा फल हो सकता है ? बोलो वन्देमातरम् !' इसके बाद दोनों ने एक स्वर से 'वन्देमातरम्' गाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15

भवानन्द स्वामी एक नगर में पहुंचे। उन्होंने एक गली में प्रवेश किया। गली के दोनों ओर ऊंची अट्टालिकाएं थीं। केवल दोपहर के समय वहां भगवान सूर्य झांकते थे। उसके बाद अन्धकार छा जाता था। गली में घुसकर पास के एक दो मंजिले मकान में भवानन्द ने प्रवेश किया। नीचे की मंजिल में एक स्त्री रसोई बना रही थी। भवानन्द स्वामी वहां पहुंचे ? वह स्त्री अर्धवयस्क, काली-कलूटी थी। भवानन्द महाप्रभु बोले, 'भाभी राम राम ! प्रणाम भाभी !'

भाभी भवानन्द को देखकर अपने हटे हुए कपड़े ठीक करने लगी। इच्छा हुई कि सिर का जूड़ा खोल डाले, परन्तु खोल न सकी। उसके हाथ में कलछी थी। वह बोली, 'कौन, गोसाईं ठाकुर ! आओ आओ लेकिन यह हमें राम राम के साथ प्रणाम क्यों ? अच्छा, मन से कहते हो, तो कह लो। प्रणाम किया ही है तो खुश रहो। तुम्हें प्रणाम करना भी चाहिए। मैं उम्र में बड़ी जो हूं। लेकिन आखिर हो तो तुम गोसाईं ठाकुर।' गौरी बोली।

भवानन्द स्वामी से गौरी की उम्र पर्याप्त बड़ी थी। चतुर भवानन्द बोले, 'यह क्या भाभी ? तुम्हें रसीली देखकर भाभी कहता हूं। नहीं तो हिसाब लगाया था तो तुम मुझसे छः वर्ष छोटी निकली थीं। क्या याद नहीं है ? हम लोगों में सब तरह के वैष्णव हैं। इच्छा है कि मठाधारी ब्रह्मचारी के साथ तुम्हारी सगाई करा दूं। यही कहने आया हूं।'

'यह कैसी बात ? अरे राम-राम ! ऐसी बात भला कहीं की जाती हैं। मैं ठहरी विधवा औरत। मैं क्या शादी कर सकती हूं ?'

'तो न होगी शादी ?'

'तुम जैसा समझो, वैसा करो। तुम लोग पंडित ठहरे। हम औरत हैं, क्या समझे? तो कब होगी वह ?'

भवानन्द ने बड़ी कठिनाई से हंसी रोककर कहा, 'बस एक बार उस ब्रह्मचारी से भेंट होते ही पक्की हो जाएगी। उनकी क्या दशा है ?'

गौरी जल उठी। मन में सन्देह हुआ कि सम्भवतः शादी की बात खेल थी। बोली, 'है जैसी है, वैसी ही है।'

'तुम जरा जाकर एक बार देख आओ। कह देना कि मैं आया हूं। मिलना चाहता हूं।'

गौरी दाल-भात छोड़कर, छम-छम करती हुई, सीढ़ियां तोड़ती ऊपर चढ़ने लगी। एक कमरे में जमीन पर चटाई बिछाए एक अपूर्व सुन्दरी बैठी थी, परन्तु उस सौंदर्य पर एक काली छाया थी। ललाट उज्ज्वल था और उस पर पतली तूलिका से खिंची भौंहें थीं। मृग-नयन चंचल थे, परन्तु कटाक्षमय नहीं थे। अधरों पर दाड़िम-लालिमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। वे सुधारसपूर्ण थे, परन्तु आज उनमें दीप्ति नहीं थी। शायद वह यौवन भी ढलने लगा था। पहिले मनुष्य-लोक की अतुलनीय सुन्दरी दिखती थी वह, अब जान पड़ता था कि स्वर्ग की शाप-ग्रस्त देवी थी। उसके चारों ओर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं। खूंटी पर तुलसी की माला लटक रही थी। भवानन्द ने प्रवेश किया।

'कल्याणी ! शरीर से कुशल तो हो ?' भवानन्द ने पूछा।

'यह प्रश्न करना न छोड़ेंगे आप ? मेरी शारीरिक कुशलता से आपका क्या सम्बन्ध ?' कल्याणी ने उत्तर दिया।

'जो व्यक्ति वृक्ष लगाता है, उसे जल देता है, वह उसके फलने-फूलने से ही सुख पाता है। तुम्हारे मृत शरीर को मैंने नवजीवन प्रदान किया था। वह बढ़ रहा है या नहीं, मैं यह पूछना चाहता हूं।'

'विष-वृक्ष व्यर्थ होता है ब्रह्मचारी !'

'यह जीवन क्या विष है ?'

'न होता तो मैं उसे ध्वंस करने को उद्यत ही क्यों होती ? मैं विष क्यों खाती?'

'बहुत दिन से कुछ पूछने की सोच रहा था, परन्तु पूछ न सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय बनाया ?'

'मेरे जीवन को किसी ने विषमय नहीं बनाया। मेरा जीवन विषमय है, आपका भी जीवन विषमय है। सभी का जीवन विषमय है।'

'सच है कल्याणी ! मेरा जीवन तो अवश्य विषमय है। उसी दिन से तुम्हारा भी विषमय हो गया जब तुमने मुझे देखा।'

'नहीं, यह पहले ही विषमय हो चुका था।'

'अभिशाप से ?'

'मालूम नहीं।'

'विद्यार्जन में तुम्हारी कुछ प्रवृत्ति देखी थी। अब ऐसी अश्रद्धा क्यों हो गई तुम्हें?'

'आप जैसे पण्डित भी जब महापापिष्ठ हैं तो पढ़ना-लिखना व्यर्थ है। मेरे पतिदेव की क्या खबर है प्रभु ?'

'बारंबार यह बात क्यों पूछती हो तुम ? वह तो तुम्हारे लिए शव के समान हैं।'

'मैं उनके लिए मृत हूं, वह मेरे लिए नहीं।'

'वह तुम्हारे लिए मृतवत हो चुके, यही समझकर तो तुमने विष खाया था ? बार-बार यह बात क्यों कहती हो कल्याणी ?'

'मर जाने से क्या सम्बन्ध नष्ट हो जाता है ब्रह्मचारी ?'

'वह सकुशल हैं।'

'क्या पद्चिह्न में ही हैं ?'

'हां वही हैं।'

'क्या कर रहे हैं ?'

'वह दुर्ग और अस्त्र-निर्माण करा रहे हैं। उन्हीं के द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्रों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्र-सहस्र संतान सज्जित हो रहे हैं। उन्हीं की कृपा से अब हम लोगों को तोप, बन्दूक, गोला, बारूद आदि की कमी नहीं है। संतान-गुणों में वही सबसे श्रेष्ठ हैं। वह हम लोगों का महत् उपकार कर रहे हैं। वह हम लोगों के दाहिने हाथ हैं।'

'मैं प्राण त्याग न करती तो क्या इतना सबकुछ होता ? जिसकी छाती पर फूटी कलसी बंधी हो, वह क्या कभी भव-सागर पार कर सकता है ? जिसके पैरों में लोहे की बेड़ी पड़ी हों, वह क्या कभी दौड़ सकता है ? क्यों संन्यासी ! तुमने अपना क्षार सम यह जीवन क्यों रखा हुआ है ?'

'स्त्री सहधर्मिणी होती है, धर्म में सहायक होती है।'

'छोटे-छोटे धर्मों में। बड़े धर्मों के अनुसरण में वह कण्टक होती है। मैंने अपने को नष्ट करके उनके धर्म की रक्षा की थी। दुराचारी पामर ब्रह्मचारी ! तुमने मेरे प्राण क्यों बचाए ?'

'यदि यही बात है तो जो कुछ मैंने किया, उसे मुझे वापस कर दो। मैंने जो प्राण-दान दिया था, क्या तुम उसे मुझे वापस लौटा सकती हो कल्याणी ?'

'क्या आपको पता है कि मेरी पुत्री कैसी है ?'

'बहुत दिनों से उसकी खबर नहीं मिली। जीवानन्द बहुत दिन से उधर नहीं आए।'

'क्या उसकी खबर मुझे ला सकते हो ? स्वामी मेरे लिए त्याज्य हैं, परन्तु जब जिन्दा रह गई हूं तो कन्या को क्यों त्यागूं ? अब तो उसके पास जाने से ही जीवन में कुछ सुख आ सकता हे। मेरे लिए इतना आप करेंगे क्या ?'

'करूंगा कल्याणी ! तुम्हारे लिए कन्या को ला दूंगा, परन्तु उसके पश्चात् ?'

'उसके पश्चात् क्या गोस्वामी ?'

'स्वामी ?'

'उन्हें इच्छापूर्वक त्यागा है।'

'यदि उनका व्रत पूर्ण हो जाए ?'

'तो मैं उनकी हूंगी। मैं जो बच गई हूं क्या वह जानते हैं ?'

'नहीं। वह इस विषय में कुछ नहीं जानते।'

'क्या आपसे उनकी भेंट नहीं होती ?'

'होती है। होती क्यों नहीं ?'

'क्या वह मेरी बात कभी नहीं करते ?'

'नहीं ! जो स्त्री मर गई, उसका फिर पति से क्या सम्बन्ध ?'

'क्या कहा ?'

'तुम फिर विवाह कर सकती हो। तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।'

'तुम मुझे मेरी कन्या ला दो।'

'ला दूंगा। तुम फिर विवाह कर सकती हो कल्याणी !'

'तुम्हारे साथ ?'

'यही मान लो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'संतान-धर्म कहां रहेगा तुम्हारा ?'

'मैं उसे त्याग दूंगा।'

'क्या यही महाव्रत है तुम्हारा ब्रह्मचारी ? तुम किसलिए अपनी तपस्या नष्ट करना चाहते हो ?'

'तुम्हारे लिए। संतान-धर्म मेरा प्राण है। आज प्रथम बार तुमसे कहता हूं कि तुम प्राणों से भी बढ़कर हो। जिस दिन तुम्हें प्राण-दान दिया था उसी दिन मैं तुम्हारे पैरों पर गिर गया था। मैं नहीं जानता था कि संसार में कोई ऐसा रूप भी है जो मुझे इस प्रकार गिरा सकता है। ऐसी रूप-राशि जीवन में कभी नहीं देखी थी। यदि जानता तो कभी संतान-धर्म ग्रहण न करता। धर्म जल गया है, प्राण शेष हैं। गत चार वर्षों से प्राण भी जल रहा है। मैं उससे बचना नहीं चाहता। कल्याणी ! मैं जल रहा हूं, परन्तु जलने वाला ईंधन अब बहुत कम शेष रह गया है। शेष जल गया है। जिस ताप को चार वर्ष से सहन कर रहा हूं, वह अब सहा नहीं जाता। क्या तुम मेरी न होगी ?'

'तुमने एक दिन कहा था कि संतान-धर्म के नियमानुसार जिस व्यक्ति की इन्द्रियां परवश हो जाएं उसका प्रायश्चित मृत्यु है। क्या यह सच कहा था तुमने ?'

'यह सच है।'

'तो तुम्हारे लिए भी यही प्रायश्चित है।'

'मेरे लिए एकमात्र प्रायश्चित मृत्यु है।'

'मनोकामना पूरी होने पर मरोगे ?'

'निश्चय ही मरूंगा।'

'और यदि मैं मनोकामना पूरी न करूं तब ?'

'तब भी मृत्यु निश्चित है। कारण, मेरी इन्द्रियां परवश हो चुकी हैं।'

'तुम्हारी मृत्यु कब होगी ?'

'आगामी युद्ध में।'

'तो तुम विदा हो। मेरी कन्या को भिजवा देना ?'

'भिजवा दूंगा। क्या मेरे मर जाने पर तुम मुझे याद रखोगी ?'

'याद रखूंगी। व्रतच्युत विधर्मी के रूप में मैं तुम्हें याद रखूंगी।'

भवानन्द भारी मन लेकर वहां से विदा हुए।

16

भवानन्द विचारों में डूबे मठ की ओर चले। वह मार्ग में अकेले चले जा रहे थे। अकेले ही उन्होंने वन में प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि वन में उनके आगे-आगे एक आदमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला जा रहा था। उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो भाई ?'

'मैं एक राहगीर हूं।'

'वन्दे।'

'मातरम्।' उस व्यक्ति ने कहा।

'मैं भवानन्द स्वामी हूं।'

'मैं धीरानन्द हूं।'

'धीरानन्द ! कहां गए थे तुम ?'

'आपकी खोज में गया था।'

'क्यों ?'

'एक बात कहनी थी आपसे।'

'क्या बात कहनी थी ?'

'आप नगर गए थे ?'

'हां ! मैं इस समय वहीं से आ रहा हूं।'

'गौरी के घर गए थे आप ?'

'तुम भी नगर गए थे क्या ?'

'वहां एक परम सुन्दरी रहती है ?'

भवानन्द कुछ विस्मित हुए और डरे भी। वह बोले, 'यह सब कैसी बातें कर रहे हो तुम ?'

'आपने उसके साथ भेंट की थी ?'

'उसके बाद ?'

'आप उसके प्रति अनुरक्त हैं।'

'धीरानन्द ! तुमने क्यों इतनी खबर ली ? धीरानन्द ! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सत्य है, परन्तु तुम्हारे अतिरिक्त कितने लोग यह बात जानते हैं ?'

'और कोई नहीं जानता।'

'तब तुम्हारा वध करने से ही मैं मुक्त हो सकता हूं।'

'तुम यह करना चाहते हो तो कर सकते हो।'

'तब आओ, इस निर्जन स्थान में युद्ध करें। शायद तुम्हारा वध करके कलंक से बच सकूं या तुम मेरा वध कर दो ताकि यह आपत्ति टल जाए। कोई अस्त्र है तुम्हारे पास ?'

'किसकी मजाल है जो तुम्हारे समक्ष यह बात करे ? यदि युद्ध की ही तुम्हारी इच्छा है तो वही सही, परन्तु संतानों में विरोध निषिद्ध है। आत्मरक्षा के लिए किसी के साथ भी युद्ध करने में हानि नहीं है। जो बात कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, क्या वह सब सुन लेने पर युद्ध करना अच्छा न होगा ?'

'कहो, तुम क्या कहना चाहते हो ?'

भवानन्द ने तलवार निकालकर धीरानन्द के कन्धे पर रख दी। धीरानन्द फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी भागे नहीं।

'मैं कह रहा था कि तुम कल्याणी से विवाह कर लो।'

'धीरानन्द ! तुम यह भी जानते हो ?'

'विवाह क्यों नहीं कर लेते ?'

'उसके स्वामी हैं ?'

'वैष्णवों में ऐसा विवाह होता है।'

'यह नीच वैरागियों की बात है, संतानों की नहीं। संतान की शादी नहीं होती।'

'संतान-धर्म क्या परिहार्य है ? तुम्हारे तो प्राण जा रहे हैं। मेरा कन्धा कट रहा है।' धीरानन्द के कंधे से रक्त निकलकर बह रहा था।

'तुम किसलिए अधर्म-मति देने आए हो ? अवश्य ही तुम्हारा इसमें कोई स्वार्थ है।'

'वह भी कहने की इच्छा है। इस संतान-धर्म ने मेरी हड्डियों को जर्जर कर दिया है। मैं इसका परित्याग कर स्त्री-पुरुष का मुंह देखकर दिन बिताने के लिए उतावला हो उठा हूं। मैं इस संतान-धर्म का परित्याग करूंगा, लेकिन क्या मेरे लिए घर जाकर बैठने का अवसर है ? विद्रोही के रूप में मुझे अनेक लोग पहिचानते हैं। घर बैठते ही सिपाही मेरा सिर उतारकर ले जाएंगे अथवा संतान लोग ही विश्वासघातक समझकर मुझे मार डालेंगे। इसीलिए तुम्हें भी अपना साथी बना लेना चाहता हूं।'

'क्यों, मुझे क्यों ?'

'यही मेरा उद्देश्य था। संतान-गण तुम्हारे आधीन हैं। सत्यानन्द अभी यहां नहीं हैं। तुम इनके नायक हो। इस सेना को लेकर युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी, इसका मुझे विश्वास है। युद्ध में विजय प्राप्त कर क्यों नहीं अपने नाम से एक राज्य स्थापित करते ? सेना तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा होगे, कल्याणी तुम्हारी रानी होगी। मैं भी तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताऊंगा। संतान-धर्म को समुद्र में डालो।'

भवानन्द ने धीरानन्द के कन्धे पर से तलवार हटा ली। वह बोले, 'धीरानन्द! युद्ध करो ! तुम्हारा वध करूंगा। मैं इन्द्रियों के वशीभूत हूं, विश्वासघाती नहीं हो सकता। तुमने मुझे विश्वासघाती होने का परामर्श दिया है। तुम विश्वासघाती हो। तुम्हें मारने से ब्रह्महत्या न होगी। मैं तुम्हारा वध करूंगा।'

बात समाप्त होते-न-होते धीरानन्द भाग खड़े हुए। भवानन्द ने पीछा न किया। भवानन्द कुछ अनमने से हो गए। उन्होंने देखा कि धीरानन्द का कहीं कुछ पता न था।

मठ में जाकर भवानन्द फिर लौटे और जंगल में घुस गए। उस जंगल में एक प्राचीन भग्नावशेष था। उस पर घास जम आई थी। वहां असंख्य सर्पों का वास था। वह जगह साफ और ऊंची थी। भवानन्द उसी पर जाकर बैठे। बैठे हुए भवानन्द चिन्ता में निमग्न हो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात भयानक और अंधेरी थी। भूखे शेर की हुंकार और अन्यान्य पशुओं के भागने या बोलने का शब्द सुनाई दे रहा था। पक्षियों के पर फड़फड़ाने का स्वर, तो कभी भागते हुए पशुओं के पैरों की खरखराहट। उस निर्जन स्थान में अकेले भवानन्द बैठे थे। वह माथे पर हाथ रखे हुए मन में सोच रहे थे कि जो होना है, अवश्य होगा। वह सोच रहे थे कि वह इन्द्रियों के वश में हो गए, उनका मरना ही श्रेयस्कर है। धर्म-त्यागी ! वह अवश्य मरेंगे। भवानन्द बड़बड़ाने लगे, 'ये कैसे शब्द ? मुझे कौन बुला रहा है ? यह किसका शब्द है ? किसने मार्ग बताया ? किसने मरने के लिए कहा ? तुम शब्दमय हो, परन्तु ! तुम्हारे शब्द का अर्थ तो मैं स्पष्ट नहीं समझ पाया। मेरी धर्म में मति दो। मुझे पाप से विरत करो। हे धर्म-गुरुदेव ! धर्म में मेरी मति हो।'

उसी समय भीषण जंगल में मधुर प्रेम भरा मनुष्य कण्ठ सुनाई दिया, 'आशीर्वाद देता हूं। धर्म में तुम्हारी प्रवृत्ति अवश्य होगी।'

भवानन्द के रोंगटे खड़े हो गए। यह क्या ? यह तो गुरुदेव की आवाज है। 'महाराज ! आप कहां हैं ? सेवक को दर्शन दीजिए। सेवक अतल जल में डूब रहा है।'

परन्तु दर्शन किसी ने नहीं दिया। भवानन्द ने बार-बार पुकारा, परन्तु कोई उत्तर न आया। उन्होंने इधर-उधर खोजा, परन्तु वहां कोई नहीं था।

रात बीतने पर जब प्रभात के सूर्य का उदय हुआ तो भवानन्द मठ में वापस लौटे। उनके कानों में आवाज आई, 'हरे ! मुरारे ! हरे ! मुरारे !' वह पहिचान गए कि सत्यानन्द वापस आ गए।

17

जीवानन्द के कुटी से बाहर चले जाने पर शांति देवी फिर सारंगी लेकर मृदु स्वर में गाने लगी। वह गाते-गाते जब मौन हुई तो उसने सुना कि बाहर किसी ने गाना आरम्भ किया।

शांति ने भक्ति-भाव से बाहर निकलकर सत्यानन्द की पद्-धूलि ग्रहण की। वह बोली, 'प्रभु ! मेरा ऐसा कौन-सा भाग्य है कि आपका यहां दर्शन मिला। आज्ञा दीजिए, मुझे क्या करना होगा ?' यह कहकर शांति ने मधुर तान छेड़ी।

'बेटी ! तुम्हारा कुशल होगा।'

'कैसे भगवन् ! आपकी तो आज्ञा है मेरा वैधव्य !'

'तुम्हें मैं पहिचानता न था बेटी। रस्सी को बेल जानकर मैंने उसे खींचा था। तुम मेरी अपेक्षा अधिक ज्ञानी हो। इसका उपाय तुम्हीं कहो। जीवानन्द से न कहना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मैं सब कुछ जानता हूं। तुम्हारे प्रलोभन से वह अपनी जीवन-रक्षा कर सकेगा। ऐसा होने से मेरा कार्योद्धार हो जाएगा।'

शांति बोली, 'यह क्या कहते हैं महाराज ! मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं। मरना होगा तो वह मरेंगे ही, इसमें मेरी हानि क्या है ? मैं भी तो उनके साथ मरूंगी? उन्हें स्वर्ग मिलेगा, तो क्या मुझे स्वर्ग न मिलेगा ?'

'देवी ! मैं कभी हारा न था। आज तुमसे तर्क में हार मानता हूं। मां ! मैं तुम्हारा पुत्र हूं। सन्तान पर स्नेह रखो। जीवानन्द के प्राणों की रक्षा करो। इसी से मेरा कार्योद्धार होगा।'

शांति बोली, 'मेरा परम पवित्र धर्म मेरे स्वामी के साथ है। मैं उन्हें धर्म से विरत करने वाली कौन हूं ? पति स्त्री का देवता है। सबका पिता धर्म है। मेरे समीप मेरे पति बड़े हैं। उनकी अपेक्षा भी मेरा धर्म बड़ा है। उससे भी बढ़कर मेरे लिए मेरे पति का धर्म है। मैं अपने धर्म को जिस दिन चाहूं जलांजलि दे सकती हूं, परन्तु क्या मैं स्वामी के धर्म को जलांजलि दे सकती हूं महाराज ? आपकी आज्ञा पर मरना होगा तो मेरे स्वामी मरेंगे, मैं मना नहीं कर सकती। मैं भी उनके साथ मरूंगी।'

ब्रह्मचारी ने ठण्डी सांस भरकर कहा, 'मां ! इस घोर व्रत में बलिदान ही है। हम सबको बलिदान देना पड़ेगा। मैं मरूंगा, जीवानन्द, भवानन्द सभी मरेंगे, शायद तुम भी मरोगी। किन्तु देखो कार्य पूरा करके ही मरना होगा। बिना कार्य पूर्ण किए मरना किस काम का ? मैंने केवल जन्म-भूमि को ही मां माना था और किसी को मां नहीं कहा, क्योंकि सुजला माता के अतिरिक्त मेरी और कोई माता नहीं है। अब तुम्हें भी मां कहकर पुकारा है। तुम माता होकर संतानों का कार्य सिद्ध करो, जिससे हमारा कार्योद्धार हो। तुम जीवानन्द की प्राणरक्षा करना, अपनी रक्षा करना।' यह कहकर सत्यानन्द 'हरे मुरारे, मधुकैटभारे !' गाते हुए चले गए।

सन्तान-सम्प्रदाय में समाचार प्रसारित हुआ कि सत्यानन्द आ गए हैं। वह संतानों से कुछ कहना चाहते हैं। उन्होंने सबको बुलाया है। यह सुनकर दल-के-दल संतान लोग वहां आकर एकत्रित होने लगे। चांदनी रात में नदी के तट पर देवदारु के बृहत् जंगल में लगभग दस सहस्र संतान आ उपस्थित हुए। सब परस्पर सत्यानन्द के लौट आने की बातें कर रहे थे। सभी आनन्दित थे। सत्यानन्द किस लिए गए, यह वे लोग नहीं जानते थे। अफवाह यह थी कि वह सन्तानों की मंगल-कामना के लिए हिमालय पर तपस्या करने गए थे।

महाराज की तपस्या सिद्ध हुई। अब हम लोगों का राज्य होगा। सब यही कह रहे थे। सहस्र मनुष्यों के कण्ठ-स्वर से निकली गगनभेदी ध्वनि से सारा जंगल, नदी, वृक्ष, पहाड़ कांप उठे। एकाएक शब्द हुआ 'वन्देमातरम्' और लोगों ने देखा कि ब्रह्मचारी सत्यानन्द संतानों के मध्य आकर खड़े हो गए। उस समय दस सहस्र संतान उपस्थित थे। सत्यानन्द ने बहुत ही ऊंचे स्वर में अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा, 'शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी बैकुण्ठनाथ जो लोक-पालक हैं तुम लोगों की भुजाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बल प्रदान करें। तुम सब मिलकर उनका गुणगान करो।' दस सहस्र कण्ठ एक साथ गा उठे।

'जय जगदीश हरे।'

प्रार्थना के उपरान्त सत्यानन्द महाराज बोले, 'संतानों ! तुम लोगों से आज मुझे कुछ विशेष बातें कहनी हैं। टॉमस नाम के एक विधर्मी ने अनेकों संतानों का वध किया है। आज रात्रि को हम उसका ससैन्य वध करेंगे। प्रभु की यही आज्ञा है। बोलो, तुम सब लोग क्या चाहते हो ?'

संतानों की हर्ष-ध्वनि से वन गुंजायमान हो उठा। 'हम उसका ससैन्य विनाश करेंगे।' सब मुक्त कंठ से बोले, 'शत्रुओं का नाश करेंगे।' शब्द दूर के पहाड़ों से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठा।

सत्यानन्द बोले, 'इसके लिए हमें धैर्य से काम लेना होगा। शत्रुओं के पास तोपें हैं। बिना तोपों के उनके साथ युद्ध नहीं हो सकता। वे सब भी वीर-जाति के हैं। हमारे पद्चिह्न-दुर्ग से सत्रह तोपों आ रही हैं। तोपों के पहुंचते हीं हम लोग युद्ध-यात्रा करेंगे। प्रभात हुआ चाहता है।'

उसी समय जंगल में तोपों की आवाज सुनाई दी।

'गुड़म-गुड़म-गुम ! ये तोपें तो अंग्रेजों की हैं। शायद कप्तान टॉमस ने संतानों को इस जंगल में घेरकर वध करने का प्रयास किया है।' ब्रह्मचारी सत्यानन्द ने कहा। वह गम्भीर हो गए।

'गुड़म, गुड़म, गुम।' अंग्रजों की तोपें गर्जन करने लगीं। वह शब्द समूचे जंगल में सुनाई पड़ने लगा। वह ध्वनि नदी के पार सुनाई पड़ी। सत्यानन्द बोले, 'किसकी तोपें हैं ?' कई संतान तुरन्त घोड़ों पर चढ़कर देखने के लिए चल पड़े, परन्तु उन लोगों के जंगल से निकलते ही उन पर गोले आकर पड़े। वे वहीं समाप्त हो गए। दूर से सत्यानन्द ने देखा तो वह बोले, 'पेड़ों पर चढ़कर देखो ?' जीवानन्द ने पेड़ पर चढ़कर बताया, 'अंग्रेजों की तोपें हैं।'

सत्यानन्द ने पूछा, 'अश्वारोही सेना है, या पैदल ?'

'दोनों तरह की है।'

'कितनी सेना है ?'

'अनुमान नहीं लगा सकता। वे सब जंगल की आड़ से बाहर हो रहे हैं।'

'गोरे हैं या केवल देशी फौज ?'

'गोरे और देशी, दोनों हैं।'

'तुम पेड़ से उतर आओ।'

जीवानन्द पेड़ से उतरकर सत्यानन्द के पास आ गए।

'तुम दस हजार सन्तान यहां उपस्थित हो। आज देखना है कि तुम क्या कर सकते हो ? तुम आज के सेनापति हो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवानन्द हर्षोत्फुल्ल छलांग मारकर घोड़े पर सवार हो गए। उन्होंने नवीनानन्द से कुछ कहा। कोई उसे समझ न सका। नवीनानन्द ने भी संकेत का उत्तर दिया। वे दोनों ही आपस में समझ सके कि शायद यह जीवन में अंतिम भेंट है। नवीनानन्द ने भुजा उठाकर लोगों से कहा, 'भाइयो ! यही समय है, गाओ, 'जय जगदीश हरे।' दस सहस्र संतानों के सम्मिलित स्वर ने आकाश, भूमि, वन सब गुंजा दिए। तोप का शब्द उस भीषण हुंकार में खो गया। दस सहस्र संतानों ने भुजा उठाकर गाया :

'जय जगदीश हरे।'

उसी समय अंग्रेजों की तोपों के गोले संतानों पर आकर पड़ने लगे, परन्तु गाना बंद न हुआ। वे सब गाते रहे, 'जय जगदीश हरे !'

गाना समाप्त होते ही सब मौन हो गए। सारा वातावरण निस्तब्ध हो गया। केवल तोपों का गर्जन और गोरों के अस्त्रों की झंकार सुनाई पड़ने लगी।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सत्यानन्द ने पूछा, 'तोपें कितनी दूरी पर हैं?'

ऊपर से एक ने आवाज दी, 'इसी जंगल के समीप जो छोटा मठ है ? उसके पास हैं।'

'तुम कौन हो ?'

'नवीनानन्द।'

'तुम लोग दस हजार हो, तुम्हारी विजय होगी। क्या देखते हो ? छीन लो तोपें।'

अश्वारोही जीवानन्द बोले, 'आओ हम इन पर एक साथ आक्रमण करें।'

दस सहस्र संतान-सेना अश्वारोही और पैदल, तीर की तरह आगे बढ़े। पैदल संतानों के कंधों पर बंदूकें, कमर में तलवार और हाथों में भाले थे। जंगल से बाहर होते ही अनेक गोले आकर उन पर पड़ने लगे। बहत से संतान मारे गए। एक ने जीवानन्द से कहा, 'जीवानन्द ! व्यर्थ प्राणि-हत्या से क्या लाभ ?'

जीवानन्द ने मुड़कर देखा, कहने वाले भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा, 'तब क्या करने को कहते हो ?'

'वन के अन्दर रहकर वृक्षों का आश्रय लेकर अपनी प्राण-रक्षा करो। तोप के मुंह में, खुले मैदान में, बिना तोपों के संतान-सैन्य एक क्षण न टिक सकेगी। जंगल में पेड़ों की आड़ लेकर हम लोग बहुत दूर तक युद्ध कर सकते हैं।'

'तुम ठीक कहते हो, लेकिन प्रभु की आज्ञा है कि तोपें छीन ली जाएं। अतः हम लोग तोपें छीनने जाएंगे।'

'किसकी हिम्मत है जो तोपों को छीन सके ? यदि जाना ही है, तो तुम ठहरो, मैं जाता हूं।'

'यह न होगा भवानन्द ! आज मेरे ही मरने का दिन है।'

'आज मेरे मरने का दिन है।'

'मुझे प्रायश्चित करना होगा।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम्हें प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं। मेरा चरित्र कलुषित है। मुझे मरना होगा। तुम ठहरो, मैं जाता हूं।'

'भवानन्द ! तुमसे क्या पाप हुआ है, वह मैं कुछ नहीं जानता, परंतु तुम्हारे रहने से संतानों का उद्धार होगा, यह मैं जानता हूं।'

भवानन्द बोले, 'मरना ही होगा तो आज नहीं मरेंगे। जिस दिन जरूरत होगी, उस दिन मरेंगे। मृत्यु के लिए मुझे समय-काल की आवश्यकता नहीं है।'

'तब आओ, दोनों चलेंगे।'

भवानन्द सबके आगे हुए। दल-के-दल, एक-एक कर संतान गोले खाकर मरकर गिरने लगे। संतान-सैन्य खंड-खंड होने लगी। तीर की तरह बढ़ते हुए सन्तान गोले खाकर कटे वृक्षों की तरह गिरते रहे। शव पट गए। भवानन्द ने चिल्लाकर कहा, 'आज इस युद्ध में सन्तानों को कूदना है, कौन आता है हमारे साथ ?'

सहस्र-सहस्र कण्ठों से आवाज आई, 'वन्देमातरम् !' दनादन गोले आ रहे थे, परन्तु सन्तान तीर की तरह आगे बढ़ते जा रहे थे। उनका लक्ष्य तोपखाने को छीनना था।

18

दस हजार सन्तान सेना 'वन्देमातरम्' गाती हुई तोप सेना पर जा पड़ी। घनघोर युद्ध हुआ। तभी टॉमस की आज्ञा से एक सेना बन्दूकों पर संगीनें चढ़ाकर सन्तानों पर टूट पड़ी। इस मार से सन्तान निराश होने लगे। हर क्षण सैकड़ों घायल होकर गिरने लगे। तब जीवानन्द बोले, 'भवानन्द ! तुम्हारी ही राय ठीक थी। सन्तान-सैन्य का विनाश करने की आवश्यकता नहीं, लौटाओ इन्हें।'

'अब कैसे लौट सकते हैं ? अब तो यहां से जो पीछे लौटेगा, मारा जाएगा।'

'सामने और दाहिने से आक्रमण हो रहा है। आओ, धीरे-धीरे बांए होकर निकल चलें।'

'बांए घूमकर कहां जाओगे ? बांए नदी है, वर्षा से भरी हुई नदी। इधर गोलों से बचोगे तो नदी में डूब मरोगे।'

'नदी पर एक पुल है।'

'इतनी संख्या में संतान जब पुल पर एकत्र हो जाएंगे, तो एक ही तोप उनका समूल नाश कर देगी।'

'तब एक काम करो। आज तुमने जो शौर्य दिखाया है उससे तुम सब कुछ कर सकते हो। थोड़ी सैन्य के साथ तुम सामने खड़े रहो। मैं शेष सैन्य को बांए घुमाकर निकाल ले जाता हूं। तुम्हारे साथ की सेना तो अवश्य विनष्ट होगी, परन्तु शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संतान-सेना नष्ट होने से बच जाएगी।'

'मैं यही करूंगा।'

इस तरह दो हजार सैन्य के साथ भवानन्द ने फिर सामने गोलन्दाजों पर भारी आक्रमण किया। उनमें अपूर्व उत्साह था। घोर युद्ध होने लगा। गोलन्दाज सेना उनके विनाश में और तोपों की रक्षा में संलग्न थी। संतान कट-कटकर गिरने लगे, परन्तु प्रत्येक संतान अपना बदला लेकर मरता था।

उधर अवसर पाकर जीवानन्द शेष सेना के साथ बांए मुड़कर जंगल के किनारे से आगे बढ़े। कप्तान टॉमस के सहकारी लेफ्टिनेण्ट वॉटसन ने देखा कि संतानों का बहुत बड़ा दल भागने की चेष्टा से बांए घूमकर जाना चाहता है। उन्होंने देशी सिपाहियों की सेना लेकर उनका पीछा किया।

कप्तान टॉमस ने यह भी देखा कि संतान-सैन्य का प्रधान भाग गति बदल रहा है। उन्होंने अपने दूसरे सहकारी से कहा, 'मैं दो-चार सौ सिपाहियों के साथ यहां रहता हूं। तुम शेष सेना लेकर उन पर धावा बोलो। बांए से वॉटसन जा रहे हैं, दाहिने से तुम जाओ। आगे जाकर पुल का मुंह बन्द कर देना। इससे ये सब घिर जाएंगे।'

कप्तान टॉमस ने अहंकार के वश में भूल की। उसने संतान-सेना को तृणवत् समझ लिया। उसने केवल दो सौ सिपाहियों को अपने साथ रहने दिया और शेष सबको भेज दिया।

चतुर भवानन्द ने जब यह देखा कि तोपों के साथ की सेना उधर चली गई तो उन्होंने अपनी सेना को जोश दिलाया, 'क्या देखते हो ? सामने मुट्ठी भर अंग्रेज हैं। मारो ! फिर उधर जाकर जीवानन्द की सहायता करनी है। बोलो, 'जय जगदीश हरे!' संतान-सेना टॉमस की सेना पर बाज की तरह टूट पड़ी। उस आक्रमण को अंग्रेज न सह सके। वे कट कर जमीन पर बिछने लगे। भवानन्द ने जाकर कप्तान टॉमस को पकड़ लिया। भवानन्द ने कहा, 'कप्तान ! तुम्हें मारूंगा नहीं। अंग्रेज हमारे शत्रु नहीं हैं, परन्तु तुम क्यों मुसलमानों की सहायता करने आए ? तुम्हें प्राण-दान देता हूं, परन्तु अभी तुम बन्दी रहोगे। तुम हमारे मित्र हो।'

कप्तान ने भवानन्द को मारने के लिए संगीन उठाई, परन्तु भवानन्द उसे जकड़े हुए थे। वह हिल भी न सका। तब भवानन्द अपने सैनिकों से बोले, 'इन्हे घोड़े पर लादकर ले चलो। हम लोग जीवानन्द की सहायता को जाते हैं।'

संतान-सेना कप्तान टॉमस को बन्दी बनाकर भवानन्द के साथ जीवानन्द की सहायता के लिए आगे बढ़ी।

जीवानन्द की सेना का उत्साह टूट चुका था। वह भागने को तैयार थी, परन्तु जीवानन्द और धीरानन्द ने सेना को समझाकर किसी तरह ठहरा रखा था। जीवानन्द और धीरानन्द सेना को पुल की ओर ले गए। वहां पहुंचते ही एक तरफ से हेनरी ने और दूसरी तरफ से वॉटसन ने उन्हें घेर लिया। अब युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा न था और सन्तान सेना का उत्साह भंग हो चुका था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय टॉमस की तोपें पास में आ पहुंचीं। संतानों का दल एकदम छिन्न-भिन्न होने लगा। उन्हें प्राण-रक्षा की आशा न रही। जिसे जिधर राह मिली, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हें बहुत संयत करने की चेष्टा की, परन्तु कोई फल न हुआ। संतानों का दल तितर-बितर होने लगा। तभी ऊंची आवाज सुनाई दी, 'पुल पर जाओ, पुल पर जाओ, उस पार चले जाओ, अन्यथा नदी में डूब मरोगे। अंग्रेजों की सेना की तरफ मुंह किए हुए पुल पर चले जाओ।'

जीवानन्द ने देखा कि कहने वाला भवानन्द था। भवानन्द ने कहा, 'जीवानन्द! तुरन्त सैन्य को पुल पर ले जाओ। दूसरे प्रकार से रक्षा नहीं है।' यह सुनते ही संतान पुल पर पहुंचने लगे। थोड़ी ही देर में सब संतान-सेना पुल पर जा पहुंची। अब भवानन्द, जीवानन्द और धीरानन्द सब एक जगह थे। भवानन्द ने जो कहा था, वही हुआ। अंग्रेजों की तोपें पुल पर गोले उगलने लगीं। भवानन्द बोले, 'जीवानन्द ! यहां एक तोप ही हमारा नाश कर डालेगी। क्या देखते हो ? आओ हम लोग उस पर अधिकार कर लें।' भवानन्द बोले, 'वन्देमातरम् !' और उसी समय तीनों दौड़ पड़े। तोपची तमाशा हीं देखते रह गए। हेनरी और वॉटसन दूर खड़े अहंकार और प्रसन्नता में इसे खिलवाड़ समझते हुए मूर्खता समझते रहे, परन्तु रण का पासा पलट गया था। पलक मारते वे तीनों तोपचियों पर जा गिरे।

बिजली की तरह तलवारें चमकाते हुए भवानन्द तोप पर खड़े होकर बोले, 'वन्देमातरम् !' सहस्र कंठों से स्वर निकला 'वन्देमातरम् !' भवानन्द ने तोप का मुंह अंग्रेजी सेना की ओर कर दिया और तोप आग उगलने लगी। भवानन्द बोले, 'जीवानन्द! यह क्षणिक जीत है। अब तुम संतानों को लेकर पार चले जाओ। केवल बीस तोप भरने वाले संतानों को तोप की रक्षा के लिए छोड़ दो।'

बीस संतान तोपों के इर्द-गिर्द आ डटे। शेष समूची सेना जीवानन्द और धीरानन्द के साथ पार पहुंचने लगी। भवानन्द पुल की संकरी जगह पर तोप लगाकर गोरी सेना का विध्वंस कर रहे थे। गोरों के दल तोप छीनने के लिए आगे बढ़ते थे और मरकर ढेर हो जाते थे। उस समय शेष सन्तान अजेय थे। वे शीघ्रता इसलिए कर रहे थे कि अंग्रेजों की शेष तोपें पहुंचने से पूर्व ही वे उन गोरों को समाप्त कर दें। तभी एकाएक जंगल के अन्दर से बहुत-सी तोपों का गर्जन सुनाई पड़ने लगा। दोनों ही दल स्तम्भित होकर देखने लगे कि वे किस की तोपें थीं।

थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि जंगल के अन्दर से महेन्द्र की सत्रह तोपें तीन ओर से घेरा बांधे हुए आग उगलती चली आ रही थीं। अंग्रेजों की फौज दल-के-दल साफ होने लगी। यह देखकर यवन-सिपाही भागने लगे। उधर जीवानन्द और धीरानन्द ने भी स्थिति को समझकर उनका संहार करना आरम्भ कर दिया। हताश संतान उत्साहित होकर जूझ पड़े। यवन सेना का विनाश होने लगा। अब केवल चालीस गोरे शेष रह गए थे। वे डटे रहे। भवानन्द ने उन पर धावा बोलने के लिए हाथ उठाया तो जीवानन्द बोले, 'भवानन्द ! महेन्द्र की कृपा से हमारी पूर्ण विजय हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब व्यर्थ इन्हें न मारो ? चलो लौट चलें।'

'कभी नहीं जीवानन्द ! खड़े होकर तमाशा देखो। शत्रुओं में से एक के भी जिन्दा रहते भवानन्द वापस नहीं लौट सकता। जीवानन्द ! तुम्हें कसम है, खड़े होकर चुपचाप देखो। मै अकेला इन सबको समाप्त करूंगा।'

कप्तान टॉमस घोड़े पर बंधे हुए थे। भवानन्द बोले, 'इस अंग्रेज को मेरे सामने रखो, पहले यह मरेगा फिर मैं मरूंगा।'

टॉमस ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, 'वीरो ! मैं मर चुका। तुम अपने देश की मान-रक्षा करना। तुम्हें अपने देश की कसम है। पहले मुझे मारो, फिर हर अंग्रेज अपनी जगह मरे।'

'धांय' शब्द के साथ कप्तान टॉमस के मस्तक पर गोली पड़ी। वह मरकर गिर पड़ा। यह गोली उसी के एक सिपाही द्वारा चलाई गई थी। फिर उन सबने आक्रमण किया। भवानन्द बोले, 'आओ भाई ! अब कौन ऐसा है जो भाई बनकर मेरे साथ मरने को उद्यत है।'

इतना सुनते ही जीवानन्द, धीरानन्द और क्रमशः पच्चीस जवान आ पहुंचे। युद्ध हो रहा था, तलवारें चल रही थीं। धीरानन्द, भवानन्द के पास थे। धीरानन्द ने एक गोरे को आहत किया। बोले, 'भवानन्द, यह बात उचित नहीं है। मरने से तो स्त्री-पुत्र का मुंह देख न पाओगे ?'

'दिल की बात कहते हो ? अभी भी नहीं समझे ?' धीरानन्द ने आहत गोरे का वध किया।

उसी समय एक गोरे के आघात से भवानन्द का बांया हाथ कटकर गिर गया।

'मेरी क्या मजाल थी कि तुम जैसे पवित्रात्मा से वे बातें कहता ?' धीरानन्द बोला, 'मैं ब्रह्मचारी सत्यानन्द का प्रेरित चर होकर तुम्हारे पास गया था।'

भवानन्द उस समय केवल एक हाथ से युद्ध कर रहे थे। वह बोले, 'यह क्या? महाराज का मेरे प्रति अविश्वास ?'

धीरानन्द ने उनकी रक्षा करते हुए कहा, 'कल्याणी के साथ तुम्हारी जितनी बातें हुई थीं, उन्हें उन्होंने स्वयं अपने कानों से सुना था।'

'वह कैसे ?'

'वह स्वयं वहां उपस्थित थे। सावधान बचो ?' भवानन्द ने एक गोरे द्वारा चोट खाकर उस पर आघात किया। वह कल्याणी को गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम आ गए। सावधान !' उसी समय भवानन्द का दाहिना हाथ भी कट गया।

'मेरी मृत्यु का समाचार उन्हें देना। कहना, मैं कुछ भी सही, अविश्वासी नहीं हूं।'

धीरानन्द आंखों में आंसू भरे हुए युद्ध कर रहे थे। वह बोले, 'यह वह भी जानते हैं। उन्होंने मुझसे कह दिया है कि भवानन्द के पास रहना, आज वह मरेगा। मृत्यु के समय उससे कहना कि मैं उसे आशीर्वाद देता हूं। उसे परलोक में बैकुण्ठ प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा।'

'सन्तानों की जय हो ! मुझे एक बार मरते समय 'वन्देमातरम्' गीत सुनाओ।'

धीरानन्द की आज्ञा से उन्मत्त सन्तानों ने 'वन्देमातरम्' गीत गाया। उससे उसकी भुजाओं में दूना बल आ गया। अब शेष गोरों का वध हो चुका था। रण-क्षेत्र में एक भी शत्रु शेष न रहा था।

तभी 'वन्देमातरम्' गान गाते हुए भवानन्द ने प्राण-त्याग किया।

19

रण-विजय के पश्चात् नदी-तट पर सन्तानों ने विजय-उत्सव मनाया, परन्तु सत्यानन्द बहुत दुःखी थे। उनका प्यारा शिष्य भवानन्द इस युद्ध में काम आ गया था।

हजारों नगाड़े, ढोल, शहनाई, तुरही, दमामे बज रहे थे। तुमुल ध्वनि से नदी-तट का जंगल कांप रहा था। इस प्रकार सन्तानों ने बहुत देर तक विजय-उत्सव मनाया। उत्सव के बाद सत्यानन्द स्वामी बोले, 'आज भगवान् सदय हैं। सन्तानों की विजय हुई। धर्म की विजय हुई, परन्तु अभी एक बात शेष है। जो हम लोगों के साथ इस उत्सव में नहीं हैं, जिन्होंने हमें उत्सव मनवाने के लिए अपने प्राण उत्सर्ग किए हैं; हम लोगों को उन्हें भूलना न चाहिए। विशेषतः उस वीर भवानन्द को जिसके अदम्य रण-कौशल से हमारी विजय हुई है। चलो उसके प्रति हम लोग अपना अंतिम सत्कार प्रदान करें।' यह सुनते ही सन्तान बड़े समूह में 'वन्देमातरम्' गाते हुए रण-क्षेत्र में पहुंचे। वहां उन लोगों ने चन्दन की चिता तैयार कर आदरपूर्वक भवानन्द का शव उस पर रखा और दाह-कर्म-संस्कार किया। जब तक चिता जलती रही 'वन्देमातरम्' गान गाया जाता रहा।

फिर उस वन में केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द रह गए। शेष सब चले गए। वे पांचों विचारार्थ बैठ गए। सत्यानन्द बोले, 'इतने दिनों से हम लोगों ने अपने जो कर्म त्याग रखे थे, आज वह व्रत सफल हुआ। अब इस प्रदेश में यवन-सेना नहीं रही। जो थोड़ी बहुत बच गई है, वह हमारे सामने ठहर नहीं सकती। अब तुम लोग क्या परामर्श देते हो ?'

जीवानन्द ने कहा, 'चलिए, इसी समय चलकर राजधानी पर अधिकार कर लें।'

'मेरा भी ऐसा ही मत है।'

'परन्तु सेना कहां हैं हमारे पास ?'

'क्यों, यही सेना क्या कम है ?'

'सेना है कहां ? किसी को देख रहे हो क्या ?'

'सब लोग विश्राम कर रहे होंगे। डंके की चोट पड़ते ही इकट्ठे हो जाएंगे।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एक आदमी भी न पा सकेंगे ?'

'क्यों ?'

'इस समय सब लूट-पाट में व्यस्त हैं। इस समय सारे गांव अरक्षित हैं। मुसलमानों के गांव और रेशम-कोठी लूटने के पश्चात ही वे सब लौटेंगे।'

यह सुनकर सत्यानन्द दुःखी हुए। वह बोले, 'जो भी हो, इस समय यह समूचा देश हमारे अधिकार में आ गया है। अब यहां कोई हमारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा है। अतएव इस भूमि पर तुम सन्तान-राज्य स्थापित करो। प्रजा से कर लो और सेना एकत्रित करो। हिन्दुओं का राज्य हो गया है, यह सुनकर बहुत सन्तान झण्डे के नीचे आ जाएंगे।'

जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम करके कहा, 'यदि आज्ञा हो महाराज! तो हम लोग इसी जंगल में आपका सिंहासन स्थापित करें।'

सत्यानन्द बोले, 'क्या कहा ? मुझे क्या कच्चा घड़ा समझा है ? हम लोग राजा नहीं हैं। हम संन्यासी हैं। इस प्रदेश के राजा स्वयं बैकुण्ठनाथ हैं। यहां प्रजा का राज्य होगा। नगर-अधिकारी के बाद तुम्हीं लोग कार्यकर्ता होगे। मैं तो ब्रह्मचर्य के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार न करूंगा। तुम लोग अपने-अपने कामों पर लगो।'

चारों व्यक्ति प्रणाम करके उठ गए। सत्यानन्द ने संकेत से महेन्द्र को बैठे रहने के लिए कहा। अन्य तीनों चले गए। सत्यानन्द महेन्द्र से बोले, 'तुम लोगों ने विष्णु-मण्डप में शपथ ग्रहण कर सन्तान-धर्म स्वीकार किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने प्रतिज्ञा भंग की। भवानन्द ने स्वयं प्रायश्चित कर लिया। हमें इस बात का भय है कि कहीं जीवानन्द भी किसी दिन प्रायश्चित न कर बैठे, परन्तु मेरा कुछ कारणवश विश्वास है कि वह कुछ न करेगा। तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है। अब सन्तानों का कार्योद्धार हो गया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि जब तक सन्तानों का कार्योद्धार न होगा स्त्री और कन्या का मुंह न देखोगे। अतः अब तुम फिर संसारी हो सकते हो। इस कार्य में मेरी पूर्ण स्वीकृति है।'

महेन्द्र की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। वह कष्टपूर्ण स्वर में बोले, 'महाराज ! अब किसे लेकर संसारी बनूं ? स्त्री ने आत्महत्या कर ली। कन्या कहां है, कुछ पता नहीं। अब मैं उसे कहां खोजता फिरूंगा ?'

सत्यानन्द नवीनानन्द को बुलाकर बोले, 'महेन्द्र ! यह नवीनानन्द गोस्वामी हैं। बहुत ही पवित्रचेता और मेरे परम प्रिय शिष्य हैं। यह तुम्हारी कन्या की खोज कर देंगे।' यह कहकर सत्यानन्द ने शांति को संकेत से कुछ कहा। शांति प्रणाम कर विदा चाहती थी कि उसी समय महेन्द्र बोले, 'तुमसे मेरी कहां भेंट होगी ?'

'मेरे आश्रम पर आइए।' यह कहकर शांति चल दी।

महेन्द्र भी सत्यानन्द के पैर छूकर विदा हुए और शांति के साथ उसके आश्रम पर गए।

नवीनानन्द महेन्द्र के साथ जब अपनी कुटी पर पहुंचे तो जीवानन्दजी भी वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उन्होंने महेन्द्र के रात्रि में विश्राम करने का प्रबन्ध किया।

महेन्द्र को लेटते ही नींद आ गई।

आधी रात में शांति अपना आश्रम त्यागकर नगर की ओर चली तो जीवानन्द से बोली, 'मैं नगर से महेन्द्र की पत्नी को लेने जा रही हूं। महेन्द्र से कह देना कि उसकी स्त्री अभी जीवित है।'

जीवानन्द ने भवानन्द से कल्याणी के जीवन की सारी बातें सुनी थीं। वह उसका वर्तमान निवास-स्थान भी जानते थे। शांति के चले जाने और महेन्द्र के निद्रा त्यागने पर उनसे उन्होंने सब कुछ बताया। पहिले तो महेन्द्र को विश्वास न हुआ, परन्तु अन्त में अपार आनन्द से अभिभूत हो उठे।

उस रात्रि को हरि-ध्वनि के तुमुल नाद से वह सम्पूर्ण भू-खंड गूंज उठा था। संतानों के दल यहां वहां 'वन्देमातरम्' गाते हुए घूम रहे थे। कोई किसी के घर से दूध छीनकर पीता था। कोई कहता, 'हम ब्रज के गोप हैं, गोपियां कहां हैं ?' एक ही रात में गांव-गांव में कोलाहल मच गया। सब चिल्ला रहे थे, 'मुसलमान हार गए, देश हम लोगों का हो गया, भाइयों ! 'हरि-हरि कहो !' मुसलमानों का बुरी तरह संहार होने लगा। बहुतेरे लोग दल-बद्ध होकर मुसलमानों की बस्ती में पहुंचकर घरों में आग लगाने और माल लूटने लगे। बहुत से मुसलमान दाढ़ी मुड़वाकर राम-नाम जपने लगे।

मुसलमानों ने नगर की ओर भागना शुरू किया। नवाब ने सिपाहियों को सुसज्जित कर नगर-रक्षा में स्थान-स्थान पर नियुक्त कर दिया। नगर के किले और फाटकों पर सिपाही रक्षा के लिए तायनात हो गए। नगर के लोग सारी रात जागते रहे। वे कहते 'अब क्या होगा ?' हिन्दू कहने लगे 'आने दो संन्यासी को, हिन्दुओं का राज्य होगा।' मुसलमान कहने लगे 'इतने दिन बाद क्या सचमुच कुरानशरीफ झूठी हो गई? हम लोगों ने पांचों समय नमाज पढ़कर क्या किया ?' यों रोते-हसंते रात बीती।

यह सूचना कल्याणी के कानों में भी पहुंची। कल्याणी ने मन में कहा, 'जयजगदीश! आज तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ। अब मैं स्वामी-दर्शन के लिए यात्रा करूंगी। हे प्रभु ! मेरी सहायता करो।'

अंधेरी रात में कल्याणी शय्या से उठी और उसने खिड़की खोलकर राह देखी। राह सूनी पड़ी थी। उसने धीरे से द्वार खोलकर गौरी का घर त्यागा। शाही मार्ग पर पहुंचकर उसने भगवान् का स्मरण किया।

कल्याणी नगर के किनारे पहुंची। पहरेवाले बोले, 'कौन है ?'

कल्याणी ने डरकर उत्तर दिया, 'मैं एक औरत हूं।'

'जाने का हुक्म नहीं है।' यह आवाज जमादार के भी कानों में पहुंची तो उसने कहा, 'जाने की मनाही नहीं है, आने की मनाही है।'

यह सुनकर पहरे वाले ने कहा, 'जाने की मनाही नहीं है भाई ! जाओ, लेकिन आज रात को बड़ी आफत है। कौन जाने किसी आफत में न पड़ जाओ। आज न जाना ही अच्छा है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बाबा ! मैं भिखारिणी हूं। मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझे पकड़कर क्या लेंगे ?'

'उम्र तो है माई जी ! दुनियां के यही जवाहिरात है। हम भी डाकू हो सकते हैं।' कल्याणी धीरे से सरक गई और तेजी से आगे बढ़ी।

उस रात राह में दल-के-दल लोग घूम रहे थे। कोई मार-मार करता था, कोई भागो-भागो चिल्लाता था, कोई हराता था, कोई रोता था, कोई राह में किसी को देखकर पकड़ लेता था। कल्याणी बड़ी विपदा में पड़ी। उसे राह भी मालूम नहीं थीं। किससे पूछती ? वह छिपती-छिपाती आगे बढ़ने लगी। तभी वह एक विद्रोही दल के हाथ में पड़ गई। वे लोग उसे पकड़ने दौड़े। कल्याणी जंगल में घुस गई। वे सब उसके पीछे-पीछे दौड़े। आखिर एक उसे पकड़कर बोला, 'वाह री चन्द्रमुखी।' उसी समय एक और आदमी वहां अकस्मात् आ पहुंचा और उसने अत्याचारी पर प्रहार किया। वह आहत होकर भागा। वह संन्यासी था। उसकी छाती ढकी हुई थी। उसने कल्याणी से कहा, 'तुम डरो नहीं। मेरे साथ आओ। कहां जाना है तुम्हें ?'

'पद्चिह्न।'

पद्चिह्न का नाम सुनकर आगन्तुक चौंक उठा। उसने पूछा, 'क्या कहा, पद्चिह्न?' यह कहकर वह कल्याणी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर गौर से देखने लगा।

कल्याणी पुरुष-स्पर्श से भयभीत होकर रोने लगी। उसमें साहस न हुआ कि भाग सके। आगन्तुक ने भरपूर देख लेने के बाद कहा, 'ओ हो, पहिचान गया ! तुम्हीं कल्याणी हो ?'

'आप कौन हैं ?'

'मैं तुम्हारा दासानुदास हूं। हे सुन्दरी ! मुझ पर प्रसन्न हो ?'

कल्याणी गरजकर बोली, 'क्या यह अपमान करने के लिए ही आपने मेरी रक्षा की थी ? देखती हूं ब्रह्मचारियों का यही धर्म रह गया है। आज मैं निःसहाय हूं, नहीं तो तुम्हारे चेहरे पर लात मारती।'

ब्रह्मचारी बोला, 'मैं बहुत दिन से तुम्हारे पुष्प-समान कोमल बदन के आलिंगन की कामना कर रहा था ?' यह कहकर ब्रह्मचारी ने दौड़कर कल्याणी को पकड़ लिया और बलात छाती से लगा लिया।

कल्याणी खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, 'मरी कहीं की। पहिले ही कह देती कि तेरी भी यही दशा है।'

शांति ने पूछा, 'महेन्द्र की खोज में चली हो ना ?'

'तुम कौन हो ? क्या तुम सब कुछ जानती हो ?'

'मैं ब्रह्मचारी हूं, संतान-सेना का अधिनायक, घोरतर वीर पुरुष ! मैं सब जानता हूं। आज संतानों का बहुत हुड़दंग है। आज तुम पद्चिह्न न जा सकोगी।'

कल्याणी बहुत चिंतित हुई।

'डरती क्यों हो ? हम अपने नयन-वाणों से हजारों का वध कर सकती हैं। चलो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्चिह्न चलें।'

कल्याणी बोली, 'तुम जहां कहोगी मैं वहीं चलूंगी।'

शांति कल्याणी को अपने साथ लेकर जंगली राह पर चल पड़ी। वह सीधी जंगल-जंगल होती हुई अपने आश्रम पर पहुंची।

वहां पहुंचकर कल्याणी महेन्द्र को देखकर स्तब्ध रह गई। निस्तब्ध जंगल के बीच पशु-पक्षियों की निद्रा टूटने के समय दोनों का मिलन हुआ। तभी कोकिल की मधुर कूक सुनाई पड़ी।

पहर दिन चढ़ा। शांति और जीवानन्द उनके पास आए। कल्याणी ने शांति से कहा, 'मैं आप लोगों के हाथों बिना मूल्य के बिक चुकी हूं। अब मेरी कन्या का पता लगाकर मेरे ऊपर उपकार कीजिए ?'

शांति ने जीवानन्द के चेहरे की ओर देखकर कहा, 'मैं अब सोऊंगा। आठ पहर बीते, मैं बैठा तक नहीं। आखिर मैं भी तो आदमी हूं।'

कल्याणी मुस्करा दी। जीवानन्द ने महेन्द्र की ओर देखकर कहा, 'यह भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिह्न की यात्रा कीजिए। मैं वहीं आपकी कन्या को पहुंचा दूंगा।'

जीवानन्द मसईपुर से लड़की को लाने चले गए, परन्तु कार्य सरल न था। पहले तो निमाई बात ही खा गई। उसका मुंह फूलकर कुप्पा हो गया। फिर वह रो पड़ी। बोली, 'लड़की नहीं दूंगी।'

निमाई अपनी हथेलियों से आंसू पोंछने और घूरने लगी। जीवानन्द ने कहा, 'बहिन! रोती क्यों हो ? कुछ दूर नहीं है पद्चिह्न। बीच-बीच में जाकर लड़की को देख आया करना।'

'तुम लोगों की लड़की है, ले क्यों नहीं जाते ? मुझसे क्या मतलब है ?' यह कहकर निमाई लड़की को उठा लाई और जीवानन्द के पैर के पास पटक कर वहीं बैठकर रोने लगी। जीवानन्द इधर-उधर की बातें करने लगे, परन्तु निमाई का क्रोध न गया। निमाई सुकुमारी के पहिनने के कपड़े, उसके खेलने के खिलौने जीवानन्द के सामने पटकने लगी। सुकुमारी स्वयं उन सबको बटोरने लगी। उसने निमाई से पूछा, 'क्यों मां ! मैं कहां जाऊंगी ?' निमाई सह न सकी। उसने सुकुमारी को गोद में उठा लिया।

20

पद्चिह्न के नए दुर्ग में महेन्द्र, कल्याणी, जीवानन्द, शांति, निमाई के पति और सुकुमारी सब एकत्र थे। सब सुख में विभोर थे। शांति जिस रात्रि को कल्याणी को लाई थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कह दिया था कि वह अपने पति महेन्द्र से यह न कहे कि नवीनानन्द स्त्री है। एक दिन जीवानन्द को कल्याणी ने अन्तःपुर में बुलवा भेजा। नवीनानन्द अन्तःपुर में घुस गया। उसने प्रहरियों की एक न सुनी।

शांति ने कल्याणी के पास जाकर पूछा, 'तुमने क्यों बुलाया है मुझे ?'

'पुरुष-वेश में तुम कितने दिन तक रहोगी ? तुम्हारी न तो पति से भेंट हो पाती है, न बातें होती हैं। अब तुम्हें प्रकट करना पड़ेगा।'

नवीनानन्द बड़ी चिन्ता में डूब गए। कुछ देर तक कुछ नहीं बोले। अन्त में बोले, 'इसमें अनेक विघ्न हैं कल्याणी !'

जब दोनों में इस प्रकार बातें हो रही थीं तो उधर जो प्रहरी नवीनानन्द को अन्तःपुर में जाने को मना कर रहे थे, उन्होंने महेन्द्र से जाकर कहा कि नवीनानन्द मना करने पर भी बलात अन्दर चले गए हैं। महेन्द्र ने देखा नवीनानन्द वहां खड़े थे और कल्याणी उनके शरीर के बाघम्बर की गांठ खोल रही थी। यह देखकर महेन्द्र बहुत क्रुद्ध हुए।

नवीनानन्द उन्हें देखकर हंसकर बोले, 'क्यों गोस्वामी जी ! संतान में अविश्वास है क्या ?'

महेन्द्र बोले, 'क्या भवानन्द विश्वासी थे ?'

नवीनानन्द आंखें दिखाकर बोले, 'कल्याणी क्या भवानन्द के शरीर पर हाथ रखकर बाघ की खाल खोलती थीं ?' यह कहते हुए शांति ने कल्याणी का हाथ दबाकर पकड़ लिया और बाघम्बर न खोलने दिया।

'तो क्या हुआ ?'

'आप मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं, परन्तु कल्याणी पर कैसे अविश्वास कर सकते हैं ?'

तब महेन्द्र मौन हुए। वह बोले, 'कहां, मैं अविश्वास कब कर रहा हूं इन पर?'

'नहीं तो फिर मेरे पीछे-पीछे अन्तःपुर में क्यों आ पहुंचे ?'

'कल्याणी से बातें करनी थीं, इसलिए आया हूं।'

'तो इस समय जाइए। कल्याणी के साथ मुझे भी कुछ बातें करनी हैं। आप चले जाइए, मैं पहिले बातें करूंगा। आपका तो घर है, आप जब चाहें, आकर बातें कर सकते हैं। मैं तो बड़े कष्ट से आ पाया हूं।'

महेन्द्र मूर्ख बन गए। वह कुछ समझ ही न पाए। ये सब बातें तो अपराधियों जैसी नहीं थीं। कल्याणी का भाव भी विचित्र था। वह भी अविश्वासिनी की तरह भागी नहीं, न डरी ही और न लज्जित हो रही थी, वरन् मृदु मुस्कान से भरी थी। वही कल्याणी, जिसने पेड़ के नीचे सहज ही विष खा लिया था, वह क्या अपराधिनी हो सकती थी ? महेन्द्र के मन में यह तर्क-वितर्क चल रहा था। उसी समय शांति ने महेन्द्र की यह दुरवस्था देखकर कुछ मुस्कराकर, कल्याणी की ओर एक कटाक्षपात किया। अन्धकार मिट गया। ऐसा कटाक्ष पुरुष नहीं कर सकता। वह समझ गए कि नवीनानन्द कोई स्त्री है। फिर भी शक था। उन्होंने साहस बटोरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आगे बढ़कर एक झटके में नवीनानन्द की दाढ़ी खींच ली। दाढ़ी-मूंछ उनके हाथ में आ गई। तभी अवसर पाकर कल्याणी ने बाघम्बर की गांठ खोल दी। शांति लजाकर सिर नीचा करके खड़ी रह गई।

महेन्द्र ने शांति से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी।'

'परन्तु तुम तो स्त्री हो ?'

'यह तो देख ही रहे हैं आप !'

'एक बात पूछूं। तुम स्त्री होकर जीवानन्द के साथ हर समय क्यों रहती थीं?'

'यह बात आपको न बताऊंगी।'

'तुम स्त्री हो, जीवानन्द स्वामी जानते हैं ?'

'जानते हैं।'

यह सुनकर महेन्द्र बहुत दुःखी हुए। कल्याणी अब चुप न रह सकी। वह बोली, 'यह जीवानन्द स्वामी की धर्मपत्नी शांति देवी हैं।'

महेन्द्र का चेहरा खिल उठा।

माघी पूर्णिमा आने वाली थी। उस दिन नदी-तट पर बहुत बड़ा मेला लगता था। इस बार मेले की बड़ी तैयारी थी।

मेजर एडवर्ड ने अफवाह उड़ा दी थी कि मेले पर अंग्रेज आक्रमण करेंगे। उस दिन वहां संतान इकट्ठे रहेंगे। अतः एक बार में ही उन्हें समाप्त कर दिया जाएगा।

यह सूचना गांव-गांव में प्रसारित की गई। अतः संतान अस्त्र ग्रहण कर मेले की रक्षा के लिए चल पड़े। सभी संतान माघी पूर्णिम वाले दिन नदी तट पर जाकर एकत्रित हो गए। मेजर का जाल सही होने लगा। अंग्रेजों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी उस जाल में पांव डाल दिया। महेन्द्र पद्चिह्न में थोड़ी-सी सेना छोड़कर शेष सब मेले में भेज दी।

जीवानन्द और शांति पहिले ही पद्चिह्न से बाहर निकल गए थे। उस समय तक युद्ध की कोई बात नहीं थी। युद्ध की ओर उनका ध्यान भी नहीं था। राह में जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेले में समस्त संतानों पर अंग्रेजों का आक्रमण होगा। जीवानन्द बोले, 'चलो शांति ! युद्ध में प्राण-विसर्जन करेंगे।'

वे लोग जल्दी-जल्दी चले। उनका रास्ता एक टीले के ऊपर से जाता था। टीले पर चढ़कर वीर दम्पत्ति ने देखा कि नीचे थोड़ी दूर पर अंग्रेजों का शिविर था।

दोनों ने परस्पर कुछ सलाह की। जीवानन्द पास के एक जंगल में छिप गए। शांति कांड में प्रवृत्त हुई।

शांति मरने जा रही थी। उसने मृत्यु के समय स्त्री-वेश धारण करने का निश्चय किया। महेन्द्र ने कहा था कि उसका पुरुष-वेश ठगी है। ठगी करके मरना उचित नहीं था।

शांति सारंगी हाथ में लिए हुए अंग्रेज-शिविर में पहुंच गई। काली मूंछों वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिपाही उसे देखकर पागल हो उठे। चारों तरफ से लोगों ने उसे घेरकर गाना गवाना आरम्भ किया।

वैष्णवी अपनी आंखों से शिविर का हाल-चाल देखती घूमने लगी। सिपाहियों ने पूछा, 'फिर कब आओगी ?'

'कैसे बताऊं, मेरा घर बड़ी दूर है।'

सिपाहियों ने पूछा, 'कितनी दूर है ?'

वैष्णवी ने कहा, 'मेरा घर पदूचिह्न में है।' एक सिपाही ने सुना था कि मेजर पदूचिह्न की खबर लिया करते थे। वह तुरन्त वैष्णवी को मेजर साहब के शिविर में ले गया। मेजर साहब को देखकर वैष्णवी ने एक मधुर कटाक्ष से वाण मारा। मेजर साहस का सिर चक्कर खा गया। वैष्णवी खंजड़ी बनाकर गाने लगी।

साहब ने पूछा, 'बीवी ! टोमारा घर कहां है ?'

'मैं बीवी नहीं हूं, वैष्णवी हूं, मेरा घर पदूचिह्न में है।'

होआ एक ठो घर हय ?'

'घर है !'

'घर नई...गर...गर...नई...गर...'

'साहब ! मैं समझ गई गढ़ कहते हैं आप ?'

'येस...येस..., गर...गर...हाय ?'

'गढ़ है। बड़ा भारी गढ़ है।'

'किस आडमी का है ?'

'गढ़ में कितने ही लोग रहते हैं ? करीब बीस-पच्चीस हजार।'

'नानसेन्स एक ठो गर में दो-चार हजार रहने शेकटा है। सुना है कि वे सब चेला गेया ?'

'वे सब जाएंगे।'

'मेला में ? तुम कब आया ह्नां से ?'

'कल आए हैं साहब !'

'और लोग आज निकल गेया ओगा।'

शांति मन-ही-मन सोच रही थी कि 'तुम्हारे बाप के श्राद्ध के लिए यदि मैंने भात न चढ़ाया, तो मैंने कुछ न किया। कितने स्यार तुम्हारे मुण्ड खाएंगे, मैं देखूंगी।' वह बोली, 'साहब ! ऐसा हो सकता है, जरूर हो सकता है। आज चला गया हो सकता है। इतनी खबर मैं नहीं जानती। मैं वैष्णवी हूं, मांगकर खाती हूं। गाना गाती हूं, तब आधा पेट भोजन पाती हूं। इतनी खबर मैं क्या जानूं ? बकते-बकते गला सूख गया। पैसा दो, मुझे और अच्छी बखशीश दो, तो परसों सब खबर ला दूंगी।'

साहब ने झन्न से एक रुपया फेंकते हुए कहा, 'परसों नहीं बीवी !'

'वैष्णवी कहो, बीवी क्या ?'

'परसों नहीं, आज रात को खबर मिले।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'बंदूक माथे के पास रखकर नाक में कड़वा तेल छुड़वाकर सोओ। आज ही मैं दस कोस राह तय कर जाऊं और आज ही फिर लौट आऊं और तुम्हें खबर दूं। घासलेटी कहीं के।'

'घासलेटी किसको बोलता है ?'

'जो भारी वीर जनरल होता है उसे।'

'ग्रेट जेनरल हम होने शेकटा है। क्लाइव का माफिक। लेकिन आज ही हमको खबर मिलनी चाहिए। सौ रुपया बखशीश देगा।'

'सौ दो या हजार, बीस हजार दो, पर आज रात भर में मैं इतना नहीं चल सकती।'

'घोड़े पर जाने शेकटा ऐ ?'

'घोड़ा चढ़ना जानती तो तुम्हारे तम्बू में आकर भीख मांगती ?'

'दूसरा आदमी ले जाएगा।'

'गोद में बैठाकर ले जाएगा ? मुझे क्या लज्जा नहीं है ?'

'केशा मुस्किल। पांच सौ रुपिया देगा।'

'कौन जाएगा ? तुम जाएगा ?'

इस पर एडवर्ड ने पास में खड़े एक युवक अंग्रेज को दिखाकर कहा, 'लिण्डले! तुम जाओ !'

लिण्डले ने शांति का रूप-यौवन देखकर कहा, 'बड़ी खुशी से।'

बड़ा जानदार अरबी घोड़ा आ गया। लिण्डले भी तैयार हो गया। वह शांति को पकड़कर घोड़े पर बैठाने चला तो शांति ने कहा, 'इतने आदमियों के सामने ? क्या मुझे लज्जा नहीं है ? आगे चलो, बाहर चलकर घोड़े पर चलेंगे।'

लिण्डले घोड़े पर चढ़ गया। घोड़ा धीरे-धीरे आगे बढ़ा। शांति पीछे-पीछे पैदल चली। इस प्रकार वे लोग छावनी के बाहर पहुंच गए।

शिविर के बाहर एकान्त आने पर शांति लिण्डले के पैर पर पांव रखकर एक छलांग में घोड़े की पीठ पर चढ़ गई। लिण्डले ने हंसकर कहा, 'टुम पक्का घुड़सवार है।'

'हम लोग ऐसे पक्के घुड़सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़ने में लज्जा लगती है। तुम लोग रकाब के सहारे चढ़ते हो।'

शान के मारे लिण्डले ने रकाब में से पैर निकाल लिए। उसी समय शांति ने पीछे से लिण्डले का गला पकड़कर एक धक्का दिया। वह घोड़े से नीचे गिर पड़ा और घोड़ा भड़क उठा। फिर क्या था ? शांति ने एक ऐड़ लगाई। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। शांति चार वर्ष तक संतानों के साथ रहकर पक्की घुड़सवार हो गई थी। बिना घुड़सवारी सीखे क्या वह जीवानन्द का साथ दे सकती थी ? लिण्डले का पैर टूट गया और वह वहीं पड़ा-पड़ा कराहने लगा।

जिस वन में जीवानन्द छिपे थे, वहां पहुंचकर शांति ने जीवानन्द को सब समाचार सुनाया। जीवानन्द ने कहा, 'मैं शीघ्र जाकर महेन्द्र को सतर्क करता हूं। तुम मेले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जाकर स्वामी सत्यानन्द को यह सब सूचना दो।'

21

एडवर्ड को खबर मिली कि वह वैष्णवी लिण्डले को गिराकर भाग गई। एडवर्ड ने तुरन्त आज्ञा दी, 'टेंट उखाड़ो और उस शैतान औरत का पीछा करो।'

उधर महेन्द्र संतान-सेना के साथ मेले की ओर बढ़े। संध्या को महेन्द्र ने सोचा, अन्धेरा हो चला, अब शिविर डलवा देना चाहिए। जहां पड़ाव पड़ा था, वहां बहुत सुन्दर आम्र-कानन के पास एक बड़ा टीला था। महेन्द्र ने सोचा कि उसी टीले पर यदि पड़ाव पड़े तो अच्छा रहे। यह सोचकर महेन्द्र टीले पर चढ़ने लगे। अभी टीले पर आधे ही चढ़े थे कि उनकी संतान-सेना में एक युवक आ पहुंचा। उसने संतानों से कहा, 'चलो टीले पर चलो।'

उसके समीप जो सैनिक खड़े थे, उन्होंने पूछा, 'क्या ?'

यह सुनकर वह यौद्धा एक छोटी चट्टान पर खड़ा हो गया। उसने ललकार कर कहा, 'आओ वीरो ! आज इस टीले पर चढ़कर शत्रुओं से बदला लेंगे।' संतानों ने देखा कि योद्धा कोई अन्य नहीं, सेनापति जीवानन्द थे। सारी सेना 'हरे मुरारे !' कहती हुई हुंकार करके भालों पर बोझ देकर, उठ खड़ी हुई और जीवानन्द के पीछे-पीछे टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा हुआ घोड़ा जीवानन्द को लाकर दिया। दूर से महेन्द्र ने यह देखा, तो विस्मित हुए। सोचने लगे यह क्या हुआ ?

यह सोचकर महेन्द्र ने तुरन्त घोड़े का मुंह मोड़ा और ऐड़ लगाते ही धूल का बादल उड़ाते हुए नीचे आए। सन्तान-वाहिनी के आगे जीवानन्द को देखकर उन्होंने पूछा, 'यह क्या जीवानन्द ?'

जीवानन्द ने हंसकर उत्तर दिया, 'आज बड़ा आनन्द है। टीले के उस पार एडवर्ड आ पहुंचा है। टीले पर जो पहिले पहुंचेगा उसी की जीत होगी।'

जीवानन्द ने संतानों से कहा, 'पहचानते हो, मैं जीवानन्द हूं। सहस्र-सहस्र शत्रुओं का वध किया है मैंने।'

दिगन्त कांप उठा। सैनिकों ने एक स्वर में कहा, 'पहिचानते हैं, हम अपने सेनापति को पहिचानते हैं।'

'बोलो हरे मुरारे !'

जंगल का कोना-कोना 'हरे-मुरारे' नाम से कांप उठा।

'वीरो ! टीले के उस पार शत्रु है। आज ही इस स्तूप के ऊपर विमल चांदनी में सन्तानों का महारण होगा। जल्दी चढ़ो। जो पहिले चढ़ेगा, उसी की जीत होगी। बोलो 'वन्देमातरम् !'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वन्देमातरम् !' कहकर सन्तान पर्वत-शिखर पर चढ़ने लगे। उन लोगों ने देखा कि महेन्द्र बड़ी तेजी से उतरे चले आ रहे थे। दौड़ते हुए महेन्द्र ने महानिनाद किया। देखते-ही-देखते शिखर पर अंग्रेजों की तोपें आ लगीं। सन्तान हुंकारे 'वन्देमातरम्!'

अंग्रेजों की तोपें गर्जन कर उठीं। वे आग उगलने लगीं। उस महानाद में गीत की आवाज लुप्त हो गई। बार-बार 'गुड़म-गुड़म' करती हुई अंग्रेजों की तोपें गर्जन कर सन्तान-सेना का नाश करने लगीं। खेत में जैसे फसल काटी जाती है, उसी तरह सन्तान बिछने लगे। यह ऊपर की भयानक मार सन्तान न सह सके। वे भाग खड़े हुए। जिसे जिधर राह मिली, वह उधर भागा। इस पर 'हुर्रे, हुर्रे' करती हुई ब्रिटिश सेना सन्तानों का समूल नाश करने के लिए उतरने लगी। संगीनें चढ़ाकर पर्वत से गौरी फौज सन्तानों को खदेड़ती हुई तीखे वेग से उतर रही थी। जीवानन्द ने महेन्द्र को सामने देखकर कहा, 'आज अन्तिम दिन है। आओ यहीं मरेंगे।'

महेन्द्र बोले, 'मरने से यदि रण में विजय मिले तो कोई हानि नहीं, परन्तु व्यर्थ प्राण गंवाने से क्या लाभ ? व्यर्थ मरना वीर-धर्म नहीं है।'

'मैं व्यर्थ मरूंगा, परन्तु युद्ध करके मरूंगा।' यह कहकर जीवानन्द ने पीछे पलटकर कहा, 'भाइयों ! भगवान के नाम पर बोलो कौन मरने को तैयार है ?'

अनेक सन्तान आगे आ गए। जीवानन्द ने कहा, 'यों नहीं, भगवान की शपथ लो कि जीवित न लौटेंगे।'

जो लोग आगे बढ़े थे, पीछे हट गए। तब जीवानन्द ने कहा, 'कोई नहीं ? अच्छा तो देखो, मैं अकेला ही जाता हूं।'

जीवानन्द ने घोड़े की पीठ पर से ही बहुत पीछे खड़े महेन्द्र से कहा, 'भाई महेन्द्र! नवीनानन्द से भेंट हो तो कह देना कि अब परलोक में ही भेंट होगी।'

यह कहकर वीरश्रेष्ठ बाएं हाथ में बल्लम लिए और दाहिने हाथ से बन्दूक चलाता, मुंह से 'हरे मुरारे ! हरे मुरारे !' कहते हुए तीर की तरह उस बरसती हुई आग को चीरते हुए टीले पर बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे। इस तरह महान् साहस का परिचय देते हुए जीवानन्द अकेले अभिमन्यु की तरह शत्रु-व्यूह में घुसते चले जा रहे थे जैसे एक मस्त हाथी कमल-वन को रौंदता चला जा रहा हो।

सन्तान-सेना को दिखाकर महेन्द्र ने कहा, 'देखा कायरों ! भागने वालों ! अपने सेनापति का साहस देखो। देखते रहो, देखने से जीवानन्द मर नहीं सकते।'

सन्तानों ने पलटकर जीवानन्द का अद्भुत साहस देखा। पहिले उन सबने देखा और फिर बोले, 'स्वामी जीवानन्द मरना चाहते हैं तो क्या हम नहीं जानते ? चलो जीवानन्द के साथ बैकुण्ठ चलेंगे।'

बस, वहीं से रण ने पलटा खाया। सन्तान-सेना पलट पड़ी। पीछे भागने वालों ने देखा कि सन्तान पलट रहे हैं तो उन्होंने समझा कि सन्तानों की विजय हुई। अतः वे भी लौट पड़े।

उन्मत्त सन्तान सेना ने उतरती हुई अंग्रेज-वाहिनी पर प्रचण्ड आक्रमण किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजों के पैर उखड़ गए। वे इस आक्रमण को सह न सके। वे उल्टे पैरों भाग खड़े हुए। पीछे आती हुई सन्तान-सेना उनका विनाश करती जा रही थी।

महेन्द्र खड़े रहे। सहसा पर्वत-शिखर पर सन्तान-पताका उड़ती दिखाई दी। वहां सत्यानन्द महाप्रभु, स्वयं चक्रपाणि विष्णु की तरह बाएं हाथ में ध्वजा लिए और दाहिने हाथ में रक्त से लाल तलवार लिए ख़ड़े थे। यह देखते ही सन्तानों में अपूर्व बल आ गया। 'हरे मुरारे !' की ध्वनि वायु-मंडल में छा गई।

उस समय अंग्रेज सेना दोनों दलों के बीच में थी। ऊपर प्रभु सत्यानन्द ने तोपों पर अधिकार कर लिया था और नीचे से सन्तान-सेना पलटकर चढ़ती आ रही थी।

महेन्द्र ने देखा कि ऊपर से 'वन्देमातरम्' का गान करते हुए सत्यानन्द ब्रिटिश सेना के नाश के लिए उतरे हैं। इधर से बची हुई सेना को लेकर महेन्द्र ने सन्तानों को साहस दिलाते हुए भयंकर आक्रमण बोल दिया। मध्य टीले पर भयंकर युद्ध होने लगा। अंग्रेज चक्की के दो पाटों में पिस गए। थोड़ी ही देर में एक भी ब्रिटिश वीर खड़ा दिखाई न दिया।

उस निस्तब्ध भयंकर रात्रि में एक रमणी रणक्षेत्र में विचरण कर रही थी। वह एक मशाल लिए किसी को खोज रही थी। हरेक शव का रोशनी में मुंह देखकर दूसरे के पास चली जाती थी। कहीं कोई मृत देह घोड़े के नीचे पड़ी थी तो वहां मशाल रखकर दोनों हाथों से घोड़े को हटाकर शव को देखती और हताश होकर आगे बढ़ जाती थी। वह जिसे खोज रही थी, उसने उसे न पाया। वह रक्तमय जमीन पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

वह शांति थी। तभी उसे एक मधुर शब्द सुनाई पड़ा, 'उठो बेटी ! रोओ नहीं।' शांति ने देखा सामने कोई महापुरुष खड़े थे।

शांति उठकर खड़ी हो गई। जो आए थे, उन्होंने कहा, 'रोओ नहीं बेटी ! आओ जीवानन्द की देह को मैं खोज देता हूं।'

यह कहकर महापुरुष शांति को रण-क्षेत्र के बीच में ले गए। वहां शवों का एक ढेर था। शांति उसे हटा न सकी। उस महापुरुष ने स्वयं शव हटाकर जीवानन्द का शव बाहर निकाला। शांति ने उसे पहिचान लिया। शांति सामान्य स्त्री की तरह रो पड़ी।

महापुरुष बोले, 'रोओ नहीं बेटी ! क्या जीवानन्द मर गए हैं ? शांत होकर उनका शरीर देखो, नाड़ी की परीक्षा करो।'

शांति ने शव की नाड़ी देखी, नाड़ी का पता न था।

वह बोले, 'उसकी छाती पर हाथ रखकर देखो।'

शांति ने छाती पर हाथ रखकर देखा, सब ठंडा था।'

महापुरुष ने कहा, 'नाक पर हाथ रखकर देखो।'

शांति ने देखा, परन्तु हताश रह गई।

महापुरुष फिर बोले, 'मुंह में उंगली डालकर देखो।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांति ने वह भी किया। वह बोली, 'मुझे कुछ पता नहीं चलता।'

महापुरुष ने बांए हाथ से शव पर हाथ रखकर कहा, 'बेटी ! तुम घबरा गईं। देखो अभी देह में गरमी है।'

शांति ने फिर नाड़ी देखी। देखा उसमें मंद गति थी। शांति ने विस्मित होकर उसकी छाती पर हाथ रखा तो देखा मृदु धड़कन थी। नाक पर हाथ रखकर देखा तो हल्की सांस थी। शांति ने विस्मित होकर पूछा, 'क्या इनमें प्राण था ? या फिर से प्राण आ गया है ?'

उन्होंने कहा, 'भला ऐसा कभी हुआ है बेटी ! तुम इन्हें उठाकर तालाब के किनारे तक ले चलो ? मैं इनकी चिकित्सा करूंगा।'

शांति साहसपूर्वक जीवानन्द को तालाब पर ले जाकर उनके घाव धोने लगी। उन महापुरुष ने उनके घावों पर एक लेप किया। वह जीवानन्द के बदन को सहलाने लगे। जीवानन्द के श्वांस की गति तीव्र हो गई। फिर कुछ ही क्षणों में वह उठ बैठे। शांति के मुंह की ओर देखकर उन्होंने पूछा, 'युद्ध में किसकी विजय हुई ?'

'तुम्हारी विजय हुई। इन महात्मा को प्रणाम करो।'

दोनों ने देखा कि वहां कोई नहीं था, जिसे वे प्रणाम करते।

समीप ही सन्तान-सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा था, परन्तु शांति या जीवानन्द दो में से कोई न उठा। दोनों चन्द्र-ज्योत्स्ना में पुष्करणी के तट पर बैठे रहे। जीवानन्द का शरीर अद्भुत औषधि से शीघ्र ही ठीक हो गया। जीवानन्द ने कहा, 'शांति ! चिकित्सक की दवा में गुण था। अब मेरे शरीर में तनिक भी कष्ट नहीं है। कहो, अब कहां चलें ? संतान-सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा है।'

शांति बोली, 'अब हम वहां नहीं चलेंगे। माता का कार्योद्धार हो गया। अब यह देश संतानों का है। हम वहां क्या करने चलें ?'

'जो देश छीना है, क्या उसकी रक्षा नहीं करनी चाहिए ?'

'रक्षा के लिए महेन्द्र हैं। तुमने प्रायश्चित करके संतान-धर्म के लिए प्राण त्याग कर दिया। इस जीवन पर संतानों का अधिकार नहीं है। हम लोग संतानों के लिए मर चुके। हमें देखकर संतान लोग कह सकते हैं कि प्रायश्चित के भय से हम लोग कहीं छिप गए थे। विजय होने पर प्रकट हो गए। अब ये राज्य-भाग लेने आए हैं।'

'यह क्या शांति ? लोगों के अपवाद-भय से क्या हम अपना कर्त्तव्य छोड़ दें ? मेरा कार्य मातृ-सेवा है। दूसरा चाहे जो कहे, 'मैं मातृ-सेवा अवश्य करूंगा।'

'अब तुम्हें इसका अधिकार नहीं है, क्योंकि तुमने मातृ-सेवा के लिए अपना उत्सर्ग कर दिया। यदि अब सेवा करोगे, तो तुमने क्या उत्सर्ग किया ? मातृ-सेवा से वंचित होना ही प्रायश्चित है। अन्यथा जीवन त्याग देना क्या कोई बड़ा काम है ?'

'शांति ! तुमने ठीक समझा, परन्तु मैं अपने प्रायश्चित को अधूरा न रखूंगा। मेरा सुख संतान-धर्म में ही है। मातृ-सेवा त्यागकर घर जाने में क्या सुख मिलेगा ?'

शांति बोली, 'यह तो मैं भी नहीं कहती, हम लोग अब गृहस्थ नहीं हैं, दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही संन्यासी रहेंगे और ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। चलो हम लोग देशाटन के लिए चलें।'

'उसके पश्चात ?'

'उसके पश्चात हिमालय पर कुटी बनाकर हम दोनों प्रभु की आराधना करेंगे। प्रभु से माता के मंगल का वर मांगेंगे।'

दोनों एक-दूसरे का हाथ अपने हाथों में लेकर वहां से प्रस्थान कर गए। फिर किसी ने उन्हें वहां कभी नहीं देखा।

■■■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम ग्रंथावली

कपालकुण्डला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपालकुण्डला

1

ढाई सौ वर्ष पूर्व, माघ-महीने में रात्रि के अन्तिम प्रहर में, एक नाव गंगासागर में जा रही थी। दस्युओं के भय से यात्री उन दिनों समूह बनाकर यात्रा करते थे, परन्तु इस नौका में कोई एक समूह नहीं था। गत रात्रि को एक भयंकर तूफान आया था। उस तूफान में ये नाविक दिग्-भ्रम के कारण अन्य नाविकों से भटक गये थे। कौन कहां गया था, इसका किसी को कुछ पता नहीं था। नौका पर यात्री लोग सो रहे थे। केवल एक वृद्ध और एक युवक जग रहे थे। वे दोनों परस्पर बातें कर रहे थे। वृद्ध नौका के नाविक से बोला, 'नाविक, नाविक ! आज कितनी यात्रा और करनी है ? हम लोग इस समय कहां हैं ?'

वृद्ध क्रुद्ध होने लगा तो युवक बोला, 'महाशय ! भगवान् के हाथ की बात पण्डित और विद्वान भी नहीं बता सकते, यह बेचारा क्या बता सकता है ? आप व्यर्थ उद्विग्न न हों। शान्तिपूर्वक बैठे रहिए और भगवान् का नाम लीजिए।'

वृद्ध बोला, 'क्रुद्ध न हूं ! क्या कहते हो तुम ? मेरा धान किसी ने काट लिया तो बच्चों को क्या खिलाऊंगा ? क्या मेरे बच्चों का पेट यह नाविक भर देगा ?'

युवक बोला, 'मैंने तो पहिले ही कहा था कि आप न चलें, क्योंकि आपके घर पर कोई दूसरा देखभाल करने वाला नहीं है। आपका आना उचित नहीं था। आपको अपने घर पर ही रहकर अपने खेतों की देखभाल करनी चाहिए थी।'

वृद्ध फिर क्रुद्ध होकर बोला, 'न आता ! अरे तीन प्रहर तो घर पड़े-पड़े चले गए। अन्तिम अवस्था आ गई है। अब भी परलोक के लिए कुछ न करता तो फिर कब करता ? बताओ, क्या तुम मेरा परलोक सुधार देते ?'

'शास्त्र कहता है कि परलोक के लिए घर बैठकर भी कर्म हो सकता है। परलोक के लिए यात्रा आवश्यक नहीं है।'

'तब तुम क्यों आए ?' वृद्ध ने क्रुद्ध भाव से पूजा।

'मैं तो समुद्र देखने की इच्छा से आया हूं। देखो कितना सुन्दर दृश्य है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृश्य को मैं कभी नहीं भूल सकता।'

वृद्ध युवक की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था। उसकी समझ में न आया कि इस भयंकर तूफान को देखकर उसे क्या आनन्द आ रहा था।

एक नाविक बोला, 'भाई ! यह काम तो अब खराब हुआ। हम कहां किस नदी में आ पड़े, समझ में नहीं आ रहा !' नाविक का चित बहुत ही उद्विग्न था।

नाविक का स्वर भयमिश्रित देखकर वृद्ध समझ गया कि किसी विपद् की आशंका है। उसने डरकर पूछा, 'क्या हुआ ? क्या हम लोग किसी विपत्ति में फंस गए हैं ?'

नाविक ने कोई उत्तर न दिया। युवक उत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर आया। उसने देखा, प्रातःकाल हो चला था। चारों ओर धना कुहरा छाया हुआ था। दिग्भ्रम हो गया है। वे सब किधर जा रहे हैं, उन्हें कुछ पता नहीं है। कहीं वे समुद्र में न पड़ जायें, उन्हें यही भय है। इसी भय से वे भयभीत हो उठे हैं। उनका चित्त व्याकुल हो रहा है।

युवक ने रहस्य को समझकर वृद्ध को समझा दिया। उसे सुनकर नौका पर कोलाहल मच गया। नौका में कई स्त्रियां थी थीं। वे सब चिल्लाने लगीं, 'किनारे लगाओ, नाव किनारे लगाओ। हम लोग कहां आकर फंस गए ? अब प्राण-रक्षा कैसे होगी ?'

युवक हंसकर बोला, 'किनारा कहां है ? किनारा ज्ञात होता तो चिन्ता ही क्या थी ? किनारा ही तो दिखाई नहीं दे रहा।'

यह सुनकर नौका के यात्रियों का कोलाहल और बढ़ गया। युवक ने उन्हें समझाकर शान्त किया। वह नाविकों से बोला, 'भयभीत होने की कोई बात नहीं है। सवेरा हो गया। अभी सूर्योदय हो जाएगा। इतनी देर में तो नाव डूबी नहीं जा रही । तुम अपने डांडे बन्द कर दो। नौका जिधर जाए, उसे जाने दो। ये देखो कि हम किसी धारा में तो नहीं पड़ गये हैं।'

नाविकों ने उसी परामर्श पर कार्य किया। उन्होंने डांडे चलाने बन्द कर दिए। नौका धीरे-धीरे बहने लगी। उस समय वायु का वेग मन्द था। पानी में भी बहाव कम था।

नाविक निश्चेष्ट बैठे रहे। भय से यात्रियों के प्राण निकले जा रहे थे। उन्हें अब लहरों के थपेड़ों का अनुभव नहीं हो रहा था। सब यही सोच रहे थे कि मृत्यु निकट है। सब लोग दुर्गा माता को जपने लगे। स्त्रियां रोने लगीं। एक स्त्री अपनी सन्तान का गंगासागर में विसर्जन करके आ रही थी। वह लड़के को जल में डालकर फिर उठा न सकी थी। केवल स्त्री चुप थी। वह सोच रही थी कि उसके साथ वह भी सागर में डूब जाए।

एक प्रहर बीत गया। नाविकों ने अपने पांचो पीरों के नाम लिए। सब लोगों ने पूछा, 'क्या हुआ ? नाविक ! क्या हुआ ? तुम चिल्ला क्यों रहे हो ?'

नाविक कोलाहल करते हुए बोले, 'सूर्य निकला, सूर्य निकला लगाओ डांडे, लगाओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डांडे। नौका को किनारे पर ले चलो। नौका की रक्षा करो।'

नौका के यात्री उत्सुकतापूर्वक बाहर आकर देखने लगे कि वे कहां थे। सूर्य का प्रकाश हो गया था। एक प्रहर दिन बीत गया था। उस समय जहां नौका थी, वहां समुद्र नहीं था, नदी का मुहाना था, परन्तु नदी का वहां जितना विस्तार था, उतना अन्यत्र कहीं नहीं था। नदी का एक किनारा नौका के अत्यन्त निकट था। लगभग सौ-पचास हाथों की दूरी पर किनारा दिख रहा था। दूसरा किनारा दिखाई नहीं देता था। दूसरी ओर अत्यन्त जल-राशि थी। यात्रियों ने समझा कि वे लोग समुद में आ पहुंचे हैं। अब भय की कोई बात नहीं है। नाविक ने सूर्य की ओर देखकर दिशा का ज्ञान किया। उनके सामने का किनारा समुद्र का पश्चिम किनारा था। यह देखकर नाविकों की जान-में-जान आई। उन्होंने डांडे लगाए और नौका को किनारे के निकट बढ़ाया। वे नाव को किनारे पर ले गए। अब वे चिन्तित नहीं थे।

नाविक ने कहा, 'ज्वार आने में अभी विलम्ब है। तब तक तुम लोग रेती पर अपने भोजन का प्रबन्ध कर लो। ज्वार आते ही स्वदेश यात्रा प्रारम्भ होगी।'

यात्री किनारे पर उतरकर स्नानादि का नित्य-कर्म करने लगे। स्नानादि के पश्चात् रसोई बनाने की बात सोची तो लकड़ियां नहीं थीं। हिंसक जन्तुओं के भय से लकड़ी काट लाने को कोई उद्यत न हुआ। सबका उपवास होने की स्थिति आ गई। तब वृद्ध युवक से बोला, 'बेटा ! यदि तुम इसका कोई उपाय करो, तो सब लोग भोजन पा जायें। सामने जंगल है। उसके अन्दर से तुम कुछ लकड़ियां ला सकते हो।'

युवक कुछ सोचकर बोला, 'मैं लकड़ी लेने जाता हूं। मुझे कुदाल दो और कुदाल लेकर एक आदमी मेरे साथ चलो।'

अन्य कोई व्यक्ति उसके साथ जाने को उद्यत न हुआ। उस भयानक वन में घुसने का किसी में साहस नहीं था।

'अच्छा, भोजन के समय देखूंगा।' यह कहकर युवक अकेला ही लकड़ी लेने के लिए चल पड़ा। उसने किनारे के कगार पर चढ़कर देखा कि दूर-दूर तक कहीं बस्ती नहीं थी। बड़ी दूर तक जंगल-ही-जंगल था। वह जंगल बड़े-बड़े वृक्षों का नहीं था, छोटे-छोटे वृक्षों का था। उसमें जलाने योग्य लकड़ी नहीं थी। उसे नदी-तट से पर्याप्त दूर जाना पड़ा। अन्त में उसने एक वृक्ष से लकड़ी काटनी आरम्भ की। लकड़ी काटकर उसे उठा लाना भी एक समस्या थी। लकड़ी ढोना एक विषम कार्य था। किसी प्रकार कष्ट सहन कर वह लकड़ी ढोकर किनारे पर लाया। इस कार्य को करने में वह बहुत विलम्ब हो गया था। इधर उसके साथी उसके आने में विलम्ब देख उद्विग्न हो उठे थे। उन्हें आंशंका हुई कि सम्भवतः उसे बाघ ने खा लिया है। भय से किसी ने कगार पर चढ़कर भी युवक की ओर न देखा। वे सब अपने ही प्राणों की रक्षा में संलग्न थे। युवक के प्राणों की किसी को चिन्ता नहीं थी।

अचानक सरिता का जल भीषण नाद के साथ बढ़ने लगा। नाविक समझ गए कि ज्वार आ गया। वे जानते थे कि ऐसे अवसर पर तट की नौकायें जल के थपेड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से किनारे पर पटकी खा-खाकर चूर-चूर हो जाती है। इसलिए वे तुरन्त नौका को खोलकर नदी के बीच में ले जाने का प्रयत्न करने लगे। नौका के खुलते-खुलते रेतीली भूमि जल-मग्न हो गई। यात्री भी बड़ी कठिनाई से नौका पर सवार हो सके। उनको अपना आहार का सामान उठाने का भी अवसर न मिला। वह सब भी किनारे पर ही पड़ा रह गया।

जल का वेग नौका को नदी के बीच में खींचकर ले जा रहा था। नाविकों के मस्तक पर श्रम के कारण श्वेत-बिन्दु झलकने लगे थे। नाविकों के परिश्रम से नौका संकट से बाहर तो चली गई, परन्तु ज्वार के वेग के कारण वह रुक न सकी। वह तीव्र गति से उत्तर दिशा की ओर बढ़ गई। नाविक बहुत परिश्रम करके भी नौका को रोक न सके। नौका फिर लौटकर उस स्थान पर न आई जहां से लहरें उसे बहाकर अन्दर ले गई थीं।

जब जल का वेग मन्दा हुआ तो नौका पर्याप्त दूर निकल गई थी। सबने सोचा कि युवक के लिए नौका लौटाई जाए अथवा नहीं। युवक के सहयात्री, उसके पड़ौसी थे, आत्मीय नहीं। उन लोगों ने सोचा कि अब भाटे के कारण लौटना असम्भव है और फिर रात हो जाने पर नौका चल नहीं सकेगी। यदि वे दूसरे दिन के ज्वार के लिए रुके तो तब तक उन्हें निराहार रहना पड़ेगा। दो दिन के उपवास से लोग व्याकुल हो उठे थे। यात्री किसी प्रकार भी लौटने को उद्यत न हुए। उन सबका विश्वास था कि युवक को बाघ ने मार डाला होगा।'

सबने युवक को छोड़कर देश लौट चलना ही उचित समझा। वे एक व्यक्ति के लिए अपने जीवन को संकटग्रस्त नहीं करना चाहते थे।

नाविकों ने यात्रियों के कहने पर नौका आगे बढ़ा दी और युवक को वहीं छोड़ दिया। वे लोग रात्रि भर युवक की प्रतीक्षा में वहां पड़े नहीं रह सकते थे।

2

युवक लकड़ी का बोझा लेकर जब नदी के तीर पर पहुंचा तो उसे नौका दिखाई न दी। उसके मन में भय उत्पन्न हुआ, परन्तु उसे यह विश्वास न हुआ कि यात्री उसे इस प्रकार छोड़कर चले गए। उसने सोचा कि सम्भवतः ज्वार का जल बढ़ जाने पर उन लोगों ने नौका कहीं दूसरे स्थान पर लगा दी होगी। वह बहुत देर तक किनारे पर खड़ा नौका की प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु नौका फिर वहां लौटकर न आई। वह भूख से व्याकुल हो उठा था। कुछ देर वह नदी के किनारे पर नाव की खोज करता रहा, परन्तु कहीं नाव का कोई पता न चला। वह लौटकर फिर अपने पहले ही स्थान पर आ गया। फिर भी उसने सोचा कि ज्वार के वेग से सम्भवतः नौका आगे निकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई हो। प्रतिकूल दिशा में नाव लौटाने में उसके साथियों को विलम्ब हो सकता है। जब ज्वार का वेग शान्त हो गया तो उसने सोचा कि अब नौका भाटे में अवश्य लौटेगी। धीरे-धीरे भाटे का वेग बढ़ा और घटने भी लगा। संध्या हुई और सूर्य अस्त हो गया। भाटे में यदि नौका को लौटकर आना होता, तो वह अब तक आ गई होती ? अब उसे नौका के लौटने की कोई आशा न रही। युवक को विश्वास हो गया कि या तो नौका जल में डूब गई, अथवा उसके साथियों ने उसे छोड़ दिया। अब नौका लौटकर नहीं आएगी।

युवक कुछ देर तक अपने साथियों के लिए बहुत दुःखी रहा, परन्तु शीघ्र ही अपनी चिन्ता में वह सब कुछ भूल गया। जब उसके मन में यह विचार आया कि उसके साथियों ने उसे छोड़ दिया, तो उसका हृदय क्रोध से भर उठा, परन्तु अब वह कर भी क्या सकता था ? व्यर्थ क्रोध करने से भी कोई लाभ नहीं था। साथी उसके समक्ष नहीं थे।

उसने देखा कि आस-पास में न तो कोई गांव था न भोजन की ही कोई वस्तु थी। पीने का पानी भी वहां मिलना सम्भव नहीं था। नदी का पानी सागर-जल के ही समान खारा था। भूख-प्यास से वह व्याकुल हुआ जा रहा था। वह सोच रहा था कि उसे बर्फीली हवा में खुले आकाश के नीचे रहना पड़ेगा ? वहां रात्रि में शेर-चीते भी आ सकते हैं। अन्य जंगली जानवरों का भी वहां भय था। वह भय से कांप उठा।

युवक बहुत देर तक वहां नहीं रुक सका। वह नदी-तट पर इधर-उधर भटकने लगा। अन्धकार बढ़ता जा रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश, वन, नदी, समुद्र सब कुछ भयानक था। समुद्र-गर्जन और पशु-पक्षियों के भीषण रव सुनाई पड़ रहे थे। वह इधर-उधर घूम रहा था। भय उसे एक स्थान पर स्थिर नहीं रहने देता था। उसकी समझ में नही आ रहा था कि उसे उस समय क्या करना चाहिए और कहां जाना चाहिए।

घूमते-घूमते वह थक गया था। अन्त में वह एक जगह जाकर बैठ गया। उसे बैठे-बैठे नींद आ गई। उसका बदन दिन भर की थकावट से चूर-चूर हो गया था।

जब युवक की निद्रा टूटी तो भयानक रात्रि थी। उसे आश्चर्य हुआ कि उसे बाघ ने क्यों नहीं खा लिया। वह इधर-उधर देखने लगा। उसे बहुत दूर पर कुछ प्रकाश दिखाई दिया। वह उस ओर देखने लगा, प्रकाश बढ़ रहा था। उसे लगा जैसे अग्नि जल रही थी। युवक के हृदय में आशा का संचार हुआ। उसने सोचा कि मनुष्य के बिना अग्नि कौन जला सकता है।

युवक उठकर खड़ा हो गया। वह उसी ओर को चल पड़ा जिधर अग्नि जल रही थी। उसने सोचा कि कहीं वह भौतिक प्रकाश न हो, परन्तु डरकर बैठे रहने से ही वह कैसे अपना जीवन बचा सकता था। यह विचार करता हुआ वह निर्भीक होकर उस ओर चलता गया। वह लताओं को दखता और स्तूपों को लांघता हुआ उस ओर बढ़ा चला जा रहा था। उसके निकट पहुंचकर युवक ने देखा कि एक उच्च शिखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर अग्नि जल रही थी। उसे अग्नि के प्रकाश में एक मनुष्य-मूर्ति दिखाई दी। युवक ने सोचा कि वह उसके निकट पहुंचकर देखे वह कौन व्यक्ति है। वह उसी ओर बढ़ा और उस स्तूप पर चढ़ने लगा। युवक के मन में अज्ञात आशंका अवश्य हुई, परन्तु उसकी चिन्ता न करके वह आगे बढ़ने लगा। उस व्यक्ति के समक्ष जाकर जो दृश्य देखा उससे उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह यह निर्णय न कर सका कि वहां उसे बैठना चाहिए अथवा वहां से भागना चाहिए।

वह आदमी आंखें बन्द किये ध्यानमग्न बैठा था। कुछ देर तक उसने युवक को नहीं देखा। युवक ने देखा कि उसकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। वह कमर से नीचे तक बाघाम्बर पहले हुए था। उसके गले में रुद्राक्षी माला थी। उसका चेहरा दाढ़ी-मूंछों और सिर की जटाओं से ढका था। उसके सामने आग जल रही थी। वहां से भयंकर दुर्गन्ध आ रही थी। युवक दुर्गन्ध का कारण खोजने लगा। युवक ने उस व्यक्ति के आसन की ओर देखा। उसने देखा, उसका आसन किसी व्यक्ति का शव था, जिसपर वह बैठा हुआ था। उसने और भी भयभीत दृष्टि से देखा कि उसके पास एक नर-मुण्ड पड़ा हुआ था। उस स्थान के चारों ओर हड्डियां बिखरी पड़ी हुई थी। यह देखकर युवक स्तम्भित-सा रह गया। उसने कापालिक की बातें सुनी थीं। वह समझ गया कि वह व्यक्ति कोई भयानक कापालिका था। यह देखकर उसका सारा बदन स्वेदपूर्ण हो उठा। वह चेतनाविहीन सा हो गया।

जब युवक वहां पहुंचा था तो कापालिक ध्यानमग्न था। उसने युवक की ओर देखा भी नहीं था। अब कापालिक ने युवक को देखकर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं एक ब्राह्मण हूं।' युवक ने भयभीत स्वर में कहा।

'विष्ठा।' कापालिक बोला। यह कहकर कापालिक फिर उसी प्रकार अपनी पूजा से संलग्न हो गया। युवक स्तम्भित सा वहीं खड़ा रहा। अब उसमें वहां से हिलने-डुलने की भी शक्ति शेष नही रह गई थी। उसका बदन कांप रहा था।

इस प्रकार लगभग आधा प्रहर बीत गया। पूजा के पश्चात् कापालिक आसन से खड़ा होकर बोला, 'मेरे पीछे-पीछे चले जाओ।'

कोई अन्य समय होता तो युवक उसके साथ न जाता, परन्तु उस समय उसके प्राण भूख-प्यास से कण्ठ में आ रहे थे। वह बोला, 'मैं भूख और प्यास से त्रस्त हूं। क्या आपके साथ चलने पर मुझे कुछ खाने को मिलेगा ? भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।'

'तुम्हें भैरवी ने भेजा है। तुम भोजन अवश्य पाओगे।' कापालिक गम्भीर वाणी में बोला।

युवक कापालिक के पीछे-पीछे चल पड़ा। दोनों बहुत दूर तक साथ-साथ गये। मार्ग में उनकी कोई बात न हुई। अन्त में एक पर्ण-कुटी आई। कापालिक ने उसमें प्रवेश कर युवक को उसके अन्दर आने को कहा। कापालिक ने युवक से एक लकड़ी जलवाई। युवक ने उसके प्रकाश में देखा कि झोंपड़ी में एक चटाई पड़ी थी। चटाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर व्याघ्र-चर्म बिछा था। एक कलश में पानी रखा था। उसके निकट ही कुछ फल रखे थे। कुटिया स्वच्छ और साफ थी।

कापालिक बोला, 'फल-मूल जो कुछ यहां है तुम खा सकते हो। पत्तों का दोना बनाकर पात्र से जल पी लेना और व्याघ्र-चर्म बिछा है, इसपर सो जाना। भयभीत न होना, यहां व्याघ्र का भय नहीं है। मुझसे तुम्हारी कल भेंट होगी। जब तक भेंट न हो, झोंपड़ी छोड़कर कहीं न जाना।' यह कहकर कापालिक वहां से चला गया।

युवक ने थोड़े फल खाये ओर कुछ पानी पिया। आहार पाकर युवक को सन्तोष हुआ। फिर वह उस चर्म पर लेट गया। उसे बहुत शीघ्र नींद आ गई। थका होने के कारण नींद आने में विलम्ब न हुआ।

प्रातःकाल उठते ही युवक कुटी से बाहर निकला और अपने घर जाने की राह खोजने में व्यस्त हुआ। वह कापालिक से भी भेंट करना चाहता था।

उस जंगल से निकलकर जाना भी सरल कार्य नहीं था। उसने सोचा कि कापालिक अवश्य राह जानता होगा। सम्भवतः मार्ग पूछने पर वह बता देगा। उस समय कापालिक ने उसके प्रति कोई शंका-जनक कार्य नहीं किया था। इसलिए वह उससे डर नहीं रहा था। कापालिक ने उसे मना किया था कि जब तक उससे भेंट न हो वह कुटी से कहीं न जाये। सम्भव था कि उसकी आज्ञा न मानने से वह क्रोध करता। युवक ने सुन रखा था कि कापालिक असाध्य कार्य कर सकते हैं। इसलिए उसकी अवज्ञा करना अनुचित था। इस प्रकार सोच-विचार कर युवक ने कापालिक की कुटी में ही रहने का निश्चय किया। उसने स्वयं अपना मार्ग खोजने का विचार त्याग दिया।

धीरे-धीरे तीसरा प्रहर हो गया और कापालिक आया। उस समय तक युवक की भूख फिर प्रबल हो उठी थी। कुटी में जो कुछ शेष फल-मूल थे वे समाप्त हो चुके थे। अब बिना फल-मूल खोजे उसका काम नहीं चल सकता था। संध्या होने में जब थोड़ा समय रह गया तो वह फलों की खोज में कुटी से बाहर निकलकर वन में फल खोजता हुआ आगे बढ़ता गया।

युवक ने फलों की खोज में समीप के सब स्थान खोजे। जो एक दो वृक्ष वहां थे, उनसे बादाम जैसा एक फल मिला। वह फल खाने में बहुत ही स्वादिष्ट था। युवक ने उसे भरपेट खाया। उसे वह बहुत रुचिकर लगा।

उस जंगल में थोड़ा घुसते ही लोग राह भूल जाते थे। वही दशा इस युवक की भी हुई। थोड़ी दूर जाते ही उसे ध्यान न रहा कि कुटी किस दिशा में थी। तभी उसे गम्भीर गर्जन सुनाई पड़ा। वह समझ गया कि समुद्र उसके निकट था। वह उस जंगल से बाहर हुआ और सामने विशाल समुद्र दिखाई दिया। उसे देखकर युवक को अपार हर्ष हुआ। वह समुद्र के सिकतापूर्ण तट पर जाकर बैठ गया। उसके सामने फेनिल समुद्र लहरें मार रहा था। उसकी जितनी दूर तक भी दृष्टि जाती थी, उतनी ही दूर तक फेनों की रेखा दिखाई देती थी। ऊंची-ऊंची लहरें समुद्र के धरातल पर नृत्य कर रही थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक को इतना भी ज्ञान न रहा कि समुद्र के किनारे बैठकर कितनी देर तक सागर के सौन्दर्य को देखता रहा। हलका-हलका अन्धकार सागर-वृक्ष पर छा गया। तब युवक को कुछ चैतन्य हुआ। वह एक ठण्डी सांस लेकर उठ खड़ा हुआ और समुद्र की ओर से लौट पड़ा। ज्यों ही वह लौटा, त्यों ही उसे वहां एक अपूर्व सुन्दरी दिखाई दीं संध्या की आभा में उसने देखा वह अपूर्व सुन्दरी खड़ी थी। उसका सौन्दय ऐसा था, मानो चित्र-पट के ऊपर चित्र खिंचा हो। उसका चेहरा पूरी तरह दिखाई नहीं दे रहा था, फिर भी वह मेघाडम्बर से निकले चन्द्रमा की भांति उज्जवल था। उसके विशाल नेत्र स्थिर तथा कटाक्ष स्निग्ध थे, गम्भीर और ज्योतिर्मय। साक्षात् सौन्दर्य युवक के समक्ष आकर उपस्थित हो गया था।

ऐसे दुर्गम जंगल में ऐसी देवि-मूर्ति को देखकर युवक अवाक् रह गया। उसके मुख से वाणी न निकली। वह केयल एकटक उसे देखता रहा। वह उसके रूप में खो गया था। उसे अपनी सुध-बुध न रही।

वह रमणी भी अनिमेष लोचनों से एकटक उस युवक को देख रही थी। दोनों की दृष्टि में आश्चर्य की रेखाएं थीं। रमणी की दृष्टि स्थिर थी, मौन थी, परन्तु इस मौन में भी वह युवक से कुछ कह रही थी। वह बहुत कुछ कह रही थी, परन्तु युवक उसे समझने में नितान्त असमर्थ था। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। वह मात्र उसके रूप को निहार रहा था।

समुद्र तट पर वे दोनों बहुत देर तक इसी दशा में खड़े रहे। कुछ देर पश्चात् युवती मधुर वाणी में बोली, 'युवक ! क्या तुम राह भूल गए हो ?'

युवती के कण्ठ-स्वर के सुनकर युवक की हृत्तन्त्री बज उठी। वह क्या उत्तर दे, समझ न सका। उसके नेत्र एकटक युवती के मुख-मंडल पर टिके थे। उसके नेत्रों में युवती की प्रतिमा साकार हो उठी थी। वह उसी प्रकार उसकी ओर देखता रहा।

रमणी कोई उत्तर न पाकर बोली, 'मेरे साथ आओ।' यह कहकर चल चल पड़ी। युवक उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। थोड़ी देर पश्चात् वह उस सघन वन में वह न जाने कहां खो गई। वह अनायास ही उसकी आंखों से ओझल हो गई, परन्तु उसने देखा कि वह उस कुटी के सामने खड़ा था जहां कापालिक उसे गत रात्रि को छोड़कर गया था।

युवक ने मन-ही-मन उस युवती को धन्यवाद दिया कि उसने उसे उस कुटी पर पहुंचा दिया। वह उसे न मिलती तो सम्भवतः वह उसे न खोज पाता। वह कुटी में प्रवेश कर चटाई पर लेट गया। उसे भूख-प्यास कुछ नहीं थी। उस समय केवल उस सुन्दरी का रूप उसके नेत्रों में बसा हुआ था। युवक सोच रहा था कि कहीं वह वनदेवी तो नहीं थी जो उसे कुटिया का मार्ग दिखाने के लिए वहां आई थी। युवक उसी के ध्यान में डूबा करवटें बदलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक कुटी के द्वार बन्द किए, हथेली पर सिर रखे, बैठा था। वह बहुत देर तक माथा ऊपर न उठा सका। वह उस सुन्दरी के विषय में सोचने लगा, 'वह कोई देवी थी, या कापालिक की माया ?' युवक निस्पन्द दशा में बैठा विचार-निमग्न था। वह कुछ भी न समझ सका। युवती की आकृति अब भी उसकी पुतलियों में साकार थी। वह उसे अपने समक्ष खड़ी देख रहा था।

वह अन्यमनस्क था, इसलिए देख न सका कि उस कुटी में उसके आने से पूर्व ही एक लड़की जल रही थी। पर्याप्त रात्रि बीत जाने पर उसे कुछ ध्यान आया तो उसने इधर-उधर देखा। उसने देखा कि कुटी में केवल लकड़ी ही नहीं जल रही थी, वरन् चावल इत्यादि भोजन-सामग्री भी रखी हुई थी। उसे देखकर युवक कुछ चकित हुआ। उसने सोचा कि अवश्य ही वह कापालिक द्वारा वहां भेजी गई होगी। उसके अतिरिक्त अन्य कौन यह सामग्री वहां रखकर जा सकता था ? उसके मन में कापालिक के प्रति सद्‌भावना उत्पन्न हुई, कोई दुर्भावना नहीं जगी।

युवक ने चावलों को एक हांडी में पकाकर भोजन किया। उसकी भूख शान्त हुई और वह निश्चिन्त होकर चटाई पर लेट गया। लेटने पर उसने देखा कि वह सुन्दरी मुस्कराती हुई फिर उसके नेत्रों में साकार खड़ी थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल चर्म-शय्या त्याग कर युवक समुद्र-तट की ओर चल पड़ा। प्रथम दिवस के अनुभव के कारण आज उसे राह पहिचानने में विशेष कठिनाई न हुई। प्रातः कर्म से निवृत्त होकर वह वहीं बैठ गया। वह किसी की प्रतीक्षा में था। वह सोच रहा था कि प्रथम दिवस वाली रमणी आज फिर आयेगी। इस आशा को मन में लिए हुए वह उसी स्थान पर बैठा रहा, परन्तु पर्याप्त दिन चढ़ जाने पर भी वहां कोई न आया। वह उसी स्थान पर चारों ओर टहलने लगा। धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो गया और अन्धकार बढ़ने लगा। तब वह हताश होकर कुटी में बैठा था। वह उसी प्रकार मौन बैठा रहा। उसने युवक से एक शब्द न कहा। युवक उसके मौन से कुछ भयभीत-सा हो उठा।

युवक बोला, 'अब तक मैं प्रभु के दर्शनों से क्यों वंचित रहा ? प्रभु ने मुझे इस प्रकार क्यों भूला दिया ?'

कापालिक बोला, 'मैं अपनी पूजा में व्यस्त था। पूजा-कार्य पूर्ण किये बिना मैं यहां नहीं आ सकता था।'

युवक ने अपने घर लौटने की इच्छा प्रकट की। वह बोला, 'मैं अपने घर का मार्ग नहीं जानता महाराज ! मेरे पास मार्ग-व्यय भी नहीं है। मैं आशा करता हूं प्रभु उसकी व्यवस्था कर देंगे। मैं आपका आजीवन आभारी रहूंगा।'

कापालिक बोला, 'तुम मेरे साथ आओ।' यह कहकर कापालिक उठ खड़ा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवक की घर लौटने की व्यवस्था हो सकगी, इस आशा से वह कापालिक के साथ-साथ चल दिया। वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलता चला जा रहा था। उसके मन में अपने घर लौटने की उत्कंठा थी। वह सोच रहा था कि सम्भवतः कापालिक उसके लौटने की व्यवस्था कर देगा।

उस समय तक संध्या का पूर्ण अन्धकार नहीं फैला था। हलका-हलका प्रकाश अभी शेष था। युवक कुछ आगे बढ़ा तो उसकी पीठ पर एक कोमल कर का स्पर्श हुआ। उसने घूमकर देखा तो अवाक् रह गया। उसने देखा, वही सुन्दरी उसके समक्ष खड़ी थी। वह मूर्ति उसकी आंखों में उतर आई ? युवक ने देखा कि वह मुंह पर अंगुली रखकर चुप रहने का संकेत कर रही थी। वह समझ गया कि रमणी बोलने को मना कर रही थी। युवक कुछ न बोला। वह आश्चर्यचकित खड़ा रह गया।

कापालिक यह सब न देख सका। वह आगे बढ़ता गया। उसके दूर चले जाने पर रमणी धीरे स्वर में बोली, 'कहां जा रहे हो ? ना जाओ, लौटो, भागो। तुम मृत्यु के मुख में जा रहे हो। यह तुम्हारी बलि चढ़ा देगा।'

यह बात कहकर रमणी धीरे-से खिसक गई। उत्तर के लिए वह खड़ी नहीं रही। युवक पहले तो कुछ चकित हुआ। फिर सोचने लगा कि वह रमणी किधर गई। उसकी समझ में कुछ न आया कि वह माया थी अथवा नारी ? उसे आशंकासूचक बात सुनाई दी थी, परन्तु शंका किस बात की ? तान्त्रिक क्या नहीं कर सकता ? वह भागकर कहां जा सकता था ? वहां उसे बचाने वाला कौन था ?

युवक यही सोच रहा थ कि तभी उसने देखा कापालिक उसे अपने पीछे न पाकर लौट रहा था। कापालिक बोला, 'विलम्ब क्यों करते हो ? शीघ्रता करो। समय निकला जा रहा है। मेरी पूजा में विध्न न डालो। मेरा समय हो गया।'

युवक फिर उसके पीछ-पीछे चल पड़ा। उसके पैर भारी हो गये थे। उसका दिल धड़-धड़कर रहा था। वह भयभीत हो उठा था। उसका सिर चकरा रहा था।

कुछ दूर जाने पर उसे एक कच्ची कुटी दिखाई दी। उसके पीछे समुद्र-तट था। कुटी की बगल से कापालिक युवक को लेकर चला। तभी तीर की तरह वह रमणी फिर एक ओर से दूसरी ओर को निकल गई। वह जाते समय फिर बोली, 'अब भी भागो। क्या तुम नहीं जानते कि तांत्रिक की पूजा नर-मांस से होती है ? यह तुम्हारा संहार करके अपनी पूजा सम्पन्न करेगा। भागो...भागो...भागो।'

यह सुनकर युवक का मस्तक स्वेदपूर्ण हो गया। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। उसका बदन निष्प्राण-सा हो गया। उसे सम्पूर्ण वायुमण्डल भांय-भांय करता प्रतीत हुआ। उसका हृदय उद्विग्न हो उठा। दुर्भाग्यवश रमणी की यह बात कापालिक के कानों में भी पहुंच गई। वह बोला, 'कपालकुण्डले !' उसके नेत्र अंगारों के समान जल रहे थे। उसके केश हवा में उड़ रहे थे। उसका श्वांस तीव्र हो उठा था।

यह शब्द युवक के कानों में घन-गर्जन के समान पड़ा। कपालकुण्डला ने उसका कोई उत्तर न दिया। वह वन में लुप्त हो गई। युवक उसे न देख सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कापालिक ने युवक का हाथ पकड़ लिया। वह उसे खींचकर ले जाने लगा। मनुष्यघाती करों के स्पर्श से युवक की धमनियों का रक्त दुगने वेग से प्रवाहित होने लगा। एक बार युवक में फिर साहस आ गया। वह बोला, 'आप मेरा हाथ छोड़िये। मैं भाग नहीं जाऊंगा। मैं आपके पीछे-पीछे चल रहा हूं। आप मुझे कहां ले जाना चाहते हैं ?'

कापालिक ने कोई उत्तर न दिया। वह उसे खींचता हुआ उस कच्ची कुटी की ओर ले जा रहा था।

'युवक फिर बोला, 'आप मुझे कहां ले जा रहे हैं ? आप क्या करना चाहते हैं मेरा ?'

'पूजा के स्थान पर।'

कापालिक गम्भीर वाणी में बोला। 'मैं अपनी पूजा सम्पन्न करूंगा।'

'क्यों ?' युवक बोला, 'मुझसे आपकी पूजा कैसे सम्पन्न होगी ? मैं आपकी पूजा में क्या सहयोग प्रदान करूंगा ?'

'तुम्हारा वध किया जाएगा।' घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में कापालिक बोला।

यह सुनते ही युवक ने अपना हाथ खींचा। जितनी शक्ति से उसने अपना हाथ खींचा, उससे सामान्य जन होता तो गिर जाता, परन्तु कापालिक का बदन हिला तक नहीं। युवक की कलाई कापालिक के हाथ में रही। युवक के हाथ की हड्डी टूटने लगी। युवक चुपचाप कापालिका के साथ चलने लगा। अन्य कोई उपाय नहीं था। वह उससे छूटकर भाग नहीं सकता था।

रेतीले मैदान में पहुंचकर युवक ने देखा कि वहां भी लड़कियां जल रही थीं। उसके चारों ओर तांत्रिक की पूजा का सामान फैला हुआ था। युवक समझ गया कि उसे आज की पूजा का शव बनाया जाएगा। उसकी अब कुछ ही समय पश्चात् वही दशा होगी जो वह कल उस शव की देखकर गया था, जिस पर बैठा कापालिक पूजा कर रहा था।

लताओं की सूखी हुई डालियां वहां रखी हुई थी। कापालिका ने उनसे युवक को बांधना आरम्भ किया। युवक ने शक्तिभर बल-प्रयोग किया, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह कापालिक से अपने आपको मुक्त कर पाता। उसकी सम्पूर्ण शक्ति कापालिक की शक्ति के समक्ष निरर्थक सिद्ध हुई। वह समझ गया कि कापालिक मस्त हाथी जैसा बलवान था।

युवक को बल-प्रयोग करते देखकर कापालिक बोला, 'मूर्ख ! बल प्रयोग किसलिए करता है तू ? तेरा जीवन आज सार्थक हुआ जा रहा है। भैरवी की पूजा में तेरा शरीर अर्पित होगा। इससे अधिक तेरा और क्या उपयोग हो सकता है ? मैं तेरे निरर्थक जीवन को सार्थक बना रहा हूं। तू सीधा मोक्ष जायेगा।'

कापालिक ने युवक को कसकर बांध दिया। फिर वह वध से पूर्व की पूजा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संलग्न हुआ। युवक निरन्तर अपने बन्धन को तोड़ने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु लतायें बहुत मजबूत थीं। उनका बन्धन बहुत दृढ़ था। अब मृत्यु अवश्य आयेगी, यह सोचकर युवक ने अपने इष्ट-देव के चरणों में ध्यान लगाया। उसे अपनी जन्म-भूमि की स्मृति आई, अपना घर याद आया, अपने माता-पिता के स्नेहमय चेहरे याद आये और दो बूंद आंसू ढुलककर रेत पर गिर पड़े। कापालिक अपनी प्राथमिक पूजा समाप्त कर, अपनी खड़ग लेने के लिए आसन से उठ खड़ा हुआ। वह, जहां उसने खड़ग रखी थी, वहां गया तो खड़ग उसे न मिली। 'आश्चर्य !' कहकर कापालिक विस्मित हो उठा। उसे स्मरण था कि संध्या को उसने खड़ग यथास्थान रखी थी। उसने सोचा, फिर वह कहां गई ? कापालिक ने इधर-उधर खोजा, परन्तु खड़ग न मिली। उसने कुटी की ओर लौटकर कपालकुण्डला को पुकारा, परन्तु बार-बार पुकारने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर न दिया। कापालिक की आंखें लाल और भवें तिरछी हो गईं। वह तीव्र गति से से पग बढ़ाता हुआ कुटी की ओर बढ़ा।

इस बीच में युवक ने फिर बंधन-मुक्त होने के लिए प्रयास किया, परन्तु सब प्रयास व्यर्थ रहा। उसका बन्धन इतना कड़ा था कि वह उसे खोल न सका।

युवक ने बालू के ऊपर कुछ पैरों की ध्वनि सुनी। ध्वनि कापालिक की नहीं थी। युवक ने दृष्टि घुमाकर देखा, वह कपालकुण्डला थी। उसके हाथ में खड़ग थी। वह लपकी हुई उधर ही आ रही थी।

कपालकुण्डला बोली, 'चुप। बोलना नहीं। खड़ग मेरे पास है। मैंने इसे छिपाकर रख दिया था। मैं अभी तुम्हें बन्धन-मुक्त किये देती हूं। तुम बन्धन-मुक्त होकर भागो।'

कपाल कुण्डला ने युवक के बन्धन काट दिये। वह युवक को मुक्त करके बोली, 'भागो मेरे पीछे। मैं तुम्हे बचाकर ले चलती हूं। तीव्र गति से दौड़ना, जिससे कापालिक हमें पकड़ न सके।' यह कहकर कपालकुण्डला मार्ग दिखाती हुई दौड़ने लगी। युवक उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। दोनों बहुत तीव्र गति से दौड़े जा रहे थे। उन्हें उस समय अपने प्राण बचाने की चिन्ता थी।

कापालिक ने कुटिया का कोना-कोना खोजा, परन्तु उसे खड़ग न मिली। उसे कपालकुण्डला भी दिखाई न दी। वह सन्देह से भरा हुआ वापस लौटकर वहां आया तो उसने देखा कि युवक वहां नहीं था। यह देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसकी दृष्टि कटी लताओं पर गई। कापालिक युवक की खोज करने लगा, परन्तु उस घिनके वन में भागने वाले को देख पाना बहुत कठिन था। अन्धकार के कारण उसे राह दिखाई नहीं दे रही थी। वह इधर-उधर दौड़ा, परन्तु कोई ध्वनि सुनाई न दी। अन्त में वह एक वृक्ष की चोटी पर चढ़कर इधर-उधर देखने लगा। जिस वृक्ष पर वह चढ़ा, वर्षा के पानी से वह गल गया था। कापालिक के वृक्ष पर चढ़ने से वृक्ष का वह टहना टूट गया, जिस पर वह चढ़ा था। टहने के साथ कापालिक जमीन पर आ गिरा और उसका बदन टूट गया। वह उठकर चलने योग्य भी न रहा। उसके बदन में बहुत चोट आई। वह कहराकर वहीं पड़ा रह गया। उसकी पूजा भंग हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कापालिक पड़ा-पड़ा कपालकुण्डला पर दांत किटकिटा रहा था। वह समझ गया था कि युवक को कपालकुण्डला ही भगाकर ले गई है। उसका क्रोध उस समय कपालकुण्डला पर अधिक था। उसी ने उसकी पूजा भंग की थी। उसने अपने मन में संकल्प किया कि वह कपाल-कुण्डला से अपनी पूजा को भंग करने का बदला अवश्य लेगा।

4

कपालकुण्डला और युवक अंधेरी रात में भागे जा रहे थे। युवक के लिए वह जंगल अनजाना था। वह कपालकुण्डला के पीछे-पीछे भाग रहा था। जंगल में युवक के लिए उसका पीछा करना कठिन था। कभी वह एक ओर हो जाती थी और युवक दूसरी ओर। अन्त में कपालकुण्डला बोली, 'तुम मेरा आंचल पकड़ लो।' युवक ने रमणी का आंचल पकड़ लिया। बहत दूर जाने पर वे धीरे-धीरे चलने लगे। उन्हें वहां अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था।

कपालकुण्डला इस प्रकार युवक को अपने साथ लिए हुए जंगल में बहुत दूर निकल गई। रात्रि के दो प्रहर बीत चुके थे। उन्हें अन्धकार में एक देवालय दिखाई दिया। उससे लगा हुआ एक घर भी था। वह देवालय वहां से स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उसके निकट कोई बस्ती नहीं थी। वह जंगल का देवालय था। कपालकुण्डला ने देवालय के द्वार के निकट जाकर उसके फाटक को खटखटाया। कई बार खट-खटाने पर अन्दर से कोई बोला, 'कौन ? कपालकुण्डला ? तू इस समय यहां कैसे आई बेटी ?'

'द्वार खोलो ?' कपालकुण्डला बोली। 'अन्दर आकर सब वृतान्त कहूंगी मां।'

किसी ने अन्दर से द्वार खोला। द्वार को खोलने वाली उस देवालय की पुजारिन थी। वह लगभग पचास वर्ष की थी। कपालकुण्डला ने अपने हाथ से वृद्धा की गंजी खोपड़ी अपनी ओर खींच कर उसके कान में युवक के विषय में कुछ कहा। जो कुछ उसने कहा वह इतने धीमे स्वर में था कि युवक उसे सुन नहीं पाया।

पुजारिन बहुत देर तक हथेली पर गाल रखे चिन्तानिमग्न रही। अन्त में बोली, 'बात सरल नहीं है। महापुरुप जो चाहें छिपे रहो। प्रातः काल मैं तुम्हें मेदिनीपुर की राह पर छोड़ आऊंगी। वहां से तुम अपने गांव की दिशा में प्रस्थान कर सकते हो।'

युवक ने अभी तक कुछ नहीं खाया था। पुजारिन ने उसके लिए भोजन की व्यवस्था की। भोजन करके युवक रसोई-घर में ही लेट गया। युवक के सोने का प्रबन्ध करके कपालकुण्डला समुद्र-तट पर लौटने का प्रयत्न करने लगी। पुजारिन बोली, 'तुम अभी न जाओ, थोड़ा ठहरो। एक बात है। मुझे भय लग रहा है। तुम्हारा वहां लौटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना खतरे से खाली नहीं है।'

कपालकुण्डला ने पूछा, 'क्या बात है ? आप इतनी भयभीत क्यों हो उठीं ? क्या आपको भय लग रहा है ?'

'मैंने जबसे तुम्हें देखा है, सर्वदा बेटी कहकर पुकारा है। माता के चरणों की शपथ लेकर कह सकती हूं कि तुम्हारी माता से अधिक मैंने तुम्हें स्नेह किया है। मेरी याचना की अवहेलना न करना। मैं तुम्हारे जीवन के विषय में इस समय बहुत चिंतित हूं।'

'न करूंगी मां ! तुम कहो, क्या कहना चाहती हो ?' कपालकुण्डला बोली।

'मैं तुमसे भिक्षा मांगती हूं कि तुम अब वहां लौट कर न जाओ। कापालिक तुमसे रुष्ट हो गया है। वह तुम्हारे प्राणों का हनन कर सकता है। तुमने उसकी पूजा में विघ्न डाला है। मुझे लगता है कि इस समय वहां जाने पर तुम्हारे प्राणों की रक्षा न होगी।'

'यह मैं भी जानती हूं।' कपालकुण्डला गम्भीर वाणी में बोली।

'परन्तु इसके अतिरिक्त और जा भी कहां सकती हूं। वहां न जाऊं तो कहां जाऊं ? क्या संसार में मेरे लिए अन्यत्र कोई स्थान है, जहां मैं जा सकती हूं ?'

'इस युवक के साथ कहीं दूर देश में चली जाओ। क्या यह तुम्हारे उपकार का इतना बदला भी न चुकायेगा ?'

कपालकुण्डला चुप रही।

पुजारिन ने पूछा, 'बेटी ! क्या सोचती हो तुम ? क्या यह ठीक नहीं रहेगा ? तुम अपने मन में सोच विचार कर लो।'

'जब तुम्हारा शिष्य आया था तो तुमने कहा था कि युवती का युवा पुरुष के साथ जाना उचित नहीं है। अब तुम मुझे इनके साथ जाने को क्यों कहती हो ? क्या यह तुम्हारे शिष्य के ही समान युवा नहीं हैं ?' कपालकुण्डला बोली।

'उस समय मुझे तुम्हारी मृत्यु की आशंका नहीं थी। उस समय जिस सदुपयोग की सम्भावना थी वह अब सम्भव नहीं रहीं। चलो, माता की अनुमति लें। देखते हैं माता क्या कहती हैं ? माता अवश्य आज्ञा देंगी।' पुजारिन ने कहा।

पुजारिन ने दीपक हाथ में लिया और माता के मन्दिर का द्वार खोला। कपालकुण्डला भी उसके साथ गई। मन्दिर में काली की मूर्ति स्थापित थी। दोनों ने उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। पुजारिन ने आचमन करके एक मन्त्र उच्चारण किया और प्रतिमा के पैरों पर पुष्प-पत्र चढ़ाकर उसकी ओर देखती रही। कुछ देर पश्चात् वह कपालकुण्डला की ओर देखकर बोली, 'बेटी ! देखो माता ने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। पुष्प गिरे नहीं। तुम इस युवक के साथ निःसंकोच भाव से यात्रा करो। मैं विषयी लोगों का चरित्र जानती हूं। तुम यदि इसकी प्रेमिका बनकर जाओगी तो यह तुम्हें ले जाने में लज्जित होगा। तुमसे भी लोग घृणा करेंगे। तुम कहती हो कि यह ब्राह्मण है। इसके गले में यज्ञोपवीत है। यह यदि तुम्हें विवाह करके ले जाये तो उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। बिना विवाह के मैं तुम्हें इसके साथ जाने को नहीं कहूंगी।' पुजारिन ने कहा।

'वि...वा...ह !' यह शब्द विचित्र ढंग से कपालकुण्डला ने कहा। वह बोली, 'विवाह का नाम तो मैं आपके मुख से कई बार सुन चुकी हूं, परन्तु विवाह किसे कहते हैं, यह मैं नहीं जानती। इसके लिए मुझे क्या करना होगा ? विवाह कैसे किया जाता है ?'

पुजारिन मुस्कराकर बोली, 'विवाह ही स्त्रियों के लिए धर्म का एक-मात्र मार्ग है बेटी ! इसी लिये स्त्री को सहधर्मिणी कहा जाता है। माता भी भगवान शिव की पत्नी है। इनका भी भगवान के साथ विवाह हुआ था।'

पुजारिन ने सोचा, उसने कपालकुण्डला को सब कुछ समझा दिया और कपालकुण्डला ने मन में समझ लिया कि वह विवाह के विषय में सब समझ गई। कपालकुण्डला बोली, 'तो करादो मां ! परन्तु उन्हें छोड़ कर जाने का मेरा मन नहीं होता। उन्होंने इतने दिन तक मेरा पालन-पोषण किया है। क्या मैं उन्हें इस प्रकार छोड़कर चली जाऊं ?'

'उन्होंने तुम्हारा पालन-पोषण किस लिए किया है यह तुम नहीं जानती बेटी ! तुम नहीं जानतीं कि बिना स्त्री का सतीत्व नष्ट किए तांत्रिक-क्रिया सिद्ध नहीं होती। मैंने तन्त्र-शास्त्र पढ़ा है। माता जगदम्बा सतियों में प्रधान हैं। यह सतीत्व को नष्ट करने वाली पूजा को कभी ग्रहण नहीं करतीं। इसीलिए तुम यदि इस युवक के साथ भागोगी तो कभी कृतघ्न न कहाओगी। अब तक सिद्धि का समय नहीं आया है, इसी लिए तुम्हारी रक्षा हो रही है। आज तुमने जो कार्य किया है, उससे तुम्हारे प्राणों की आशंका उत्पन्न हो गई। इसलिए मैं शादी करने को कहती हूं और मातेश्वरी ने भी आज्ञा दे दी है। अतएव तुम जाओ। मैं तुम्हें यदि अपने यहां रख पाती तो अवश्य रख लेती, परन्तु तुम जानती हो कि यहां कोई भरोसा नहीं है। कि महात्मा तुम्हें रहने देंगे। वह तुम्हें बलपूर्वक यहां से ले जायेंगे। इसलिए तुम्हारा यहां से जाना ही उचित है। उसी में तुम्हारा कल्याण है।'

'तो फिर विवाह करा दीजिए। यदि आप यही मेरे हित में समझती हैं तो यही सही।' कपालकुण्डला बोली।

दोनों मन्दिर से बाहर निकलीं। पुजारिन एक कमरे में कपालकुण्डला को बैठाकर युवक के पास जाकर बोली, 'युवक ! क्या कर रहे हो तुम ? मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हूं। तुम्हें नींद तो नहीं आ रही है ?'

युवक को नींद नहीं आ रही थी। वह बोला, 'जी नहीं। मैं अभी जग रहा हूं। मुझे नींद नहीं आई है। मेरा चित्त ठीक नहीं है। मेरा सिर दुःख रहा है।'

पुजारिन ने कहा, 'मैं तुम्हारा परिचय प्राप्त करने के लिए आई हूं। क्या तुम ब्राह्मण हो ?'

'जी हां, मैं ब्राह्मण हूं।' युवक ने उत्तर दिया।

'तुम किस श्रेणी के ब्राह्मण हो ?' पुजारिन ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हम राढ़ीय ब्राह्मण हैं।' युवक बोला।

'हम लोग भी राढ़ीय ब्राह्मण है। मेरे वंश में कुलाचार्य भी हैं, परन्तु फिर भी मैं इस समय माता की सेवा में हूं। तुम्हारा क्या नाम है ?' पुजारिन ने युवक से पूछा।

'मेरा नाम नवकुमार शर्मा है।' युवक ने कहा।

'आपका निवास-स्थान कहां है ?' पुजारिन ने पूछा।

'सप्तग्राम।' युवक बोला।

'आपका गोत्र क्या है ?' पुजारिन ने पूछा।

'वन्ध्यघटी।' युवक ने उत्तर दिया।

'तुमने कितनी शादियां की हैं ?' पुजारिन ने पूछा।

'केवल एक।' युवक ने उत्तर दिया।

नवकुमार ने सब बातें खोलकर नहीं कहीं। वास्तव में उसकी कोई स्त्री न थी। उसने रामगोविन्द घोष की कन्या के साथ शादी की थी। शादी के पश्चात् पद्मावती अपने पिता के घर रही। बीच-बीच में ससुराल भी आती रही। जब उसकी आयु तेरह वर्ष की हुई तो उनके पिता सपरिवार पुरुषोत्तम-दर्शन के लिए गए। उसी समय अकबर द्वारा लाए जाकर पठान लोग उड़ीसा चले गए थे।

जब रामगोविन्द घोष वापस लौटने लगे तो उनका पठानों से युद्ध हो गया। अतः घर लौटते समय वह सपरिवार पठानों के हाथों में पड़ गये। पठान लोग उस समय निरपराध यात्रियों से अर्थ के लिए बल-प्रयोग करते थे। रामगोविन्द कड़वे मिजाज के थे। वह पठानों को गाली दे बैठे। परिणाम यह हुआ कि वह पकड़े गये और घोष महाशय को अपना धर्म त्यागना पड़ा। धर्म त्यागने पर कहीं उन्हें पठानों ने मुक्त किया। वह उसी समय से मुसलमान हो गये।

वह प्राण बचाकर घर लौटे अवश्य, परन्तु मुसलमान होने के कारण जाति से बहिष्कृत हो गये। उस समय नवकुमार के पिताजी जीवित थे। उन्हें भी अपने जातिच्युत होने के भय से पुत्र-वधू का परित्याग करना पड़ा। उसके पश्चात् नवकुमार की अपनी पत्नी से फिर कभी भेंट नहीं हुई। इस लिए वह विवाह होना-न-होना एक तरह से बराबर ही था।

रामगोविन्द फिर बंगाल में न रहे। वह राज-दरबार में उच्च पद प्राप्त करने के लिए आगरा जाकर रहने लगे। उन्होंने सपरिवार मुसलमान नाम धारण कर लिया। उसके पश्चात् अपने श्वसुर तथा पत्नी की नवकुमार को कोई सूचना न मिली। इस घटना से दुःखी होकर नवकुमार ने फिर विवाह न किया। तब से वह एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसी लिए उनका जीवन बहुत नीरस-सा हो गया था।

पुजारिन यह सब कुछ न जानती थीं। उसके मन में सोचा कि दो शादियों में भी कोई हानि नहीं है। वह बोली, 'मैं आपसे एक बात पूछने के लिए आंई हूं। जिस कन्या ने आपकी प्राण-रक्षा की है, उसने अपने प्राणों पर महान् संकट लिया है। जिन महापुरुष के द्वारा कपालकुण्डला अब तक पालित थी, वह बहुत भयंकर स्वभाव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनके पास फिर लौटकर जाने में उसे अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे। वह उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे। इसने उनकी पूजा भंग की है। इसके लिए वह इसे क्षमा नहीं करेंगे। ऐसी स्थिति में आपका कर्त्तव्य हो जाता है कि आप इसके प्राणों की रक्षा करें। क्या इसकी रक्षा का आप कोई उपाय बता सकते हैं ?'

'मुझे भी यही आशंका है। आप इसका क्या उपाय सोचती हैं ? मेरे प्राण देने से भी यदि इसका कोई उपकार हो सके तो मुझे आपत्ति न होगी। यदि मैं उस नरहन्ता के पास चला जाऊं, तो सम्भवतः इनके प्राण बच सकें। मैं इनके लिए सब कुछ करने को उद्यत हूं।' युवक ने कहा।

पुजारिन हंसकर बोली, 'तुम पागल हो। इससे क्या लाभ होगा ? इससे तुम्हारे प्राण तो जायेंगे ही, साथ में इस बेचारी के भी प्राण न बचेंगे। इसका केवल एक हीं उपाय है। यदि तुम कर सको तो मैं तुम्हें बता सकती हू।'

'वह क्या ?'

'आप इसे अपने साथ लेकर यहां से चले जायें। यहां रहने पर दो-एक दिन में ही तुम लोग पकड़ लिए जाओगे। इस देवालय में वह महापुरुष प्रायः आते-जाते रहते हैं। मुझे कपालकुण्डला के भाग्य में अशुभ दिखाई दे रहा है। यहां रहते तुम्हें उनसे कोई नहीं बचा सकेगा। वह महान् शक्तिशाली हैं।' पुजारिन बोली।

नवकुमार ने साग्रह पूछा, 'मेरे साथ इनके यहां से जाने में कठिनाई क्या है ? क्या आप को इसमें क़ोई कठिनाई प्रतीत होती है ? मेरे विचार से तो यह सम्भव ही है।'

'यह किस की कन्या है, किस कुल में इसका जन्म हुआ है, यह आप नहीं जानते। यह किसकी पुत्री हैं, कैसा इसका चरित्र है, यह भी आप नहीं जानते। क्या आप इसे अपनी संगिनी बना सकेंगे ? संगिनी बनाकर ले जाने पर भी क्या आप इसे अपने घर में स्थान दे सकेंगे ? यदि आपने इसे अपने घर में स्थान न दिया तो यह बेचारी अनाथ कहां जाएगी, क्या करेगी ?' पुजारिन बोली।

नवकुमार थोड़ा विचार कर बोले, 'अपनी प्राण-रक्षिका के लिए मैं सब कुछ करने को उद्यत हूं। यह मेरे परिवार में रहेंगी। इन्हें वहां कोई कष्ट न होगा।'

'यह तो ठीक है, परन्तु जब आपके आत्मीय स्वजन पूछेंगे कि यह किसकी पत्नी है, तो आप क्या उत्तर देंगे ? आपके पास उनके पूछे प्रश्नों और शंकाओं का क्या समाधान होगा ?'

नवकुमार बोले, 'आप इनका परिचय मुझे बता दें। आप जो कहेंगी मैं वही करूंगा। इनका परिचय तो आप ही दे सकेंगी मुझे।'

'इस लम्बी राह में पन्द्रह दिन तक तुम एक दूसरे की सहायता के बिना कैसे रह सकोगे ? लोग तुम्हें देख-सुनकर क्या कहेंगे ? मैं इस कन्या को अपनी पुत्री कह चुकी हूं। मैं भी इसे एक अज्ञात युवक के साथ परदेश कैसे जाने दूंगी ? क्या कोई मां ऐसा कभी कर सकती है ?' पुजारिन बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार बोले, 'तो आप भी हमारे साथ चलिए। आपके साथ चलने से यह कठिनाई दूर हो जायेगी।'

'मैं साथ चली तो यहां भवानी की पूजा कौन करेगा ? जिस कार्य के लिए मैंने अपना जीवन लगाया है उसे किस पर छोड़ जाऊं ?'

नवकुमार क्षुब्ध होकर बोले, 'तो क्या आप कोई उपाय नहीं बता सकतीं ? आप उपाय नहीं बता सकतीं तो आखिर मैं क्या करूं ? मैं सब-कुछ करने को उद्यत हूं।'

'उपाय केवल एक ही है और वह आपकी उदारता पर निर्भर करता है।' पुजारिन गम्भीरतापूर्वक बोली।

'वह क्या ? मैं तो किसी भी बात के लिए मना नहीं कर रहा। आप उपाय बतलाएं, मैं वहीं करूंगा। मैं इनके प्राणों को अपने प्राणों से अधिक मूल्यवान समझता हूं।'

'तो सुनिये। यह ब्राह्मण-कन्या है, यह मैं भली प्रकार जानती हूं। इस कन्या को बाल्यकाल में लुटेरे अपहृत करके ले जा रहे थे। उनका जहाज टूट जाने पर वे इसे समुद्र-तट पर छोड़ गए। यह सब बाद में आपको इस कन्या से ज्ञात हो जाएगा। इन कापालिक महाशय ने इसे अपनी सिद्धि का उपकरण बनाकर इसका पालन-पोषण किया। वह शीघ्र ही अपना प्रयोजन सिद्ध करता। यह अभी तक अविवाहित और पवित्र है। आप इसके साथ विवाह कर लें। फिर कोई कुछ न कह सकेगा। मैं यथाशास्त्र विवाह सम्पन्न करा देती हूं। इस प्रकार तुम दोनों सुगमतापूर्वक यात्रा कर सकोगे।'

नवकुमार उठकर बैठे हो गए। वह कमरे में इधर-उधर घूमने लगे। उन्होंने कोई उत्तर न दिया।

पुजारिन ने कुछ देर पश्चात् पूछा, 'आप इस समय सोयें। मैं प्रातःकाल जगा दूंगी। अकेल जाना चाहोगे तो अकेले ही चले जाना। मैं आपको मेदिनपुर की राह बता दूंगी। इस बात के लिए मैं आप पर जोर न दूंगी। इस बेचारी के भाग्य में यदि मृत्यु ही बदी है तो यह उसे प्राप्त करेगी।'

युवक सो न सका। वह बहुत रात गए तक न जाने क्या-क्या सोचता रहा। वह अपने अन्दर आत्मग्लानि अनुभव करने गला। उसने मन में कहा 'तू कितना अधम है।'

बहुत सबेरे पुजारिन नवकुमार के पास आई। उसने देखा कि वह जग रहा था। पुजारिन ने पूछा, 'बताइये, आपसे क्या विचार किया ? रात्रि में आपने मेरी बात पर विचार कर लिया होगा। आप बिना संकोच अपना मत स्पष्ट करें।'

नवकुमार बोले, 'आज से कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी हुई। इसके लिए यदि मुझे संसार का भी त्याग करना होगा तो मैं करूंगा। अब कहिए कन्या-दान कौन करेगा ? क्या-आप इसका कन्या-दान करने को उद्यत हैं ?'

यह सुनकर पुजारिन का चेहरा हर्ष से लिख उठा। उसने अपने मन में सोचा, 'इतने दिन पश्चात् जगदम्बा की कृपा से ज्ञात होता है कि मेरी पुत्री को ठिकाना मिल गया।' वह बोली, 'कन्या-दान मैं ही करूंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहकर वह अपने कमरे में गई और एक पात्र निकाल लाई। उसे देखकर वह बोली, 'यद्यपि आज लग्न नहीं है, परन्तु शादी में कोई हानि नहीं है। मैं गोधूलि के समय मैं कन्या-दान करूंगी। तुम्हें आज व्रत रखना है। शेष लौकिक कार्य तुम अपने घर जाकर पूरे कर लेना। मेरे पास ऐसा स्थान है जहां एक दिन के लिए मैं तुम्हें छिपा कर रख सकती हूं। यदि कापालिक आयेगा भी तो वह तुम्हें खोज न सकेगा। शादी हो जाने पर कल प्रातःकाल तुम सपत्नीक अपने घर चले जाना। फिर तुम्हें मार्ग में कोई परेशानी न होगी।'

नवकुमार उद्यत हो गये। संध्या की गोधूलि में नवकुमार के साथ कपालकुण्डला का विवाह सम्पन्न हो गया। पुजारिन ने विधिवत कार्य सम्पन्न करा दिया।

कापालिक को कोई सूचना न मिली। दूसरे दिन प्रातःकाल पुजारिन उन्हें मेदिनपुर की राह पर ले चली।

यात्रा आरम्भ करने से पूर्व कपालकुण्डला देवी को प्रणाम करने के लिए मन्दिर में गई। उसने माता को भक्ति-भाव से प्रणाम करके बेल-पत्र उनके चरणों पर चढ़ा दिया और ध्यानपूर्वक उसे देखती रही। वह बेल-पत्र अचानक नीचे गिर गया।

कपालकुण्डला बड़ी ही भक्तिपरायण स्त्री थी। बेल-पत्र को प्रतिमा के चरणों से गिरते देखकर वह बहुत डरी। उसने यह बात पुजारिन से कही। उसे सुनकर पुजारिन भी दुःखी हुई। वह बोली, 'अब अन्य कोई उपाय नहीं है। पति ही तुम्हारा धर्म है। पति यदि श्मशान में भी ले जाये, तो तुम्हें उनके साथ जाना चाहिए। वैसे मुझे यह युवक सरल प्रकृति का प्रतीत होता है।'

तीनों चुपचाप आगे बढ़े। दिन चढ़े वे मेदिनपुर की राह पर जा पहुंचे। वहां तक पहुंचाकर पुजारिन विदा हुई तो कपालकुण्डला रोने लगी। जो कपालकुंण्डला को सबसे अधिक प्रिय थी, वह विदा हो रही थी। उससे अब फिर कभी उसकी भेंट न होगी।

पुजारिन भी रोने लगी। वह आंखों के आंसू पौंछकर कपालकुण्डला से बोली, 'बेटी ! तू जानती है, भगवती की कृपा से मुझे धन की कमी नहीं है। तेरी धोती के किनारे में मैंने जो बांध दिया है, उसे पति को देकर कहना, पालकी का प्रबन्ध कर लें। मुझे अपनी मां समझकर मेरी याद को न भुला देना।'

पुजारिन रोती हुई विदा हुई। कपालकुण्डला भी रोती हुई नवकुमार के साथ आगे बढ़ गई। दोनों धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। नवकुमार के मन में कोई शंका नहीं थी, परन्तु कपालकुण्डला के मन में देवी के चरणों से बेल-पत्र के गिर जाने से भय उत्पन्न हो गया था।

5

नवकुमार ने मेदिनीपुर पहुंचकर पालकी बदली और कपालकुण्डला के लिए एक दासी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रक्षक और पालकी का प्रबन्ध किया। पालकी पर चढ़ाकर उसे आगे भेजा। पास में पैसे अधिक न होने के कारण वह स्वयं पैदल ही चले। दोपहर के भोजन के पश्चात पालकी के कहार उन्हें पीछे छोड़कर आगे निकल गए। संध्या को शीत-काल के बादलों से आकाश अच्छादित था। संध्या बीत गई थी। रात्रि में कुछ बूंदा-बांदी होने लगी थी। नवकुमार कपालकुण्डला के पास पहुंचने के लिए व्याकुल हो उठे थे। उन्होंने सोचा था कि आगे की सराय में भेंट होगी, परन्तु पालकी उन्हें वहां नहीं मिलीं। अन्धेरी रात थी। नवकुमार तीव्र गति से आगे बढ़ रहे ये। अचानक कोई कड़ी चीज उनके पैर के नीचे आई। पैर की ठोकर से वह वस्तु टूटी। नवकुमार वहीं खड़े हो गये। पैर से लगने वाली वस्तु को हाथ में उठाकर देखा तो टूटा हुआ लकड़ी का तख्ता था।

नवकुमार ने ध्यान से देखकर जान लिया कि वह टूटी हुई पालकी का तख्ता था। पालकी को देखते ही नवकुमार का हृदय कांप उठा। उन्हें कपालकुण्डला की आशंका हुई और आगे बढ़ने पर किसी कोमल वस्तु से उनका स्पर्श मनुष्य जैसा जान पड़ा। उन्होंने हाथ में टटोल कर देखा तो वह मनुष्य का शरीर था। साथ ही कोई द्रव्य पदार्थ भी हाथ से लगा। उन्होंने नाड़ी देखी, तो वह चलती न थी। क्या वह मृत था ? विशेष रूप से देखा तो श्वांस का शब्द सुनाई पड़ा। श्वांस है, तो नाड़ी क्यों नहीं है ? नाक पर हाथ रखकर देखा तो श्वांस बिलकुल न जान पड़ा। फिर यह शब्द कैसा ? शायद कोई जीवित व्यक्ति भी है यहां। वह बोले, 'क्या कोई यहां जीवित व्यक्ति है ?'

'है।' उनके कानों में आवाज आई।

'तुम कौन हो ?' नवकुमार ने पूछा।

'तुम कौन हो ?' उनके कानों में आवाज आई।

नवकुमार को वह स्वर स्त्री का जैसा जान पड़ा।

'क्या तुम कपालकुण्डला हो ?' नवकुमार ने पूछा।

'कपालकुण्डला कौन है, मैं नहीं जानती। डाकुओं द्वारा हम पर आक्रमण हुआ है।' वह बोली।

यह सुनकर नवकुमार बोले, 'क्या हुआ है तुम्हें ?'

'डाकुओं ने मेरी पालकी तोड़ दी और एक रक्षक को मार डाला। शेष सब रक्षक भाग गये। डाकुओं ने मेरे गहने छीन कर मुझे पालकी से बांध दिया है। क्या तुम मुझे मुक्त कर सकते हो ?'

नवकुमार ने आगे जाकर देखा तो एक स्त्री पालकी से बंधी पड़ी थी। नवकुमार ने उसके बन्धन खोलकर पूछा, 'क्या तुम उठ सकोगी ?'

स्त्री बोली, 'मेरे पैर में चोट लगी है। उसमें दर्द है। फिर भी थोड़ी सहायता मिलने पर मैं उठ सकूंगी।'

नवकुमार ने हाथ बढ़ा दिया। रमणी उनकी सहायता से उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार ने पूछा, 'क्या तुम थोड़ा चल सकोगी ?'

रमणी बोली, ' आपके पीछे क्या कोई आ रहा है ?'

'नहीं।' नवकुमार ने कहा।

'यहां से चट्टी कितनी दूर है ?' स्त्री ने पूछा।

नवकुमार बोले, 'कितनी दूर है, यह मैं नहीं जानता, परन्तु जान पड़ता है निकट ही है।'

'अन्धेरी रात में जंगल में प्ड़ी रहकर भी मैं क्या करूंगी ? आपके साथ अपनी मंजिल तक चलती हूं।' वह स्त्री बोली।

नवकुमार बोले, 'विपद्-काल में संकोच करना मूर्खता है। मेरे कंधे का सहारा लेकर चलो।'

स्त्री ने नवकुमार के कंधे का सहारा लिया और आगे बढ चली।

चट्टी निकट ही थी। उन दिनों चट्टी के निकट भी ऐसे काण्ड हो जाते थे। थोड़ी ही देर पश्चात् नवकुमार उस स्त्री को साथ लेकर चट्टी में पहुंचे।'

नवकुमार ने देखा कि उसी चट्टी में कपालकुण्डला भी पहुंच चुकी थी। उसकी दासियों ने उसके लिए एक कमरा ले रखा था। नवकुमार ने अपने साथ आई हुई रमणी के लिए अपनी बगल की कोठरी ठीक करके उसे उसमें ठहरा दिया। चट्टी की मालकिन कमरे में दीपक रख गई। दीपक के प्रकाश में नवकुमार ने देखा वह रमणी असाधारण रूपवती थी। विलक्षण रूप था उसका।

सुन्दरी का बदन कुछ लम्बा अवश्य था, परन्तु हाथ, पैर इत्यादि एकदम सुडौल थे। उसका चेहरा गुलाब के फूल जैसा था। उसके नेत्रों में जादू भरा था। उसके रूप को देखकर नवकुमार आश्चर्यचकित रह गये।

वह सुन्दरी नवकुमार की ओर देखकर बोली, 'आप क्या देख रहे हैं, मेरा सौन्दर्य? यह वास्तव में में बड़ा आकर्षक है। इसे देखकर बुद्धि भ्रमित हो जाती है।'

नवकुमार ने अप्रतिभ होकर आंखें नीची कर लीं। उन्हें निरुत्तर देखकर अपरिचित रमणी हंसकर बोली, 'आपने क्या कभी किसी युवती को नहीं देखा ? या मैं ही आपको कुछ बहुत सुन्दर दिखाई दे रही हूं ?'

यह बात सहज की कही गई होती तो तिरस्कर प्रतीत होता, परन्तु रमणी ने जिस हंसी के साथ कही थी, उससे वह व्यंग के अतिरिक्त और कुछ न जान पड़ी। नवकुमार रमणी की बात का उत्तर न देते हुए बाले, 'मैंने युवतियां देखी हैं, परन्तु इतनी सुन्दर नहीं ।'

रमणी सगर्व बोली, 'क्या एक भी नहीं ?'

नवकुमार के हृदय में कपालकुण्डला का रूप जग उठा। वह सगर्व बोले, 'एक भी नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता।'

प्रस्तर पर लोहे का आघात हुआ। युवती बोली, 'तब ठीक है। क्या वह आपकी गृहिणी हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यों ? गृहणी को ही मन में क्यों सोचती हो ?'

'बंगाली लोग अपनी गृहिणी को ही संसार में सबसे अधिक सुन्दर समझते हैं।'

'मैं बंगाली अवश्य हूं, परन्तु आप भी तो बंगालिन की ही तरह बातें कर रही हैं। आप किस देश की रहने वाली हैं ?'

युवती ने अपनी पोशाक की झलक दिखाकर कहा, 'अभागिन बंगालिन नहीं है। पश्चिम-प्रदेश की मुसलमानी है।'

नवकुमार ने आश्चर्यपूर्वक उधर देखकर कहा, 'पहनावा तो अवश्य पश्चिम देशीय मुसलमानियों जैसा है, परन्तु बोली बंगालिनी जैसी ही है आपकी।'

थोड़ी देर बाद तरुणी बोली, 'महाशय, वाक्-चातुरी से आपने मेरा परिचय जान लिया, परन्तु अपना परिचय नहीं दिया। जिस घर में वह रूपवती गृहणी है, वह घर कहां है ?'

'मेरा घर सप्तग्राम में है।' नवकुमार ने कहा।

यह सुनकर उस रमणी ने कोई उत्तर न दिया। वह सहसा मुंह फेरकर दीपक को सामने करने लगी।

थोड़ी देर बाद बिना मुंह उठाये ही वह स्त्री बोली, 'दासी का नाम मोती है। महाशय का नाम क्या है, क्या मैं सुन सकती हूं ?'

'नवकुमार शर्मा।' नवकुमार ने कहा।

रमणी ने दीपक बुझा दिया। नवकुमार शर्मा ने समझा कि हवा के झोंके से दीपक बुझ गया। उन्होंने चट्टी की मालकिन से दूसरा दीपक लाने को कहा। उन्होंने उस सुन्दरी को दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए सुना।

थोडी देर पश्चात् वहां एक मुसलमान आया। रमणी उसे देखकर बोली, 'यह क्या ? तुम लोगों को इतनी देर कहां हुई ? अन्य सब लोग कहां है ?'

'पालकी ढोने वालों को बटोर कर लाने में हम लोग पालकी से बहुत पीछे रह गये थे। फिर मार्ग में एक टूटी पालकी और आपको उसमें न देखकर हम लोग चिंतित हो गये। अभी वे सब लोग उसी स्थान पर खड़े हैं। वे आपकी खोज में गये हुए हैं। मैं आपको खोजने के लिए ही यहां आया हूं।'

'उन सबको बुला लाओ।' रमणी ने आज्ञा दी।

नौकर सलाम करके चला गया। रमणी ठोड़ी पर हाथ रखे बैठी रही। उसके नेत्र कुछ नम थे। उसका हृदय बार-बार उभर और दब रहा था। उसके हृदय में एक उद्वेलन सा हो रहा था।

नवकुमार विदा होना ही चाहते थे कि मोती ने खड़ी होकर पूछा, 'आप कहां ठहरे हैं ?'

'यहीं बगल के कमरे में।' नवकुमार ने कहा।

'आपके कमरे के सामने एक पालकी रखी है। क्या आपके साथ कोई औरत भी है ?' उस रमणी ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मेरी पत्नी मेरे साथ हैं।' नवकुमार ने उत्तर दिया।

मोती फिर व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोली, 'क्या वही अद्वितीय सुन्दरी हैं जिनका आपने अभी जिक्र किया था ?' उस समय वह नवकुमार की ओर देखकर मुस्करा रही थी।

'देखने से आप स्वयं समझ सकेंगी।' नवकुमार बोले।

'क्या उनसे मेरी भेंट हो सकेगी ?' रमणी ने पूछा।

'क्यों नहीं ? आप उनसे सहर्ष भेंट कर सकती हैं। यहीं तो हैं निकट में। कुछ दूर तो नहीं हैं।'

'मेरी उस अद्वितीय सुन्दरी को देखने की बहुत इच्छा है। अभी आप जायें। मैं थोड़ी देर बार सूचना दूंगी।' वह रमणी उसी प्रकार मुस्कराती हुई बोली।

नवकुमार चले गये। कुछ देर पश्चात बहुत से आदमी, दास-दासी बहुत सा सामान लेकर उपस्थित हुए। एक पालकी भी आई। तब नवकुमार के पास सूचना आई, 'बीवीजी आपको याद कर रही हैं।'

नवकुमार मोती बीवी के पास गये। उन्होंने देखा, मोती बीवी ने अपने वस्त्र बदलकर नई वेशभूषा बना ली थी। वहःयुवती अब आभूषणों से सजी हुई थी। मोती बीवी नवकुमार से बोली, 'महाशय ! चलिए अपनी पत्नी से भेंट करवाइये। मेरा उनका दर्शन करने का बहुत मन है।'

नवकुमार बोले, 'इसके लिए आभूषण पहिनने की क्या आवश्यकता थी ? उनके पास तो गहने नहीं है। वह तो बहुत साधारण वेषभूषा में आपको मिलेंगी। संभवतः आपको उतनी सुन्दर भी न लगें।'

'गहने दिखाने के लिए पहने गये हैं। स्त्रियों के पास आभूषण रहें, और वे उन्हें न दिखायें, यह संभव नहीं है। खैर चलिए। मुझे आभूषण पहिनना बहुत प्रिय है।'

नवकुमार मोती बीवी को अपन साथ लेकर चले। जो दासी पालकी पर आई थी, वह भी उसके साथ चली। वह उनके पीछे-पीछे चल रही थी।

कपालकुण्डला कमरे के फर्श पर बैठी थी। दीपक जल रहा था। केश-राशि पीछे के भाग में अन्धकार किये थी। मोती बीवी ने उसे देखा तो उसके होंठों के किनारे पर मुस्कान की रेखा दिखाई दी। वह दीपक उठाकर कपालकुण्डला के चेहरे के पास ले आई। कपालकुण्डला का रूप देखकर उसकी हंसी काफूर हो गई। मोती बीवी का चेहरा गम्भीर हो गया। वह अनिमेष नेत्रों से उसके सौदर्न्य को देखती रह गई। मोती बीवी मुग्ध थी और कपालकुण्डला विस्मित। मोती बीवी ने ऐसा रूप अन्यत्र नहीं देखा था।

कुछ देर पश्चात् मोती बीवी अपने आभूषण उतारने लगी। वह उन्हें एक-एक करके कपालकुण्डला को पहनाने लगी। उसने अपने सब आभूषण कपालकुण्डला को पहना दिये।

कपालकुण्डला कुछ न बोली। वह मौन प्रतिमा के समान बैठी मोती बीवी की ओर देखती रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवकुमार बोले, 'आप यह सब क्यों कर रही हैं ?'

मोती बीवी ने उनकी बात का कोई उत्तर न दिया। वह कपालकुण्डला को आभूषण पहिनाती रही।

आभूषण पहिनाकर मोती बीवी बोली, 'आपने सच कहा था। ऐसे सुन्दर पुष्प राजोद्यान में भी नहीं खिलते। दुःख यही है कि इस रूप को मैं राजधानी में न देख सकी। ये गहने इन्हीं के उपयुक्त हैं। इसी लिए मैंने पहिना दिये है। आप भी इन्हें देखकर कभीं-कभी मुझे याद किया करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। क्या आप याद नहीं करेंगे मुझे ?'

नवकुमार विनम्र भाव से बोले, 'आपके आभूषण न लेकर भी मैं आपको याद रखूंगा। आप इतने भार से इस ब्राह्मण को न लादिए।'

मोती बोली, 'मेरे पास बहुत आभूषण हैं। इन्हें देने से कुछ कमी न आएगी। इन्हें आपकी पत्नी को पहिनाकर मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ है आप मुझे उससे वंचित क्यों करना चाहते हैं ? आप सत्य जानें, मैं बहुत आनन्द ग्रहण कर रही हूं।' यह कहती हुई मोती बीवी वहां से चली गई।

अकेल में उसकी दासी पेशमन ने पूछा, बीवी यह कौन थे ?'

मोती ने मुस्कराकर उत्तर दिया, 'मेरे पति।'

पेशमन ने मोती बीवी के इन शब्दों को उपहास मात्र समझकर उनपर कुछ ध्यान न दिया, परन्तु इसी समय उसकी दृष्टि मोती बीवी के मुख पर गई तो उसने देखा उसके नेत्र नम थे और चेहरा उदास हो गया था।

6

मोती बीवी ने अपने कमरे से आभूषण रखने का हाथी दांत का डिब्बा भेजा। डाकुओं ने उसके बहुत आभूषण लूटे थे। जो कुछ उसके पास था वह सब कुछ नहीं लूटा जा सका था। उसके अतिरिक्त पीछे सेवकों के पास जो था, वह सब भी बच गया था। उसके पास अभी बहुत से आभूषणों के सेट थे।

नवकुमार ने दो एक आभूषण कपालकुण्डला के बदन पर छोड़कर शेष सब डिब्बे में रखर दिये। दूसरे दिन मोती बीवी ने वर्द्धमान और नवकुमार ने सप्तग्राम की ओर यात्रा आरम्भ की। नवकुमार ने कपालकुण्डला को पालकी पर बिठाकर आभूषणों का डिब्बा उसके पास रख दिया। कहार नवकुमार को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गए।

कपालकुण्डला पालकी का द्वार खुला रखकर चारों ओर देखती जा रही थी। एक भिक्षुक भीख मांगता हुआ पालकी के साथ-साथ चल रहा था। वह बार-बार भिक्षा मांग रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपालकुण्डला बोली, 'मेरे पास कुछ नहीं हैं, तुम्हें क्या दूं ?'

भिक्षुक कपालकुण्डला के अंग के गहने देखकर बोला, 'यह क्या कहती हो मां! तुम्हारे पास हीरे-मोती के आभूषण हैं, है क्यों नहीं ? आप जो चाहें दे सकती हैं।'

कपालकुण्डला बोली, 'आभूषण पाजाने से तुम्हारी तृप्ति हो जाएगी ?'

भिक्षुक विस्मित होकर बोला, 'क्यों नहीं मां ? आभूषण तो मेरे लिए बहुत बड़ी वस्तु हैं।'

कपालकुण्डला ने आभूषणों का डिब्बा उठाकर उसे दे दिया। उसने अपने बदन के गहने भी उतारकर उसे दे दिए। उसे आभूषणों का कोई मोह नहीं था। वास्तव में उसे आभूषण का मूल्य भी ज्ञात नहीं था।

यह देखकर भिक्षुक विह्वल हो गया। दास-दासी कोई भी यह न देख सका। भिक्षुक इधर-उधर देखकर एक सांस से भागा। कपालकुण्डला सोचने लगी कि यह भिक्षुक भागा क्यों ? क्या उससे कोई भूल हो गई ? उसने आभूषण उसे दिए हैं। उसने चोरी तो नहीं की।

नवकुमार कपालकुण्डला के साथ स्वदेश पहुंचे तो वह पितृहीन थे। घर में विधवा माता और दो बहिनें थीं। बड़ी बहिन विधवा थी। दूसरी श्यामसुन्दरी सध ।वा होकर भी विधवा थी, क्योंकि वह कुलीन की स्त्री थी। नवकुमार के परिवार के सभी लोग उनके वापस न पहुंचने पर निराश हो चुके थे। यात्रियों ने यह बात उड़ा दी थी कि नवकुमार को बाघ ने खा लिया है। उसकी मृत्यु हो गई है।

उस समय जब यह समाचार नवकुमार की माता के कानों में पहुंचा था तो घर में कुहराम मच गया था। उनकी मृत्यु की सूचना से माता मृतप्राय हो गई थी। जब नवकुमार अपनी पत्नी के साथ घर लौटे तो कौन पूछता कि पत्नी किस जाति की है ? प्रसन्नता से सब लोग खिल उठे। घर में आनन्द छा गया। मां के हर्ष का पारावार न रहा।

नवकुमार की माताजी ने बड़े स्नेह के साथ बहू को घर में बिठाया। जब नवकुमार ने देखा कि उसके घरवालों ने कपालकुण्डला को ग्रहण कर लिया तो उनके हृदय में अपार हर्ष हुआ। उनके हृदय में कपालकुण्डला के लिए श्रद्धा और प्रेम था, परन्तु फिर भी घर में कहीं उसका अनादर न हो, इस भय से अभी तक वह चिन्तित थे। अब वह आशंका भी दूर हो गई। कपालकुण्डला को सभी ने सस्नेह अंक में भर लिया। उनकी माताजी उसके रूप पर मुग्ध हो उठीं।

नवकुमार का निवास-स्थान नगर के निर्जन स्थान में था। वहां अधिक आदमियों का आगमन न होता था। नवकुमार के घर के पीछे एक जंगल था। उसके सामने आधे कोस पर भागीरथी बहती थी, जो वन को घेरती हुई चलती थी। मकान साधारण था, परन्तु दो मंजिल का था। उसके ऊपर का कमरा कपालकुण्डला को मिला। वहां से वह प्रकृति का सौन्दर्य देखा करती थी। ऊपरी छत पर दो युवतियां खड़ी चारों ओर को देख रही थीं। संध्या का सुहावना समय था। चारों ओर जो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई देता था, सुन्दर-ही-सुन्दर था। जंगल में विविध पक्षी कलरव कर रहे थे। दूसरी ओर नगर की अट्टालिकायें अपने सिर ऊंचे किए कह रही थीं, 'यह सब कितना सुन्दर है। एक ओर भागीरथी की धारा और दूसरी ओर यह छोटा सा ग्राम। भागीरथी के निकटवर्ती प्रदेश की छटा अवर्णनीय थी।'

उन दो स्त्रियों में ध्यानसुन्दरी अपनी भाभी को 'बहू-, कभी 'बहन', कभी 'मृणा' नाम से सम्बोधित कर रही थी। कपालकुण्डला नाम विकट होने के कारण घर के लोगों ने उसका नाम 'मृणमयी' रख लिया था। वे उसे संक्षेप में 'मृणा' कहकर पुकारती थीं। यही नाम अब कपालकुण्डला को भी प्रिय हो गया था। उसे सुनकर वह मुग्ध हो उठती थी।

श्यामसुन्दरी अपने बचपन का एक गीत गा रही थी। वह मृणमयी से बोली, 'क्यों भाभी ! क्या तुम तपस्विनी ही बनी रहोगी ? अब तो तुम नगर में आ गई हो। यह तपस्या का आवरण उतार फेंको।'

'क्यों, क्या मैं तपस्या कर रही हूं ?' मृणमयी बोली।

श्यामसुन्दरी ने कहा, 'तुम अपने इन खुले बालों की चोटी क्यों नहीं बांधतीं। इन्हें खुला क्यों रखती हो ? तुम श्रृंगार क्यों नहीं करतीं ? श्रृंगार करो, बिन्दी लगाओ।'

मृणमयी ने मुस्कराकर श्यामसुन्दरी के हाथ से अपने बालों को छुड़ा लिया।

श्यामसुन्दरी बोली, अच्छा, मेरी साध तो पूरी करो। एक बार तुम हमारी तरह श्रृंगार करो। आखिर तुम कितने दिन योगिनी बनी रहोगी ? मुझे तुम्हारा यह रूप अच्छा नहीं लगता।'

'जब इनके साथ मेरी भेंट नहीं हुई थी तो मैं योगिनी ही थी। अब योगिनी आत्मा में से कैसे जा सकती है ?'

'अब तुम ऐसी न रहने पाओगी।' श्यामसुन्दरी बोली।

'क्यों ?' मृणमयी ने पूछा।

'मैं तुम्हारे योग को तोड़ दूंगी। क्या पारस पत्थर को नहीं जानती हो तुम ?' श्यामसुन्दरी मुस्कराकर बोली।

'नहीं, मैं नहीं जानती।' मृणमयी ने कहा।

'पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है।'

'तो इससे क्या होता है ?' मृणमयी ने पूछा।

'स्त्रियों के पास भी एक पारस-पत्थर होता है।' श्यामसुन्दरी मुस्कराकर बोली।

'वह कैसा होता है ?' मृणमयी ने पूछा।

'पुरुष की हवा से योगिनी गृहिणी हो जाती है। तुमने उसी पारस-पत्थर को छू लिया है।' कहकर वह मस्ती में गाने लगी।

मृणमयी बोली, 'समझ गई। समझ लो कि पारस-पत्थर मैंने छू लिया है और सोना हो गई हूं। मैंने चोटी कर ली, गले में चन्द्रहार पहिन लिया। मैं अब सोने की पुतली बन गई। यह सब हो गया, परन्तु यह सब होने से क्या सुख हुआ श्यामसुन्दरी ?'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अच्छा बताओ मृणमयी ! पुष्प के खिलने से क्या सुख होता है ?' मृणमयी ने सरलातापूर्वक पूछा।

श्यामसुन्दरी का मुख गम्भीर हो गया। वह बोली, 'पुष्प का क्या सुख है; यह तो मैं तुम्हें नहीं बता सकती। मैं कभी पुष्प बनकर खिली ही नहीं। तुम्हारी तरह कली होती तो खिलकर अवश्य सुख का अनुभव करती। यह तो तुम्हें वहीं बता सकता है मृणमयी, जो पुष्प बनकर खिली हो, महकी हो और जिसने किसी के हृदय-स्थल को सुवासित किया हो, जैसे तुमने किया है।'

मृणमयी वन में रहकर कभी इस रहस्य को न समझ सकी थी। इस बात का उसने कोई उत्तर न दिया। वह चुपचाप श्यामसुन्दरी के मुख पर देखती रही।

श्यामसुन्दरी उसे मौन देखकर बोली, 'यदि यह नहीं है तो बताओ तुम सुख किसे मानती हो ?'

कुछ देर सोचकर मृणमयी बोली, 'मैं बता नहीं सकती। सम्भवतः समुद्र के किनारे वन-वन घूमने में ही मुझे अधिक सुख मिलता था।'

यह सुनकर श्यामसुन्दरी आश्चर्यचकित रह गई। वह कुछ क्षुब्ध हुई और कुछ क्रुद्ध होकर बोली, 'अब लौट जाने का कोई उपाय है क्या ?'

'अब तो कोई उपाय नहीं है।' मृणमयी बोली।

'तब क्या करोगी ? श्यामसुन्दरी ने पूछा।

'पुजारिन कहा करती थीं—यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।'

श्यामसुन्दरी ने मुंह पर कपड़ा रखकर हंसते हुए कहा, 'बहुत ठीक महामहोपाध्याय ! बहुत ठीक ? सत्य वचन महाराज !'

मृणमयी ठण्डी सांस लेकर बोली, जो विधाता करेंगे, वहीं होगा। जो भाग्य में लिखा है, वही भोगना पड़ेगा।'

'क्यों, भाग्य में क्या है ? भाग्य में तो तुम्हारे हर प्रकार सुख है। तुम ठण्डी सांस क्यों लेती हो ? तुम्हें क्या दुःख है मृणमयी ?'

'सुनो ! जब स्वामी के साथ यात्रा आरम्भ की तो यात्रा के समय भवानी के चरणों पर मैं बेल पत्र चढ़ाने गई थी। बिना माता के चरणों पर बेल-पत्र चढ़ाए कोई काम नहीं करती थी। यदि कार्य शुभ होता तो माता अपने पैर से बेल-पत्र नहीं गिरातीं। माता ने बेल-पत्र धारण नहीं किया, अतएव भाग्य में क्या है, मैं कह नहीं सकती।' गम्भीर वाणी में मृणमयी ने कहा। यह कहकर वह मौन हो गई।

श्यामसुन्दरी का बदन स्वेदपूर्ण हो उठा। उसने भी इसे गम्भीर भाव से अपने हृदय में धारण किया। वह भी भवानी की पुजारिन थी। उसके मन में भी शंका ने जन्म ले लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7

मोती बीवी ने वर्द्धमान के लिए यात्रा की। मोती बीवी का चरित्र पाप और पुण्य, दोनों से भरा हुआ था। वह विचित्र प्रकार के चरित्र की स्त्री थी।

जब उसके पिता ने हिन्दू-धर्म छोड़कर इस्लाम धर्म ग्रहण किया था तो उसका नाम लुत्फुन्निसा रखा था। मोती बीवी उसका नाम नहीं था। देश-विदेश में भ्रमण के समय वह अपने को मोती बीवी कहती थी। उसके पिता ढाका में राज-कार्य पर नियुक्त थे। वहां अनेकों स्वदेशी लोगों का जाना-आना रहता था। अपने जान-पहिचान वालों के सामने विधर्मी होकर रहना उन्हें भला न लगा। अतएव वह कुछ दिन पश्चात् ही वहां से आगरा चले गए और अकबर बादशाह ने शीघ्र ही उन्हें उच्च पद् पर नियुक्त कर दिया।

लुत्फुन्निसा भी अब युवती हो चली थी। आगरे में उसने फारसी, संस्कृत, नृत्य आदि की अच्छी शिक्षा प्राप्त की। राजधानी की सुन्दरियों में उसकी ख्याति हो गई। लुत्फुन्निसा की सद् और असद् में समान प्रवृत्ति थी। यह कार्य अच्छा है और यह बुरा, ऐसा सोचकर कभी उसने कोई कार्य नहीं किया। जो कार्य उसे अच्छा लगता था वही वह किया करती थी। उसके पूर्व पति जीवित हैं, इससे किसी उमराव ने उसके साथ शादी नहीं की। वह भी शादी के लिए लालायित नहीं थी। उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया था। उसके पिता चाहते थे कि वह शादी करके उन्हें निश्चिन्त कर दे, परन्तु यह करना लुत्फुन्निसा ने स्वीकार नहीं किया।

लुत्फुन्निसा गुप्त रूप से जिस पर कृपा करती रही थी, उनमें युवराज सलीम भी एक थे। कुल को कलंक न लगे इसलिए सलीम शाह ने लुत्फुन्निसा को अपने महल में नहीं रखा। जब मानसिंह की बहन सलीम की प्रधान महिषी हुई तो लुत्फुन्निसा को उसने अपनी महिषी की प्रधान अनुचरी बना लिया। लुत्फुन्निसा बेगम की सखी बन गई। वह परोक्ष रूप से युवराज की अनुग्रह-गामिनी थी। इस प्रकार लुत्फुन्निसा ऊंचे आसमान पर चढ़ गई। उसने भारत की महिला बनने का स्वप्न देखा।

सलीम के हृदय पर अधिकार जमाकर लुत्फन्निसा मलिका बनने का स्वप्न देख रही थी। उसने सलीम पर अपना पूर्ण प्रभाव जमा लिया था। इसका विश्वास महल में सबको हो गया था।

अकबर के कोषाध्यक्ष ख्वाजा अब्बास की कन्या मेहरुन्निसा लुत्फुन्निसा से भी अधिक सुन्दर थी। एक दिन कोषाध्यक्ष ने युवराज सलीम को अपने घर बुलाया और उसी दिन सलीम की उससे भेंट करा दी।

सलीम मेहरुन्निसा को देखकर उसपर आसक्त हो गया। यह देख कर लुत्फुन्निसा ने सिंहासन की आशा त्याग दी। वह समझ गई कि मेहरुन्निसा के सामने उसका रंग चढ़ने वाला नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुगल-समाट् अकबर की आयु पूर्ण हुई। लुत्फुन्निसा ने एक बार फिर से अपने भाग्य की परीक्षा लेने का प्रयत्न किया। वह आसानी से हार मानकर बैठने वाली स्त्री नहीं थी।

राजा मानसिंह की बहिन सलीम की प्रधान महिषी थी। एक दिन वह उन्हें प्रधान महिषी बनने की बधाई देने गई। वहां खुसरू की मां से उसकी भेंट हुई तो वह बोलीं, 'प्रधान महिषी होना महत्वपूर्ण अवश्य है, परन्तु श्रेष्ठता उसकी है जिसका पुत्र बादशाह हो।'

यह सुनकर लुत्फुन्निसा बोली, 'यह भी सम्भव है। यह आपकी इच्छा के अधीन है। मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। आपकी आज्ञा का उल्लंघन क्या दासी कर सकती है ?'

बेगम ने पूछा, 'वह कैसे ?'

लुत्फुन्निसा मुस्कराकर खुसरू की अम्मीजान से बोली, 'युवराज खुसरू को ही सिंहासन पर बिठाइए।'

बेगम ने कोई उत्तर न दिया। उस दिन फिर यह प्रसंग न उठा, परन्तु यह बात कोई भूला नहीं। सलीम के स्थान पर पुत्र राज्यसिंहासन पर आसीन हो, यह बेगम की इच्छा अवश्य थी। मेहरुन्निसा के प्रति सलीम का प्रेम जैसे लुत्फुन्निसा के हृदय में कांटे की तरह खटक रहा था वैसे ही बेगम के हृदय में भी खटक रहा था। मानसिंह की बहिन एक तुर्क कन्या की आज्ञानुवर्तिनी कैसी बन सकती थी ? दूसरे दिन फिर यह प्रसंग छिड़ा। दोनों ने इस विषय पर विचार-विमर्श किया। बहुत देर तक गुप्त मंत्रणा चलती रही। दोनों ही इस विषय में एक मत थीं।

सलीम के स्थान पर खुसरू को सिंहासन पर बिठाना कोई असंभव कार्य नहीं था। यह बात लुत्फुन्निसा ने बेगम को समझा दी थी। वह बोलीं, 'मुगल साम्राज्य राजपूतों के बाहू-बल पर स्थापित हुआ है और आज भी उन्हीं के बाहु-बल पर निर्भर करता है। राजा मानसिंह खुसरू के श्वसुर हैं। इन दोनों व्यक्तियों के खड़े होने पर कौन इनकी आज्ञा न मानेगा ? यदि ये युवराज के विरुद्ध हो गए तो किसके बल पर युवराज सिंहासन पर बैठ सकते है ? राजा मानसिंह को उद्यत करना बेगम का काम है। खान आजम और अन्य उमरावों को तैयार करने का भार मेरे ऊपर रहा। यह आपके आशीर्वाद से मैं कर सकूंगी, परन्तु एक आशंका है कि कहीं सिंहासन पर बैठकर खुसरू मुझे यहां से निकालकर बाहर न कर दें। यह आप भली प्रकार सोच-विचार लीजिए।'

बेगम उसका मतलब समझ गई। वह हंसकर बोली, 'तुम जिस उमराव की गृहिणी होना चाहेगी, उसी को पाणिग्रहण करना पड़ेगा। तुम्हारा पति पंचहजारी मंसबदार होगा। तुम्हारी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए हर सम्भव कार्य किया जाएगा।'

लुत्फुन्निसा का यही आशय था। यदि स्वाधीनता का ही त्याग करना होतार तो बाल-सखी मेहरुन्निसा की दासी होने में क्या हानि थी ? इससे गौरव की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही थी कि किसी राज-पुरुप की गृह-स्वामिनी बनकर बैठा जाए ? इसी में उसे सम्मान प्राप्त होगा।

इसी लोभ से लुत्फुन्निसा इस कार्य में लगी। सलीम उसकी उपेक्षा करके जो मेहरुन्निसा के पीछे पागल हुआ था, उसका वह उससे बदला लेना चाहती थी। वह सलीम से कुढ़ गई थी। उसके बदन में द्वेष की ज्वाला सुलग रही थी।

खान आजम और दिल्ली के उमराव लुत्फुन्निसा के प्रभाव में थे। खान आजम अपने दामाद के लिए प्रयत्न करेंगे, इसकी उसे पूर्ण आशा थी। खान आजम और अन्य उमराव उद्यत भी हो गए। खान आजम लुत्फुन्निसा से बोले, 'यदि हम लोग सफल न हुए तो हमें अपने बचाव का कोई मार्ग रखना चाहिए। ऐसा न हो कि हम लोग इस षड्यन्त्र में फंसकर ही रह जायें।'

'इसके लिए आप क्या चाहते हैं ?' लुत्फुन्निसा ने पूछा।

खान बोले, 'उड़ीसा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। केवल वहीं मुगलों का शासन प्रखर नहीं है। उड़ीसा की सेना हमारे हाथ में रहनी आवश्यक है। तुम्हारे भाई उड़ीसार के मंसबदार हैं। मैं कल कहूंगा कि वह युद्ध में घायल हो गए हैं। तुम उन्हें देखने के बहाने कल उड़ीसा को प्रस्थान करो। वहां का कार्य समाप्त करके तुम तुरन्त वापस लौट आओ। उस दिशा में आश्वस्त होने पर हमें इस कार्य में हाथ डालने में कठिनाई न होगी।'

लुत्फुन्निसा उड़ीसा जाने को उद्यत हो गई। वह अपना कार्य करके लौट रही थी तभी उसकी नवकुमार से भेंट हुई थी। वह उस समय उड़ीसा से वापस आ रही थी।

जिस दिन नवकुमार से विदा होकर मोती बीवी ने वर्द्धमान की यात्रा की, उस दिन वह वर्द्धमान न पहुंच सकी। वह दूसरी चट्टी में रही। संध्या समय पेशमन से उसकी वातें होने लगीं। उसने पेशमन से पूछा, 'पेशमन ! मेरे पति को देखा तुमने, कैसे लगे तुझे ?'

पेशमन ने विस्मित होकर पूछा, 'क्या मायने ?'

'सुन्दर थे या नहीं, मैं यह पूछना चाहती हूं।' यह कहकर मोती बीवी ने पेशमन की ओर देखा।

जो आभूषण मोती ने कपालकुण्डला को दे दिए थे उनके प्रति पेशमन का विशेष मोह था। उसने सोचा था कि एक दिन वह उससे मांग लेगी। उसकी वह आशा निर्मूल हो गई थी। इसलिए कपालकुण्डला और उसके पति, दोनों के प्रति उसके दिल में जलन थी। वह बोली, 'दरिद्र ब्राह्मण की सुन्दरता और कुरूपता ही क्या ? ऐसा व्यक्ति जैसा सुरूप वैसा ही कुरूप। आपके योग्य किसी भी तरह नहीं है वह।'

उसके मन का भाव समझकर लुत्फुन्निसा हंसकर बोली, 'दरिद्र ब्राह्मण यदि उमराव हो जाये तब.......?'

'आपका मतलब ?' पेशमन ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्यों, क्या तुमने यह नहीं सुना कि बेगम के कहने के अनुसार यदि खुसरू बादशाह हो गये तो मेरा पति उमराव होगा ?'

'यह तो मैं जानती हूं, परन्तु तुम्हारा पूर्व पति उमराव कैसे हो सकेगा, यह मेरी समझ में नहीं आया।'

'जो नया पति बनेगा।' लुत्फुन्निसा ने पूछा।

'जो नया पति बनेगा।' पेशमन बोली।

मोती मुस्कराकर बोली, 'मुझ जैसी सती के दो पति, यह क्या कहती हो तुम? हां यह कौन जा रहा है ?' सामने देखकर बोली।

पेशमन उसे तुरन्त पहचान गई। वह खान आजम का आदमी था। पेशमन ने उसे निकट बुलाया। उस व्यक्ति ने लुत्फुन्निसा को एक पत्र दिया। वह बोला, 'मैं यह पत्र लेकर उड़ीसा जा रहा था। बहुत आवश्यक पत्र है। आप इसे तुरन्त पढ़ें। आपके यहां मिल जाने से मेरा श्रम बच गया। आप न मिलतीं तो मुझे बड़ा परेशान होना पड़ता।'

पत्र पढ़ते ही लुत्फुन्निसा की सारी आशाओं पर तुषारापात हो गया। वह जिस कार्य के लिए इतना श्रम कर रही थीं, वह निरर्थक हो गया। पत्र में लिखा था:

'हम लोगों का प्रयत्न विफल हो गया। मरते समय बादशाह अकबर हमें बुद्धि-बल से परास्त कर गये। उनकी आज्ञा से युवराज सलीम अब जहांगीर बादशाह बन गए हैं। अब तुम खुसरू के लिए प्रयत्न न करता। तुम तुरन्त आगरा लौट जाओ और वहां समय नष्ट न करो। अब इस दिशा में प्रयत्न करने से कोई लाभ नहीं है।'

लुत्फुन्निसा ने दूत को पुरस्कार देकर विदा किया। वह पत्र पेशमन को पढ़कर सुनाया तो पेशमन बोली, 'हानि ही क्या है ? जैसी थीं, वैसी ही रहेंगी। मुगल बादशाह की उप-पत्नी किसी दूसरे राज्य की पटरानी की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। आपके सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं आएगी।'

'यह सम्भव नहीं है। अब मैं उन राजमहलों में नहीं रह सकती। शीघ्र ही मेहर के साथ जहांगीर की शादी होगी। मेहरुन्निसा को मैं बचपन से जानती हूं। बेगम होने पर वही राज करेगी। जहांगीर नाम मात्र के बादशाह रहेंगे। मैंने उनके बादशाह बनने में बाधा उपस्थित की है, यह बात उनसे छिपी नहीं रहेगी। तब मेरी क्या दशा होगी, क्या तुम यह नहीं जानतीं ? मैं अपनी स्थिति से पूरी तरह परिचित हूं। अब मैं आगरे में नहीं रह सकती।'

पेशमन रुंआसी होकर बोली, 'अब मुझे क्या करना चाहिए ?'

'मेहरुन्निसा यदि जहांगीर के प्रति अनुरागिनी न होकर शेर अफगन से प्रेम करने लगी हो तो कुछ भरोसा हो सकता है। यदि मेहर जहांगीर की अनुरागिनी बनी है तो फिर कोई आशा नहीं है। मेरे विचार से उसने सलीम को भुलाया नहीं होगा। वह उससे आज भी वैसा ही प्रेम करती है।'

'आप मेहरुन्निसा के हृदय को कैसे पहिचान सकेंगी ?' पेशमन ने पूछा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लुत्फुन्निसा क्या नहीं कर सकती ? मेहर मेरी बचपन की सहेली है। मैं वर्द्धमान में दो दिन उसकी अतिथि बनकर रहूंगी। इसी बीच में उसके विचारों को जान लूंगी।'

'यदि मेहरुन्निसा बादशाह की अनुरागिनी न हुई तो आप क्या करेंगी ?' पेशमन ने पूछा।

'इसके विषय में मैं अभी कुछ नहीं कह सकती।'

दोनों कुछ देर चुप रहीं। हलकी मुस्कान से लुत्फुन्निसा के होंठ खिल उठे। पेशमन ने पूछा, 'तुम हंस क्यों रही हो ?'

उसने कहा, 'हंसी आ गई। एक बात समझ में आ गई। इसी से होठों पर हंसी आ गई।'

शेर अफगन उस समय बंगाल का सूबेदार था और वर्द्धमान में रहता था। लुत्फुन्निसा वर्द्धमान में जाकर शेर अफगन के महल में उतरी। शेर अफगन ने उसे बड़े आदर के साथ आतिथ्य प्रदान किया। जब शेर अफगन और मेहरुन्निसा आगरे में रहते थे तो उनका लुत्फुन्निसा से पर्याप्त परिचय था। वह मेहरुन्निसा की सहेली थी। फिर दोनों में बेगम बनने की होड़ लगी। इस समय मेहरुन्निसा अपने मन में सोच रही थी, 'अब भारतवर्ष की बेगम कौन बनेगी। यह विधाता जानते हैं, सलीमशाह जानते हैं। या लुत्फुन्निसा जानती होगी। देखें लुत्फुन्निसा इस विषय में क्या कहती है ?' लुत्फुन्निसा भी मेहर का दिल टटोलने के लिए ही यहां आई थी। दोनों एक दूसरी की थाह लेना चाहती थीं।

मेहरुन्निसा ने रूपवती और गुणवती के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। इतिहासकारों ने उसे अद्वितीय सुन्दरी बताया है। विद्वत्ता में भी उससे कोई समानता नहीं कर सकता था। नृत्य-संगीत में मेहर अद्वितीय थी। उसकी सरस बातें उसके सौन्दर्य से भी अधिक मोहक थीं। लुत्फुन्निसा भी इन सब गुणों में कम नही थी। दोनों ही एक-दूसरी के मन की थाह लेने के लिए बैठी थीं।

मेहरुन्निसा अपने विशेष कमरे में बैठी चित्र बना रही थी। लुत्फुन्निसा मेहर की पीठ की ओर उसे देख रही थी। मेहरुन्निसा ने पूछा, 'चित्र कैसा बना है लुत्फुन्निसा?'

लुत्फुन्निसा बोली, 'तुम्हारे हाथ का चित्र जैसा होना चाहिए था, वैसा ही बना है। खेद यही है कि कोई तुम्हारी बराबरी का कलाकार नहीं है जो इसका मूल्यांकन कर पाता।'

'यदि यही बात है तो इसमें दुःख की क्या बात है ?' मेहरुन्निसा लुत्फुन्निसा की ओर देखकर बोली।

'तुम्हारी बराबरी का यदि कोई कलाकार होता तो तुम्हारे मुख का आदर्श रख सकता था।'

'मुख का आदर्श अब कब्र की मिट्टी में रखा जाएगा लुत्फुन्निसा !'

'बहन ! आज तुम्हारे हृदय की हास्यप्रियता में इतनी कमी क्यों आ गई ? तुम तो कभी इतनी उदास नहीं दिखती थीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नहीं, प्रसन्नता में तो कोई अन्तर नहीं है। कल प्रातःकाल तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी, यह मैं कैसे भुला सकती हूं ? क्या तुम और दो दिन रहकर मुझे कृतार्थ नहीं कर सकतीं ?'

'सुख की किसे इच्छा नहीं होती बहन ? यदि वश में होता तो मैं क्यों जाती ? क्या करूं, मैं पराधीन ठहरी।'

'मुझपर अब तुम्हारा वह प्रेम नहीं रहा जो पहले था। यदि होता, तो तुम अवश्य रुकतीं। आई हो, रह क्यों नहीं सकतीं ?'

'मैं तुमसे सब कुछ कह चुकी हूं। मेरा छोटा भाई मंसबदार है। वह पठानों के युद्ध में आहत होकर संकट में पड़ा था। उसकी सूचना पाकर मैं बेगम से छुट्टी लेकर यहां आई थी। उड़ीसा में बहुत दिन लग गए। अब अधिक देर करना उचित नहीं होगा। तुमसे बहुत दिन से भेंट नहीं हुई थी, इसलिए यहां दो दिन ठहर गई।' लुत्फुन्निसा बोली।

'तुम बेगम के पास किस दिन पहुंचने का वायदा करके आई हो ?' मेहरु ने पूछा।

लुत्फुन्निसा समझ गई कि मेहर व्यंग कर रही है। मार्मिक व्यंग करने में मेहर जैसी निपुण थी, वैसी वह नहीं थी, परन्तु वह अप्रतिभ होने वाली भी नहीं थी। वह मुस्कराकर बोली, 'तीन महीने की यात्रा में दिन निश्चित कैसे किया जा सकता सकता था ? पर्याप्त दिनों का विलम्ब कर चुकी हूं। अब अधिक विलम्ब करना उनके असन्तोष का कारण बन सकता है।'

मेहर हंसकर बोली, 'किसके असन्तोष की आशंका हैं तुम्हें ? युवराज के या उनकी महिषी के ?'

इस लज्जाहीनता पर लुत्फुन्निसा लजाई नहीं। वह बोली, 'इस समय दोनों को ही असंतोष हो सकता है।'

'मैं पूछती हूं कि तुम स्वयं अपने को बेगम क्यों नहीं कहतीं ? सुना है सलीम तुम्हारे साथ शादी करके तुम्हें बेगम बनाना चाहते हैं। अब इसके क्या देर है ? व्यर्थ समय नष्ट न करो।'

'मैं अपने स्वभाव की स्वामिनी हूं। मैं अपनी स्वाधीनता को क्यों नष्ट करूं ? बेगम की सहचारिणी होकर सुगमता से उड़ीसा आ सकी। सलीम की बेगम बनकर क्या इस प्रकार आ सकती थी ?' लुत्फुन्निसा मेहरुन्निसा की ओर देखकर बोली।

'जो दिल्लीश्वर की प्रधान बेगम होगी उसे उड़ीसा आने की आवश्यकता ही क्या है ?' मेहरुन्निसा बोली।

'मैं सलीम की प्रधान महिषी हूंगी, ऐसी स्पर्द्धा मैंने कभी नहीं की। दिल्लीश्वर की प्राणेश्वरी होने योग्य मेहरुन्निसा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।' लुत्फुन्निसा ने स्पष्ट शब्दों में कहा।

मेहरुन्निसा ने सिर नीचा कर लिया। वह कुछ देर चुप रहकर बोली, 'बहन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं नहीं जानती कि यह बात तुमने मुझे दुःख पहुंचाने के लिए कही है या मेरी थाह लेने के लिए। मैं शेर अफगन की पत्नी हूं। मैं हृदय से उनकी दासी हूं। तुम मुझसे भूलकर भी फिर कभी ऐसी बात न कहना। तुम्हारी इस बात से मेरे हृदय पर आघात पहुंचा है।'

लुत्फुन्निसा मेहरुन्निसा की बात सुनकर लजाई नहीं। वह बोली, 'तुम जैसी हो, वह मैं भली प्रकार जानती हूं। इसीलिए तुमसे मैंने यह बात कही है। सलीम तुम्हारे रूप-सौन्दर्य को भूले नहीं हैं। मेरे कहने का केवल यही तात्पर्य है। तुम इससे सावधान रहना। उनके हृदय में आज भी तुम्हारे लिए वही पीड़ा है, जो तुमने एक बार जगा दी थी।'

'मैं अब तुम्हारी बात को समझी, परन्तु भय किस बात का है ?' मेहरुन्निसा ने पूछा।

लुत्फुन्निसा तनिक इधर-उधर करके बोली, 'वैधव्य की आशंका हो सकती है। तुम स्वयं स्थिति को समझ सकती हो। सलीम तुम्हें प्राप्त करने के लिए हर सम्भव उपाय करेंगे।'

यह कहकर लुत्फुन्निसा मेहरुन्निसा के चेहरे पर दृष्टि डालकर कुछ समझने की चेष्टा करने लगी। मेहरुन्निसा के चेहरे पर भय या प्रसन्नता का कोई चिन्ह दिखाई न दिया। मेहरुन्निसा ने बड़े गर्व के साथ कहा, 'वैधव्य की आशंका ! शेर अफगन अपनी रक्षा करनी जानते हैं। बादशाह अकबर के शासन-काल में उनका पुत्र भी किसी को मारकर बच नहीं सकता। इसलिए मैं वैधव्य की आशंका क्यों करूं ?'

'यह सच है, परन्तु आगरे के नये-समाचारों से ज्ञात हुआ कि अकबर बादशाह का देहान्त हो चुका है और सलीम गद्दी पर बैठ गए हैं। अब उनका दमन कौन कर सकता है ? वह भारत के शहंशाह हैं। उनके ऊपर किसी का दमन नहीं चलेगा।'

मेहरुन्निसा और कुछ न सुन सकी। उसका बदन कांप उठा। उसने अपना सिर नीचा कर लिया।

लुत्फुन्निसा ने पूछा, 'तुम रोती क्यों हो ? इतनी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हां, सावधानी की अवश्य आवश्यकता है इस समय।'

मेहरुन्निसा ठण्डी सांस खींचकर बोली, 'सलीम तख्त पर है और मैं यहां।'

लुत्फुन्निसा जिस अभिप्राय से ये प्रश्न कर रही थी उसका उत्तर उसे मेहरुन्निसा से मिल गया। वह बोली, युवराज तुम्हें एक क्षण के किए भी भूले नहीं हैं मेहरुन्निसा, उनके हृदय में तुमने जो स्थान बना लिया था वह ज्यों-का-ज्यों है। तुम आज भी उनके दिन की वैसी ही मलका हो जैसी पहले थीं।'

मेहरुन्निसा गद्गद स्वर में बोली, 'मैं भी उन्हें कैसे भुला सकती हूं लुत्फुन्निसा जिस पुष्प की गंध एक बार दिल की बगिया को महका देती है, उसे वह भूल कैसे सकती है। बगिया अपने पुष्प को सर्वदा याद रखती है। मैं अपने जीवन को भूल सकती हूं, परन्तु शाहजादे को नहीं भूल सकती । सुनो बहन ! तुम्हें मेरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौगन्ध है, यह बात अन्य किसी के कानों में न पहुंचे।'

लुत्फुन्निसा बोली, 'यही होगा मेहरुन्निसा ! परन्तु सलीम जब यह सुनेंगे कि मैं वर्द्धमान गई थी, तो वह अवश्य पूछेंगे कि मेहरुन्निसा ने उनके विषय में क्या कहा। मैं उनसे क्या कहूं ?'

मेहरुन्निसा कुछ सोचकर बोली, 'यही कहना कि मेहरुन्निसा हृदय से उनकी है। वह समय आने पर उनके लिए प्राण तक विसर्जन कर सकती हैं, परन्तु वह अपनी कुल-मर्यादा और मान का समर्पण नहीं कर सकती। इस दासी के स्वामी जब तक जीवित हैं, जब तक वह दिल्लीश्वर को मुंह नहीं दिखा सकती। यदि दिल्लीश्वर द्वारा उसके पति की हत्या की गई तो इस जन्म में पतिहत्या के साथ मेरा मिलन न होगा।' यह कहकर मेहरुन्निसा उठकर खड़ी हो गई। लुत्फुन्निसा आश्चर्य चकित रह गई, परन्तु विजय लुत्फुन्निसा की ही हुई। मेहरुन्निसा के हृदय का भाव उसने जान लिया। उसके हृदय की आशा या निराशा की थाह मेहरुन्निसा न पा सकी। वह उसकी बुद्धि-चातुरी के सामने पराजित हुई।

लुत्फुन्निसा की सारी आशा निराशा में परिणत हो गई, परन्तु इससे वह दुखी नहीं हुई। उसने कुछ सुख का ही अनुभव किया। ऐसे भाव का क्यों उदय हुआ, वह समझ न सकी। उसने आगरे के लिए यात्रा की। राह में वह अपने चित्त के भाव को समझने का प्रयत्न करती रहीं, परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया। उसका चित्त अब चंचल नही था और इस निश्चय से उसके मन को शान्ति प्राप्त हुई थी। वह अब उद्विग्न नहीं थी। अब वह प्रसन्नतापूर्वक आगरे की यात्रा कर रही थी। उसके चित्त में अशांति नहीं थी।

8

लुत्फुन्निसा सकुशल आगरा पहुंची। कुछ दिन पश्चात् उसकी जहांगीर से भेंट हुई। जहांगीर ने उससे आदरपूर्वक उसके भाई और मार्ग की कुशल पूछी। लुत्फुन्निसा की जो बात मेहरुन्निसा से हुई थीं, वे उसने सच-सच जहांगीर से कहीं। जहांगीर ने उसकी वर्द्धमान-यात्रा की बातें सुनकर पूछा, 'तुम मेहरुन्निसा के पास दो दिन ठहरीं। मेहरुन्निसा मेरे विषय में क्या कहती थी ?'

लुत्फुन्निसा ने अकपटपूर्ण हृदय से मेहरुन्निसा के अनुराग की सब बातें कह सुनाई। जहांगीर उन्हें सुनकर चुप हो गये। उनके बड़े-बड़े नेत्रों में जल भर आया। मेहरुन्निसा की स्मृति उनके हृदय में जाग उठी। मेहरुन्निसा के वे प्रेमपूर्ण व्यवहार, वे गुप्त विहार, वे प्रेमालाप, वे प्रेम के आदान-प्रदान उनके प्रेम-पुष्प का खिलना और फिर उनकी आशाओं पर तुषारापात हो जाना, उन्हें स्मरण हो आया। मेहरुन्निसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुस्कराता और रोता हुआ चेहरा उनकी पुतलियों में उतर आया।

लुत्फुन्निसा बोली, 'जहांपनाह ! दासी ने शुभ समाचार दिया है। दासी के लिए किसी पुरस्कार का आदेश नहीं हुआ ? मेरे विचार से इससे अधिक शुभ समाचार जहांपनाह के लिए अन्य नहीं हो सकता।'

जहांगीर बादशाह हंसकर बोले, 'मोती ! तुम्हारी आकांक्षा अपरिमित है। उनके विस्तार में कभी-कभी मैं भी खो सा जाता हूं। तुम्हारे लिए किस पुरस्कार का आदेश करूं ?'

'जहांपनाह ! दासी का दोष क्या है ? मेरी आकांक्षाओं को विस्तार देने वाले क्या आप स्वयं नहीं है ?'

जहांगीर चुप रहे।

लुत्फुन्निसा हंसकर बोली, 'स्त्रियों की आकांक्षाएं इससे भी अधिक होती हैं। यह तो हमारी आकांक्षा का आरम्भ है बादशाह सलामत !'

'तुम क्या चाहती हो ?' जहांगीर ने पूछा।

'पहले हुजूर की आज्ञा हो कि दासी की प्रार्थना स्वीकार है।'

'शासन में विघ्न न हो तो आज्ञा करता हूं।' जहांगीर बोले।

'शासन के कार्य में विघ्न नहीं होगा। विश्वास दिलाती हूं।'

'तो स्वीकार है, बोलो क्या चाहती हो तुम ?'

'मैं एक विवाह करूंगी।' लुत्फुन्निसा ने कहा।

जहांगीर हंसकर बोले, 'बड़ी भारी इच्छा है। कहीं निश्चित कर लिया है क्या? अथवा अब निश्चित करने का विचार है ?'

'जी निश्चित कर लिया है। केवल आपकी आज्ञा की देर है। बिना आपकी आज्ञा के कुछ न होगा।' लुत्फुन्निसा बोली।

'इसमें मेरी आज्ञा की क्या आवश्यता है ? किस भागयशाली को तुम अपने सुख-सागर में डुबो देना चाहती हो ?'

'दासी ने दिल्लीश्वर की सेवा की है। वह द्विचारिणी नहीं है। दासी अपने स्वामी के साथ ही विवाह करने का विचार कर रही है।'

'उचित है, परन्तु इस पुराने दास की क्या दशा होगी ?' जहांगीर ने मुस्कराकर कहा।

'इन्हें मेहरुन्निसा को सौंप जाऊंगी।' लुत्फुन्निसा बोली।

'मेहरुन्निसा कौन ?' जहांगीर बोले।

'जो हैं, वही हैं मेहरुन्निसा। आपका दिल उन्हें खूब पहिचानता है। वही जो आपके दिल की मलिका है।'

जहांगीर समझ गए कि दिल्लीश्वरी मेहरुन्निसा ही होगी, लुत्फुन्निसा को यह विश्वास हो गया है। इसी लिए यह अपनी इच्छा विफल होने के कारण राज्य-परिवार से मुक्त होना चाहती है। अब यह यहां नहीं रहना चाहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहांगीर दुःखी होकर चुप रहे। लुत्फुन्निसा बोली, 'क्या शहंशाह की यह इच्छा नहीं है ?'

'नहीं, मेरी यह इच्छा नहीं है, परन्तु स्वामी के साथ फिर विवाह करने की क्या आवश्कता है ?' जहांगीर ने पूछा।

'प्रथम विवाह में स्वामी ने मुझे पत्नी के रूप में ग्रहण नहीं किया। अब जहांपनाह दासी का विवाह करेंगे ?' लुत्फुन्निसा बोली।

बादशाह हंस कर गम्भीर हो गए। फिर दुबारा हंसते हुए बोले, 'लुत्फुन्निसा ! कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो मैं तुम्हें दे सकूं। जो तुम्हारी इच्छा हो तो तुम वही करो, परन्तु तुम मुझे त्यागकर क्यों जाती हो ? क्या एक ही आकांश में चांद और सूरज दोनों नहीं रहते ? क्या एक डाली पर दो पुष्प नहीं खिलते ?'

लुत्फुन्निसा ने आंखे फाड़ कर बादशाह की ओर देखा। वह बोली, 'हजूर ! छोटे-छोटे फूल अवश्य खिलते हैं, परन्तु एक नाल पर दो कमल नहीं खिलते। मैं हजूर के शाही तख्त का कांटा बन कर क्यों रहूं ? मैं आपके मंगल में अमंगल पैदा क्यों करूं ?'

लुत्फुन्निसा अपने महल में चली गई। उसकी ऐसी इच्छा क्यों हुई, यह उसने जहांगीर से नहीं बताया। वह उसका वास्तविक तथ्य न समझ सके। लुष्फुन्निसा का हृदय पत्थर का बना हुआ था। सलीम की रमणी-हृदय को वशीभूत करने वाली शक्ति पर वह विजय प्राप्त न कर सकी। वह उसे पिघला न सकी। वह कठोर से कठोरतर होता चला गया।

लुत्फुन्निसा ने अपने महल में जाकर पेशमन को बुलाया और अपने वस्त्र बदले। अपने जेवर और वस्त्र उसे देकर बोली, 'ये सब तुम ले लो पेशमन ! तुम्हें इनका सर्वदा ही बड़ा लालच रहा है। आज मैं यह सब तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक दे रही हूं।'

यह सुनकर पेशमन कुछ विस्मय में पड़ गई। वह बोली, 'ये पोशाक आप मुझे क्यों देती हैं ? आज क्या हो गया है आपको ?'

'बहुत शुभ संवाद है पेशमन ! उसी की प्रसन्नता में मैं ये सब तुम्हे दे रही हू।'

'यह तो मैं भी समझ रही हूं। क्या मेहरुन्निसा का भय आपके दिल से दूर हो गया ?' पेशमन ने पूछा।

'हां दूर हो गया। अब उसके विषय में मुझे कोई चिन्ता नहीं रही।'

'तो अब मैं बेगम की दासी हुई ?' पेशमन बोली।

'यदि तुम बेगम की दासी होना चाहती हो तो मैं मेहरुन्निसा से तुम्हारी सिफारिश कर दूंगी।' लुत्फुन्निसा ने कहा।

'यह क्या ? आपने तो कहा था कि मेहरुन्निसा के अब बेगम होने की कोई सम्भावना नहीं रही।' पेशमन बोली।

'मैंने यह बात नहीं कहीं थी। मैंने कहा था कि इस विषय में अब मुझे कोई चिन्ता नहीं रही।' लुत्फुन्निसा बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चिन्ता क्यों नहीं रही ? यदि आप आगरे की बेगम न हुई तो सब प्रयत्न व्यर्थ हो गया।' पेशमन ने कहा !'

'आगरे से अब मैं कोई सम्बन्ध न रखूंगी।'

'मेरी समझ में तो यह सब कुछ नहीं आया। यह शुभ संवाद कैसे हुआ ?' पेशमन ने पूछा।

'शुभ संवाद यही है कि मैं आगरा छोड़कर कर जा रही हूं।'

'आप कहां जायेंगी ?' पेशमन ने पूछा।

'यदि सम्भव हो सका तो अब मैं किसी भले आदमी की गृहिणी बन कर रहूंगी।' लुत्फुन्निसा बोली।

'यह सुनकर मेरा कलेजा कांप रहा है।' पेशमन बोली, 'लगता है आप व्यंग्य कर रही हैं।'

'व्यंग नहीं कर रही, मैं वास्तव में आगरा छोड़कर जा रही हूं। मैं बादशाह से विदा ले आ गई हूं।' लुत्फुन्निसा बोली।

'यह कुप्रवृत्ति आपकी किस लिए हुई ?' पेशमन बोली। 'क्या आप अपनी अब तक की सब उपलब्धियों का नष्ट कर देंगी ?'

'यह कुप्रवृत्ति नहीं है। इतने दिन आगरे में रही, उससे क्या लाभ हुआ ? बचपन से मुझे सुख की प्यास थी। उसे बुझाने के लिए मैं बंगाल से यहां आई। इस इच्छा को खरीदने के लिए मैंने हर मूल्य चुकाया, हर दुष्कर्म किया ? जिस उद्देश्य के लिए वह सब किया, उसमें मैंने क्या पाया ? ऐश्वर्य, धन, गौरव, प्रतिष्ठा सब प्राप्त किया, परन्तु इतना पाकर भी क्या हुआ ? मैं आगत जीवन के हर दिन को स्मरण करके कह सकती हूं कि एक दिन, एक क्षण के लिए भी मैं सुखी न रह सकी। मेरी प्यास बराबर बढ़ती ही गई। यदि में चेष्टा करूं तो और अधिक सम्पदा और ऐश्वर्य प्राप्त कर सकती हूं, परन्तु व्यर्थ ? इनमें सुख होता तो क्यों एक दिन के लिए भी मैं सुखी न होती ? मुझे शांति क्यों न मिलती ?'

'यह सब तुम्हें अच्छा क्यों नहीं लगता ?' पेशमन ने पूछा।

'अच्छा क्यों नहीं लगता, यह इतने दिन पश्चात अब समझी हूं। शाही महल की छाया में बैठकर जो सुख प्राप्त नहीं हुआ, उड़ीसा से लौटते समय एक रात्रि में वह सुख मुझे मिला। अब समझी !' लुत्फुन्निसा हंस कर बोली।

'क्या समझीं ?' पेशमन ने पूछा।

'मैं इतने दिन हिन्दुओं की देव-मूर्ति की भांति रही, स्वर्ण और रत्नों से लदी, परन्तु अन्दर से पत्थर। इन्द्रिय-सुख की खोज में घूमती रही, परन्तु आत्मा का स्पर्श तक नहीं किया। अब देखना है कि पत्थर में कोई रक्त बूंद शेष है अथवा नहीं।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आया।'

'क्या मैंने आगरे में कभी किसी से प्रेम किया है ?'

'किसी से नहीं।' पेशमन बोली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तो फिर मैं पत्थर नहीं तो और क्या हूं ?'

'अब प्रेम करने की इच्छा है तो क्यों नहीं करतीं ?'

'दिल ही तो है। इसीलिए आगरा छोड़कर जा रही हूं।'

'इसकी क्या आवश्यकता है ? क्या आगरे में आदमी नहीं हैं जो दूसरे देश में जाओगी ? जो तुमसे प्रेम करते हैं, उन्हें तुम प्रेम क्यों नहीं करतीं ? रूप में, धन में, ऐश्वर्य दिल्लीश्वर से बढ़कर पृथ्वी पर अन्य कौन है ?' पेशमन बोली।

'चन्द्रमा सूर्य के रहते अधोगामी क्यों होता है ?'

'क्यों होता है ?' पेशमन ने पूछा।

'भाग्य में जो लिखा है, वही होगा।' लुत्फुन्निसा बोली।

लुत्फुन्निसा ने सारी बातें उससे कहीं। उनके मन में उस समय आगरा छोड़ देने की शीघ्रता व्याप्त थी। वह अब वहां एक क्षण के लिए भी ठहरना नहीं चाहती थी। उसका मन आगरे से उचाट हो गया था। अब एक क्षण में वहां से उड़कर कहीं अन्यत्र चली जाना चाहती थी।

उड़ीसा से लौटते उसने अपने पति नवकुमार के दर्शन किये थे। तब से नवकुमार की मधुर मूर्ति उसके नेत्रों में समाई हुई थी। उसे अब हर समय उन्हीं की सूरत दिखाई देती थी। उसकी आकांक्षाओं का दुर्ग ढक चुका था। इस निराशा को वह बड़े मनोयोग से किसी प्राचीन स्मृति में खो देना चाहती थी। उसकी आत्मा चारों ओर को भटक रही थी। उसे ठहराने का कही कोई सहारा नहीं मिल रहा था। वह इस समय आश्रमविहीन हो गई थी।

9

लुत्फुन्निसा की उड़ीसा से लौटते समय अचानक नवकुमार से भेंट हो गई थी। उस समय प्रणय-संचार विशेष न हुआ, परन्तु प्रेमांकुर उसी समय उत्पन्न हो गया था। उसके पश्चात् फिर भेंट नहीं हुई। बिना भेंट हुए भी वह चेहरा उसके हृदय में गड़ गया था। उस चेहरे की स्मृति उसे सुख देने लगी थी। प्रेम का अंकुर बढ़ने लगा था। नवकुमार के प्रति उसके हृदय में अनुराग पैदा हो गया था। लुत्फुन्निसा उसे रात-दिन याद करने लगी थी। उसके हृदय में अपने पति के दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न हो गई थी। उसे आगरे का वैभव उसके सामने तुच्छ प्रतीत होने लगा था। उसे सिंहासन अग्नि से घिरा हुआ जान पड़ने लगा। वह राज, राजधानी, राजसिंहासन सबको त्यागकर अपने प्रियतम से मिलने के लिए चल पड़ी। उसने आगरा त्याग दिया और सप्तगांव की दिशा में यात्रा आरम्भ की। उसके मन में उस समय अपने पति की आकृति थी। वह उसी के ध्यान में मग्न अपनी यात्रा पर अग्रसर थी। अब उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेगम बनने के स्वप्न को तिलांजलि दे दी थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अब आगरा लौटकर नहीं जायेगी।

इस यात्रा में उसके साथ वह आडम्बर नहीं था जो उड़ीसा-यात्रा के समय था, परन्तु फिर भी कुछ आडम्बर अवश्य था। वह भारत-सम्राट की प्रेमिका तो थी ही। उसका जो चरित्र इतने दिन दरबार में रहकर बना था उसे एकदम त्याग देना इतना सरल कार्य नही था। वह शानदार पालकी में यात्रा कर रही थी। नौकर-चाकर भी उसके साथ थे और दासियां भी। राजघराने की स्त्रियों जैसा साज-सामान उसके साथ था और हीरे जवाहिरात भी।

महीनों की यात्रा के पश्चात् उसने सप्तग्राम में प्रवेश किया और एक विशाल भवन किराये पर लेकर उसे राजसी ढंग से सजवाया। विशाल भवन अद्वितीय आभा से जगमगा उठा। लुत्फुन्निसा ने उस महल में निवास ग्रहण कर नवकुमार के पास भेंट करने के लिए सूचना भेजी तो नवकुमार उससे भेंट करने के लिए गये।

सप्तग्राम में राजपथ के निकट यह विशाल अट्टालिका थी। दास-दासियों का उसमें जमघट लगा था। प्रत्येक कमरे की शोभा राजघराने जैसी थी। लुत्फुन्निसा एक सजे हुए कमरे में अधोबदन बैठी थी। उसके सामने एक आसन पर नवकुमार बैठे थे। वह भी चिन्ता निमग्न थे।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात नवकुमार बोले, 'मैं जा रहा हूं। अब तुम मुझे फिर कभी न बुलाना।'

'नहीं, अभी न जाओ। मुझे अपनी बात पूरी कर लेने दो। मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।'

नवकुमार ने प्रतीक्षा की, परन्तु लुत्फुन्निसा चुप रही। नवकुमार ने पूछा, 'तुम्हें और क्या कहना है ? जो कुछ कहना है वह तुरन्त कह डालो। मैं यहां अधिक देर नहीं ठहरना चाहता।'

लुत्फुन्निसा ने कोई उत्तर न दिया। वह रो रही थी। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी।

यह देखकर नवकुमार उठ खड़े हुए। लुत्फुन्निसा ने उनका वस्त्र पकड़ लिया।

नवकुमार बोले, 'क्या कहती हो, कहो न ?'

'तुम क्या चाहते हो ? क्या इस पृथ्वी की कोई भी वस्तु तुम्हें न चाहिए ? धन सम्पदा, मान, प्रणय, राग-रंग मैं सब दूंगी। उसके बदले में मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती, केवल तुम्हारी दासी बनना चाहती हूं। तुम्हारी धर्मपत्नी बनने का गौरव भी मुझे नहीं चाहिए, केवल दासी समझना। क्या इसमें भी तुम्हें आपत्ति है ?'

नवकुमार बोले, 'मैं एक साधारण ब्राह्मण हूं। इस जन्म में ऐसा ही रहूंगा। तुम्हारे धन को लेकर यवनीजार नहीं बन सकता। तुम जो प्रलोभन मुझे देना चाहती हो उसे अपने ही पास रहने दो।'

'यवनीजार !' नवकुमार अब तक जान न सके थे कि वह रमणी उनकी पत्नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। लुत्फुन्निसा सिर नीचा किये रह गई। नवकुमार ने उसक हाथ से अपना कपड़ा छुड़ा लिया। लुत्फुन्निसा बोली, 'अच्छा, यह भी जाने दो। विधाता की यदि यही इच्छा है, तो मैं सारी चित्तवृत्ति को अतल जल में डुबो दूंगी। मैं आपसे कुछ नहीं चाहती। केवल जब तुम इस राह में जाना तो दासी समझ कर एक बार दर्शन दे दिया करना। क्या इतना भी तुम मेरे लिए नहीं कर सकते ?'

'तुम मुसलमान हो, पर स्त्री हो, तुम्हारे साथ इस तरह बातें करने में मुझे दोष है। अब तुम्हारी मुझसे कभी भेंट न होगी। मैं इस प्रकार तुमसे भेंट कैसे कर सकता हूं ? कोई क्या कहेगा ?'

कुछ देर सन्नाटा रहा। लुत्फुन्निसा के हृदय में तूफान उठ रहा था। वह प्रस्तर-मूर्ति के समान अचल रही। वह नवकुमार का वस्त्र छोड़कर बोली, अच्छा जाओ। मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने पाषाण हृदय हो। मुझे भ्रम हुआ। मैंने धोखा खाया।'

नवकुमार चले। जैसे ही वह दो-चार पग बढ़े, लुत्फुन्निसा अचानक उनके पैरों पर आ गिरी। वह उनके चरणों को पकड़कर कातर वाणी में बोली, 'निर्दय ! मैं तुम्हारे लिए आगरे का शाही तख्त छोड़कर आई हूं। तुम मेरा त्याग न करो। मेरे विदग्ध हृदय को शांति प्रदान करो। मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।'

नवकुमार बोले, 'तुम आगरा लौट जाओ। मेरी आशा छोड़ दो। मैं पर स्त्री के साथ प्रेम-भाव नहीं रख सकता। जिस चरित्र की तुमने मेरे अन्दर कल्पना की है, वह तुम्हें प्राप्त न होगा।'

'इस जन्म में नहीं।' तीर की तरह खड़ी होकर लुत्फुन्निसा बोली, 'इस जन्म में मैं तुम्हारी आशा नहीं त्याग सकती।' मस्तक उन्नत और टेढ़ी गर्दन किए, अपने नेत्र नवकुमार पर जमाकर वह खड़ी रही। एक शक्ति उस प्रणय-विह्वल देह में दमदमा उठी। उसके लिलाट की नसें फूलकर अपूर्व शोभा देने लगीं उसकी नाक का अग्र भाग उत्तेजना से कांपने लगा। उन्मादिनी यवनी अपना मस्तक ऊंचा करके फिर बोली, 'इस जन्म में नहीं। इस जन्म में तुम मेरे ही हो। तुम लाख प्रयत्न करके भी मेरे हृदय से मुक्त नहीं हो सकते।'

लुत्फुन्निसा को देखकर नवकुमार सहम गए। नवकुमार जाना ही चाहते थे कि सहसा उन्हें एक और आकृति का ध्यान आया। एक दिन नवकुमार अपनी प्रथम पत्नी पद्मावती के प्रति क्रुद्ध होकर उसे अपने कमरे से निकालने लगे थे। वह उस समय जिस पीड़ा से मुड़कर उनकी ओर खड़ी हुई थी, ठीक उसी तरह उसके नेत्र दमदमा उठे थे, लिलाट पर वे ही रेखायें थीं, नासा-रंध उसी प्रकार कांप रहे थे, जो दशा इस समय लुत्फुन्निसा की थी। साक्षात वही आकृति थी। वही रूप था, वही चितवन। उन्हें बहुत दिनों से उस आकृति का ध्यान न आया था। नवकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो ? ठीक-ठीक बताओ तुम कौन हो, ?'

वह बोली, 'मैं वही हूं, तुम्हारी पद्मावती। जिसे बिना अपराध आपने त्याग दिया था।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही लुत्फुन्निसा दूसरे कमरे में चली गई। नवकुमार अनमने और सशंकित हृदय से अपने घर लौट आये। उनका हृदय विदीर्ण हो उठा था। वह विह्वल हो उठे थे।

लुत्फुन्निसा ने दूसरे कमरे में आकर अपने द्वार बन्द कर लिए। वह दो दिन तक कमरे से बाहर न निकली। सूर्य अस्त होने पर लुत्फुन्निसा पेशमन की सहायता से अपना शृंगार करने लगी। आश्चर्यजनक वेशभूषा थी। उसने पेशमन से पूछा, 'क्यों पेशमन ! क्या अब मैं पहिचानी जा सकती हूं ? क्या मुझे अब कोई पहिचान सकता है ? मेरे विचार से अब मुझे कोई नहीं पहिचान सकता।'

'किसकी मजाल है जो आपको पहिचाने ?' पेशमन लुत्फुन्निसा का वेश देखकर बोली।

'तो मैं जाती हूं। मेरे साथ कोई न आये। मैं बहुत ही आवश्यक कार्य से जा रही हूं।' यह कहकर वह चल पड़ी।

'दासी का अपराध क्षमा हो तो एक बात पूछूं ?'

'क्या ?' लुत्फुन्निसा ने पूछा।

'आप क्या चाहती हैं, क्या मैं जान सकती हूं ?'

'कपालकुण्डला का उसके पति से चिरविच्छेद हो जाये तो वह मेरे हो सकेंगे।' लुत्फुन्निसा गम्भीर वाणी में बोली।

'बीवी जी ! तनिक विचार कर लीजिए। बहुत घना जंगल है और रात्रि अन्धेरी है। आप अकेली कहां जा रही हैं ?' पेशमन ने कहा। 'मेरा दिल कांप रहा है। मैं भयभीत हूं।'

'लुत्फुन्निसा कोई उत्तर न देकर घर से बाहर हो गई। सप्तग्राम में जिधर नवकुमार रहते थे, वह उसी ओर को चली। वहां पहुंचते-पहुंचते घनी रात्रि हो गई। नवकुमार के घर के समीप एक गहन जंगल था। उसी के किनारे पहुंचकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गई। वह अपनी धुन की बहुत पक्की स्त्री थी।

लुत्फुन्निसा को एक कंठ-स्वर सुनाई पड़ा। उसने चारों ओर देखा तो उसे कुछ प्रकाश-सा दिखाई दिया। लुत्फुन्निसा में साहस पुरुष से भी अधिक था। वह प्रकाश की दिशा में चल पड़ी। उसने पहले पेड़ की आड़ से देखा। उसने देखा प्रकाश एक यज्ञ का था और कोई पुरुष-कंठ मन्त्रों का उच्चारण कर रहा था। लुत्फुन्निसा यज्ञ-कर्त्ता की दिशा में बढ़ गई। वह उस प्रकाश का आश्रय ग्रहण कर आगे बढ़ती चली जा रही थी।

लुत्फुन्निसा बढ़ती-बढ़ती सरिता-तीर के निकट जा पहुंची। वहां उसने देखा शमशान-भूमि में एक व्यक्ति बैठा यज्ञ कर रहा था। अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही थी। एक साधू हवन-कुण्ड के निकट बैठा मन्त्रों का उच्चारण कर रहा था।

लुत्फुन्निसा उसके निकट जा कर खड़ी हो गई। वह बहुत देर तक वहीं खड़ी रही और साधू हवन करता रहा। पर्याप्त समय पश्चात जब उसका हवन समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ तो उसने लुत्फुन्निसा की ओर देखा।

साधू ने उससे कुछ गुप्त बातें कीं। वह उसे अपने साथ अपनी कुटी में ले गया। कुछ देर तक दोनों परस्पर बातें करते रहे। उसके पश्चात लुत्फुन्निसा वहां से लौट आई।

10

कपालकुण्डला एक वर्ष से नवकुमार की पत्नी के रूप में रह रही थी। जिस दिन लुत्फुन्निसा उधर आई थी, उस दिन कपालकुण्डला कुछ अनमनी-सी अपने शयनागार में बैठी थी। अब वह समुद्र-तटवासिनी आभूषणविहीना कपालकुण्डला नहीं थी। श्यामसुन्दरी की भविष्यवाणी सत्य हुई। पारस-मणि के स्पर्श से योगिनी गृहणी बन गई थी। वह दुग्धश्वेत जैसे शुभ्र वस्त्र पहने थी, जो आकाश में खेलने वाले बादलों की तरह उसके बदन पर शोभा पा रहे थे।

कपालकुण्डला अकेली न थी। उसकी सखी श्यामसुन्दरी उसके पास बैठी थी। उन दोनों में बातें हो रही थीं। श्यामसुन्दरी के पति आये हुए थे। उन्हीं के विषय में बातें चल रही थीं।

मृणमयी ने पूछा, 'ननदोईजी अभी यहां कितने दिन रहेंगे ? संभवतः एक सप्ताह तो अवश्य ठहरेंगे।'

'कल संध्या को चले जायेंगे। आज रात्रि को भी वही औषधि लाकर रख लेती तो उन्हें वश में करके मनुष्य-जन्म सार्थक हो जाता। कल रात्रि को निकली तो लात-जूते खाये। आज रात्रि में कैसे निकलूं, समझ में नहीं आ रहा। रात्रि में बड़ा भय लगता है।'

'दिन में लाने से काम न चलेगा ? क्या इसी समय उसे नहीं लाया जा सकता?' मृणमयी ने पूछा।

'नहीं, दिन में तोड़ने से फल न होगा। उसे ठीक अर्ध-रात्रि को खुले बालों से तोड़ना होता है। मन की साध मन में ही रह गई। वह कार्य भी पूर्ण न हो सका।'

'दिन में मैं उस पेड़ को पहचान आई हूं। वह जिस वन में है, वह भी मैं जानती हूं। आज तुम्हें जाना न होगा। मैं अकेली ही जाकर उस औषधि को ला दूंगी।' मृणमयी ने श्यामसुन्दरी को आश्वासन देकर कहा। वह श्यामसुन्दरी को स्नेह करती थी।

'नहीं-नहीं, तुम रात्रि में अकेली न जाना। मैं तुम्हारा अकेली जाना सहन न कर सकूंगी।' श्यामसुन्दरी बोली।

'इसके लिए तुम चिन्ता न करो। रात्रि को जंगल में अकेली घूमना मेरा बचपन का स्वभाव है। यदि मेरा यह स्वभाव न होता तो आज तुमसे भेंट न होती।' मृणमयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुस्कराकर बोली।

'क्या रात्रि को जंगल में अकेली घूमना भले घर की बहू-बेटियों का काम है ? कल दो आदमियों के रहने पर जब इतना तिरस्कार उठाना पड़ा, तब आज अकेली जाने पर क्या होगा ? मैं तुम्हें रात्रि में अकेली नहीं जाने दूंगी मृणमयी !'

'इसमें कोई हानि नहीं है। क्या मैं रात्रि में घर से बाहर होते ही कुचरित्रा हो जाऊंगी ? मैं ऐसा नहीं समझती और तुम्हारे भैया भी ऐसा विचार नहीं करेंगे।'

'नहीं-नहीं, मेरा यह विचार नहीं है, परन्तु बुरे लोग तो यही सोचते हैं। तुम मेरे लिए यह संकट मोल न लेना मृणमयी !'

'उन्हें सोचने दो, मैं उनके कहने से बुरी नहीं हो जाऊंगी।' मृणमयी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

'वह ठीक है, परन्तु तुम्हें कोई बुरा कहे तो हम लोगों के मन को चोट पहुंचेगी। भैया उसे सहन न कर सकेंगे। तुम यह कार्य न करना।'

'तुम अपने मन को व्यर्थ चोट न पहुंचने दो। मेरे लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।'

'मैं तो यह कर सकूंगी, परन्तु भैया को क्यों दुखी करती हो ? मैं नहीं चाहती कि भैया दुखी हों।'

मृणमयी श्यामसुन्दरी की ओर देखकर बोली, 'इसमें यदि वह व्यर्थ क्रुद्ध हों तो मैं क्या करूं ? इसमें मेरा क्या दोष है ? यदि जानती कि स्त्रियों का विवाह दासी बनना है तो मैं कभी शादी न करती श्यामसुन्दरी ! क्या शादी कराना दासी बनना है ?'

फिर जवाब-सवाल करना श्यामसुन्दरी ने उचित न समझा। वह चुप हो गई। उसने बात को और आगे न बढ़ाया।

मृणमयी घर के काम से निवृत्त होकर औषधि लाने के लिए घर से निकली। एक प्रहर रात्रि वीत चुकी थी। चांदनी रात्रि थी। नवकुमार बाहरी कमरे में बैठे थे। उन्होंने खिड़की से देखा कि मृणमयी कहीं जा रही थी। उन्होंने घर से बाहर निकलकर उसका हाथ पकड़ लिया।

मृणमयी ने पूछा, 'क्या बात है ?'

'तुम कहां जा रही हो ?' नवकुमार ने पूछा।

'श्यामसुन्दरी अपने पति को वश में करने के लिए एक जड़ी चाहती है। वही लेने जंगल में जा रही हूं।'

'कल तो तुम एक बार हो आई हो, फिर आज क्यों जा रही हो ?' नवकुमार ने पूछा।

'कल खोजकर पा न सकी। आज फिर खोजूंगी।' मृणमयी ने उत्तर दिया।

नवकुमार कोमल स्वर में बोले, 'क्या मेरे जाने से कार्य सिद्ध न होगा ? मैं कल ला दूंगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दिन की लाई हुई जड़ी फलवती न होगी।'

'तुम्हें जाने की क्या आवश्यकता है ? तुम मुझे जड़ी का नाम बता दो। मैं खोजकर ला दूंगा।' नवकुमार बोले।

'मैं पेड़ देखकर पहचान सकती हूं, उसका नाम नहीं जानती। तुम्हारे तोड़ने से भी उसका फल न होगा। स्त्री को बाल खोलकर उसे तोड़ना पड़ता है। तुम परोपकार में विघ्न न डालो। मैं श्यामसुन्दरी को दुखी नहीं देख सकती।'

मृणमयी ने यह बात अप्रसन्नतापूर्वक कही। नवकुमार ने फिर आपत्ति न की। वह बोले, 'चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। मैं दूर खड़ा रहूंगा। तुम उसे तोड़ लेना।'

मृणमयी अभिमान भरे स्वर में बोली, 'आओ, मैं अविश्वासिनी हूं या क्या कहूं? अपनी आंखों से देखना। क्या तुम्हें मेरे चरित्र पर अविश्वास है ?'

नवकुमार ने फिर कुछ न कहा। उन्होंने मृणमयी का हाथ छोड़ दिया और वह घर के अन्दर चले गये। मृणमयी अकेली जंगल की ओर चल दी। वह धीरे-धीरे अन्धकारपूर्ण रात्रि में आगे बढ़ती जा रही थी। कुछ भय उसे अवश्य लग रहा था।

गांव से थोड़ी ही दूर पर घना जंगल था। मृणमयी एक संकीर्ण जंगली मार्ग से अकेली औषधि की खोज में चली जा रही थी। रात्रि में स्निग्ध और उज्ज्वल किरणें बिखेरते हुए चन्द्र देव आकाश में बादलों के बीच यात्रा कर रहे थे। वह मृणमयी के ठीक शीर्ष के ऊपर-ऊपर चलते जा रहे थे। मृणमयी बढ़ती चली जा रही थी।

जंगल में मृणमयी को पूर्व स्मृति जागी। उसे ध्यान आया कि वह सागर-तटवर्ती जंगल में घूमा करती थी। उसने आकाश की ओर देखा तो वह अनन्त नील-मण्डल याद आया। वह पूर्व स्मृति से अनमनी-सी होती चली जा रही थी। उसे वह मुक्त वायु-मण्डल याद आ रहा था, जिसमें वह मुक्त वायु के समान विचरण करती थी।

मृणमयी को याद ही न रहा कि वह किस काम के लिए कहां जा रही थी। जिस मार्ग पर वह जा रही थी, वह उसे भूल गया। जंगल घना हो गया। क्रमशः राह लुप्त हो गई। राह न मिलने पर मृणमयी का स्वप्न भंग हुआ। उधर देखा तो दूर पर उसे प्रकाश दिखाई दिया।

लुत्फुन्निसा ने भी उसी प्रकाश को देखा था। वह धीरे-धीरे उसके समीप पहुंची। उसने वहां जाकर देखा तो वहां कोई नहीं था, परन्तु उससे थोड़ी दूर पर एक मड़ैया दिखाई दी। उसकी दीवारें टूटी-फूटी थीं। उसमें से किसी की बातचीत का स्वर आ रहा था। मृणमयी निःशब्द पैर रखती हुई उसके निकट पहुंची। उसने सुना कि दो व्यक्ति सावधानी से परस्पर बातें कर रहे थे। पूरी चेष्टा करने पर उसने कुछ सुना, परन्तु जो सुना वह अस्पष्ट-सा था। उनमें से एक व्यक्ति बोला, 'मेरा अभीष्ट मृत्यु है। इससे यदि तुम सहमत न हुए तो मैं तुम्हारी सहायता न करूंगा। तुम भी मेरी सहायता न करना। मृत्यु के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं चाहता। मेरा अभीष्ट मृत्यु से ही पूर्ण होगा।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा बोला, 'मैं भी मंगलाकांक्षी नहीं हूं। मैं जीवन भर के लिए उसका निर्वासन हो, यह चाहता हूं, परन्तु हत्या की कोई चेष्टा मेरे द्वारा कभी नहीं हो सकती। मैं उसके प्रतिकूल आचरण करूंगा। मैं उसकी मृत्यु नहीं चाहता। यदि उसकी मृत्यु की स्थिति उत्पन्न हुई तो मैं उसकी सहायता करूंगा।'

पहले ने कहा, 'तुम अभी अबोध हो। तुम्हें कुछ ज्ञान सिखाता हूं। मन लगाकर सुनो। बहुत गूढ़ बातें कहूंगा। एक बार चारों ओर देख आओ। मुझे किसी के श्वांस का स्वर आ रहा है। मुझे लग रहा है जैसे कोई हमारी बातें सुन रहा है।'

मृणमयी मड़ैया के द्वार के समीप आ गई थी। उसकी सांसें जोर-जोर से चल रही थीं। उसी का स्वर बातें करने वालों के कानों तक पहुंच गया था।

एक व्यक्ति घर के द्वार पर आया और आते ही उसने मृणमयी को देख लिया। मृणमयी ने भी उसे देख लिया। वह सोच न सकी कि उसे देखकर वह प्रसन्न हो, या डरे। उसने देखा, वह ब्राह्मणवेशी था। वह सामान्य धोती पहने हुए था। वह बहुत ही कोमल और नवयुवक जान पड़ा। उसके चेहरे पर कमनीयता दिखाई पड़ी, परन्तु वह तेजस्वी था। उसके बाल पुरुषों के समान कटे हुए नहीं थे, स्त्रियों की तरह घुंघराले थे और कमर पर लहरा रहे थे। मृणमयी ने उसे निकट से देखा।

दोनों एक-दूसरे को एक क्षण देखते रहे। आगन्तुक ने पूछा, 'तुम कौन हो ? तुम यहां किसलिए आई हो ?'

मृणमयी सहसा उत्तर न दे सकी। ब्राह्मणवेश मृणमयी को निरन्तर देखकर गम्भीर वाणी में बोला, 'कपालकुण्डला ! इस अन्धकारपूर्ण रात्रि में इस भयानक जंगल में तुम किसलिए आई हो ? तुम्हारा यहां आने का क्या प्रयोजन है ?'

एक अज्ञात पुरुष के मुख से अपना नाम सुनकर मृणमयी के मुख से कोई उत्तर न निकला।

सहसा कपालकुण्डला की वाक्-शक्ति जागी। वह निर्भीक स्वर में बोली, 'मैं भी पूछती हूं। इस जंगल में, रात्रि के समय, तुम दोनों क्या कुमन्त्रणा कर रहे थे ? तुम लोग किसका विनाश चाहते हो ? कौन हो तुम लोग ?'

ब्राह्मणवेशी कुछ देर तक निरुत्तर रहा। मानो उसके हृदय में कई नई भावनाएं जाग उठी थीं। उसने मृणमयी का हाथ पकड़ लिया और वह उसे मड़ैया से थोड़ी दूर ले जाने लगा।

मृणमयी ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। ब्राह्मणवेशी बोला, 'चिन्ता क्यों करती हो ? मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूं। मेरे तुम्हारा हाथ पकड़ने से तुम्हें दोष न लगेगा।'

यह सुनकर कपालकुण्डला और भी आश्चर्य में पड़ गई। इस बात का उसे कुछ विश्वास भी हुआ और नहीं भी। वह उसके साथ कुछ दूर चली गई।

वह बोला, 'हम लोग जो कुपरामर्श कर रहे थे, वह तुम्हारे ही विषय में था। क्या तुम सुनोगी कि हम क्या बातें कर रहे थे और हम क्या चाहते हैं ?'

कपालकुण्डला बोली, 'सुनूंगी। कहो तुम लोग क्या बातें कर रहे थे ? क्या चाहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो तुम ?'

वह बोला, 'जब तक मैं न लौटूं, तुम मेरी यहीं प्रतीक्षा करना। मैं अभी आता हूं।'

यह कहकर वह उस कोठरी में लौट गया। मृणमयी कुछ देर वहां खड़ी रही, परन्तु उसने जो सुना था, उससे उसे भय लगने लगा था। वह भय से घबरा गई थी। ब्राह्मणवेशी को लौटने में देर हुई तो मृणमयी वहां न ठहर सकी। वह तीव्र गति से अपने घर की ओर चल दी। अंधकारपूर्ण रात्रि में वह भयभीत हो उठी थी।

मृणमयी तीव्र गति से जंगल के बाहर होने लगी। लौटते समय उसे पीछे से दूसरे व्यक्ति की पग-ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पीछे फिरकर देखने पर अंधेरे में उसे कुछ दिखाई नहीं दिया। मृणमयी ने सोचा कि ब्राह्मणवेशी उसके पीछे आ रहा होगा। घना जंगल पीछे छोड़कर वह जंगली राह पर आ गई थी। अब उतना अंधेरा नहीं था। देखने से कुछ दिखाई पड़ सकता था, परन्तु उसे कुछ दिखाई न दिया। वह फिर तीव्र गति से आगे बढ़ती चली। उसे फिर पग-चाप सुनाई पड़े। वह और तीव्र गति से आगे बढ़ी। अब उसका घर बहुत निकट आ गया था, परन्तु उसी समय बूंदें पड़ने लगीं। मृणमयी दौड़ी। उसे लगा कि पीछा करने वाला भी दौड़ा। तभी भयानक वर्षा आरम्भ हो गई।

आकाश में बिजली का जाल बिछ गया और ओले बरसने लगे। कपालकुण्डला किसी प्रकार घर पहुंची। सहन का द्वार उसके लिए खुला हुआ था। द्वार बन्द करने के लिए वह लौटी। उसे ऐसा जान पड़ा कि सामने कोई वृद्धाकार मनुष्य खड़ा था। तभी बिजली चमकी। उस चमक में उसने उसे पहिचान लिया। वह सागर तट वासी महात्मा कापालिक था।

कापालिक की विकराल मूर्ति उसके समक्ष खड़ी थी। उसके नेत्र अंगारों के समान जल रहे थे, मानो वे उसे भस्म कर डालेंगे। मृणमयी अचेत-सी होने लगी। उसका सिर चकराने लगा। उसके नेत्रों के सामने अंधकार छा गया। उसके हृदय की गति बढ़ गई। उसके पैर लड़खड़ाने लगे।

मृणमयी ने किसी प्रकार साहस करके द्वार बन्द कर दिए और कुछ देर तक द्वार से सिर लगाये खड़ी रही। फिर बड़ी कठिनाई से वह अपने कमरे में गई।

11

मृणमयी पलंग पर लेट गई। प्रबल वायु से हिलता और वर्षा से भीगा कापालिक का चेहरा उसे सामने दिखाई पड़ने लगा। पहले की सब घटनाओं को मृणमयी याद करने लगी। मृणमयी कांप उठी। रात्रि की घटना उसकी आंखों के सामने नाच उठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्यामसुन्दरी की ओषधि-कामना, नवकुमार का निषेध, उनके प्रति उसका तिरस्कार, उसे सब याद आया।

मृणमयी को नींद आ गई। उस नींद में मृणमयी फिर स्वप्न देखने लगी। उसने देखा कि वह सागर-वक्ष पर नौका पर सवार होकर जा रही थी। अचानक सागर में लहरें उठने लगीं। उन लहरों से कापालिक प्रकट हुआ। उसी समय वह ब्राह्मण-वेशधारी प्रकट हुआ। वह बोला, 'नाव डुबा दूं, या बचा लूं ? बोलो क्या चाहती हो?'

मृणमयी बोली, 'डुबो दो।'

उसने नौका को छोड़ दिया।

नौका बोल उठी, 'अब मैं भार न संभाल सकूंगी। मैं पाताल-लोक को जा रही हूं ?' यह कहती हुई नौका पाताल में चली गई। सीधी रसातल में उतर गई।

पसीने में डूबी हुई मृणमयी स्वप्न से जग उठी। उसने देखा सवेरा हो गया था। खिड़की से वासन्ती हवा आ रही थी। मृणमयी को हवा द्वारा अन्दर फेंका गया एक पत्र मिला। उसमें लिखा थां :

'आज कल रात्रि की भांति ब्राह्मणकुमार से भेंट करो। तुम अपने विषय में जो बात सुनना चाहती थीं, वह बात वह तुम्हें सुनाएगा। वह बात तुम्हारे भविष्य से सम्बन्धित है।'

मृणमयी सोच रही थी कि उसे ब्राह्मणवेशी से भेंट करनी चाहिए अथवा नहीं। एक पतिव्रता के लिए निर्जन वन में जाकर पर-पुरुष से भेंट करना निन्दनीय है। यही विचार कर वह जाना नहीं चाहती थी। सन्देह यह था कि ब्राह्मणवेशी पुरुष है अथवा स्त्री। पहले ब्राह्मणवेशी से भेंट, फिर कापालिक द्वारा पीछा, उसके दर्शन और अन्त में वह स्वप्न, इन घटनाओं ने मृणमयी को भयभीत कर दिया था। उसका अमंगल निकट ही था, यह उसे जान पड़ने लगा। उसे यह भी सन्देह न रहा कि यह अमंगल कापालिक के आगमन के कारण था। यह तो उसने स्पष्ट ही कहा था कि बातें उसी के विषय में हो रही थीं। हो सकता है, उसके द्वारा कोई बचाव की राह निकले, परन्तु बातों से तो यही जान पड़ता था कि मृत्यु या निर्वासन होगा। क्या वे बातें मेरे ही लिए थीं ? ब्राह्मणवेशी ने तो यही कहा था कि मेरे विषय में ही बातें थीं। ब्राह्मणवेशी जब ऐसी कुमन्त्रणा में सहकारी है, तो उससे मिलना उचित नहीं, परन्तु रात्रि में जो स्वप्न उसने देखा उसमें ब्राह्मणवेशी के कथन से जान पड़ा कि वह रक्षा कर सकता है। हो सकता है माता ने उसे इसीलिए भेजा हो कि उससे मेरी रक्षा हो। अन्त में मृणमयी ने भेंट करने का ही निश्चय किया। उसने मन में संकल्प कर लिया कि वह आपत्ति का साहस से सामना करेगी।

सन्ध्या के पश्चात् गृह-कार्य समाप्त कर मृणमयी ने पहले की भांति वन-यात्रा की। यात्रा के समय मृणमयी ने अपने कमरे का दीपक तेज कर दिया, परन्तु वह जैसे ही घर से बाहर हुई दीपक बुझ गया। कमरे में अन्धकार छा गया। मृणमयी ने नेत्र बन्द कर लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्रा के समय कपालकुण्डला यह भूल गई कि ब्राह्मणवेशधारी ने किस स्थान पर भेंट करने के लिए लिखा था। उसने लौटकर पत्र खोजा परन्तु पत्र उसे वहां न मिला। मृणमयी की कुछ समझ में न आया कि पत्र कहां गया। वह चुपचाप वन की ओर बढ़ गई।

जब मृणमयी गृह-कार्य में लगी थी तो पत्र उसके जूड़े से खिसककर गिर पड़ा था। मृणमयी को उसका पता न रहा। उस पत्र को गिरता हुआ नवकुमार ने देख लिया था। मृणमयी के वहां से हट जाने पर उन्होंने पत्र को पढ़ा और अपने मन में कहा, 'जो बात कल सुनना चाहती थी, वह आज सुनेगी। ऐसी क्या बात है जिसे मृणमयी कल सुनना चाहती थी ?'

उन्होंने विचारकर देखा कि अब से पहले किन बातों में मृणमयी अबाध्या रहीं। वह स्वतन्त्र प्रकृति की थी। वह सर्वदा स्वतन्त्र रही थी।

वह जहां कहीं भी घूमने गई, अकेली गई। दूसरों के शिकायत करने पर भी उन्होंने कभी उस पर सन्देह न किया। आज वह सब स्मरण करके उन्हें अपने पर क्रोध आ गया। उन्होंने स्वयं को मूर्ख समझा कि उन्होंने मृणमयी के चरित्र पर संदेह न किया। इस पत्र को पढ़कर उन्हें कोई संशय न रहा।

नवकुमार एकांत में चुपचाप बैठकर रोने लगे। रोने के पश्चात् वह कुछ स्थिर हुए। उन्होंने अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। आज वह मृणमयी से कुछ न कहेंगे। रात्रि को मृणमयी जब यात्रा करेगी तो वह उसका पीछा करेंगे और यदि वह कुल्टा प्रमाणित हुई तो वह अपना जीवन त्याग देंगे। वह मृणमयी से कुछ न कहेंगे। उन्होंने मृणमयी की कोई हानि करने की बात न सोची, केवल अपना-ही जीवन समाप्त करने की बात उनके मन में आई। यह विचार मन में दृढ़ करके वह समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

नवकुमार मृणमयी के जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मृणमयी गई तो उसके पीछे नवकुमार भी उठकर चले, परन्तु तभी मृणमयी फिर लौटकर आ गई। मृणमयी के फिर बाहर जाने पर नवकुमार भी बाहर चले तो उन्हें द्वार पर एक दीर्घाकार पुरुष खड़ा दिखाई दिया। उसकी आकृति विकराल थी। लम्बी-लम्बी मूंछें थीं और दाढ़ी भी बहुत लम्बी बढ़ी हुई थी।

वह व्यक्ति कौन था, क्यों खड़ा था, यह जानने की दृष्टि या इच्छा नवकुमार की न हुई। वह केवल मृणमयी पर दृष्टि रखे हुए चले। उस व्यक्ति की छाती पर धक्का देकर उन्होंने उसे हटाना चाहा, परन्तु वह हटा नहीं। वह उनके मार्ग में जमा खड़ा रहा। उसे अपने मार्ग से हटता न देखकर नवकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो ? मेरे मार्ग से हट जाओ। तुमने मेरा मार्ग क्यों रोक लिया ?'

'क्या नहीं पहिचानते मैं कौन हूं ?' उस व्यक्ति ने कहा।

तब तक नवकुमार ने ध्यान से उसकी ओर देखा। वह कापालिक था। उसे देखकर नवकुमार चौंक उठे, परन्तु डरे नहीं। सहसा उनका चेहरा प्रसन्न हो गया। उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछा, 'क्या कपालकुण्डला आपसे ही मिलने के लिए जा रही है ?'

'नहीं।' कापालिक ने गम्भीर वाणी में कहा। यह उत्तर देकर उसने लाल नेत्रों से नवकुमार को देखा।

नवकुमार का आशा-प्रदीप जलते ही बुझ गया। नवकुमार का चेहरा फिर पहले जैसा गम्भीर हो गया। वह बोले, 'तो तुम मेरे सामने से हट जाओ। मैं किसी विशेष कार्य से जा रहा हूं।'

'हट जाऊंगा, परन्तु तुमसे कुछ कहना है, वह सुनो।' कापालिक भेदपूर्ण दृष्टि से नवकुमार पर देखकर बोला।

'तुमसे मेरी क्या बात है ? यदि तुम मेरे प्राण लेने आए हो तो ग्रहण करो। अब मैं मना न करूंगा। तुम तनिक ठहरो, मैं अभी लौटकर आता हूं। मैंने देव-तुष्टि के लिए प्राण नहीं दिया, उसी का फल भोग रहा हूं। जिसने मेरी रक्षा की, उसी ने मुझे नष्ट किया कापालिक ! अब अविश्वास न करो। मैं अभी लौटकर आत्मसमर्पण कर दूंगा। तुम यहीं मेरी प्रतीक्षा करो।'

कापालिक बोला, 'मैं अब तुम्हारे वध के लिए नहीं आया हूं। भवानी को अब वैसी इच्छा नहीं है। मैं जो करने आया हूं, उसमें तुम्हारा भी अनुमोदन है। घर के अन्दर चलो, मैं जो कहता हूं, उसे ध्यान से सुनो।'

नवकुमार बोले, 'इस समय नहीं, फिर किसी दूसरे समय सुनूंगा। तुम तनिक देर यहां ठहरो। मुझे इस समय बहुत आवश्यक कार्य है। मैं उसे पूर्ण करके अभी आता हूं। तब मैं तुम्हारी बात सुनूंगा। तुम मेरा विश्वास करो। मैं अब भागूंगा नहीं।'

'वत्स ! मैं सब जानता हूं। तुम उस पापिन का पीछा करोगे। मैं जानता हूं, वह कहां जा रही है। मैं अपने साथ तुम्हें वहां ले चलूंगा। तुम जो कुछ देखना चाहते हो मैं तुम्हें दिखाऊंगा, परन्तु तुम पहले मेरी बात सुनो। मुझसे डरो नहीं। मैं तुम्हारे कार्य में तुम्हें पूर्ण सहयोग प्रदान करूंगा।'

'अब मुझे आपसे कोई भय नहीं है। कहिए आप क्या कहना चाहते हैं ?'

यह कहकर नवकुमार कापालिक को अन्दर ले गए और एक आसन पर उसे बिठाकर स्वयं भी उसके सामने दूसरा आसन डालकर उस पर बैठ गए।

कापालिक ने बैठकर अपने दोनों हाथ नवकुमार को दिखाए। नवकुमार ने देखा उसके दोनों हाथ टूटे हुए थे। उनमें कुछ कर सकने की शक्ति शेष नहीं थी। उन्हें नवकुमार को दिखाकर वह बोला, 'इन हाथों में अब बल नहीं है। मैं लकड़ी भी नहीं उठा सकता। उस दिन पेड़ से गिरते ही मेरे दोनों हाथ टूट गए थे और मैं अचेत हो गया था। प्रातःकाल मुझे चेतना लौटी थी। मैंने स्वप्न देखा कि भवानी मेरे समक्ष आकर खड़ी थीं। वह भौंहें तिरछी करके बोलीं, 'दुराचारी ! तेरे चित्त की अशुद्धि के कारण मेरी पूजा में विघ्न हुआ। इन्द्रिय-लालसा के वशीभूत होकर तूने कुमारी के रक्त में मेरी पूजा नहीं की। इसी कुमारी के द्वारा तेरे कर्म का नाश हो रहा है। अब मैं तेरी पूजा ग्रहण नहीं करूंगी।' मैं रोकर भगवती के चरणों पर गिरा तो उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्न होकर कहा, 'भद्र ! इसका केवल एक ही प्रायश्चित है। तू कपालकुण्डला का मेरे चरणों पर बलिदान दे। जब तक यह न कर सके, मेरी पूजा न करना।'

मैं देवी की आज्ञा पूर्ण करने के प्रयत्न में संलग्न हुआ, परन्तु मैंने देखा कि इन हाथों में बल नहीं था। बिना बाहु-बल के यह यत्न सफल न होगा। मुझे इसमें तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। बड़े प्रयत्न के पश्चात् इस पापिन का पता लग सका है, परन्तु बाहु-बल के अभाव से कार्य पूरा नहीं हो रहा है। कल रात को मैंने स्वयं देखा कि कपालकुण्डला के साथ एक ब्राह्मणकुमार का मिलन हुआ। आज भी वह उससे मिलने जा रही है। देखना चाहो, तो मेरे साथ चलो।

'वत्स ! कपालकुण्डला वध करने योग्य है। मैं भवानी की आज्ञा से उसका वध करना चाहता हूं। वह तुम्हारे प्रति विश्वासघातिनी है। तुम्हें उसका वध करना चाहिए। अविश्वासिनी को पकड़कर मेरे यज्ञ-स्थल पर ले चलो। वहां अपने हाथ से उसका बलिदान दो। इसने भगवती का अपकार किया है। यदि तुम अपने हाथ से उसका वध करोगे तो माता तुम पर प्रसन्न होंगी।

अब चलो। मैं तुम्हें सब कुछ दिखाता हूं। तुम स्वयं जान सकोगे कि वह कितनी पापिष्ठा है।'

नवकुमार कापालिक के साथ चल पड़े। उनके मन में उस समय मृणमयी के प्रति अपार घृणा जाग्रत हो चुकी थी। उनका मस्तिष्क शंका से भरा हुआ था। वह बार-बार मृणमयी के चरित्र के विषय में सोच रहे थे। उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह स्वचालित यन्त्र के समान कापालिक के साथ वन में घुसते चले जा रहे थे। उन्हें अपनी सुधि नहीं थी।

12

मृणमयी ने घर से निकलकर जंगल में प्रवेश किया। वह शमशान-भूमि की कुटिया में पहुंची और वहां उसकी ब्राह्मणकुमार से भेंट हुई ब्राह्मणवेशी कपालकुण्डला से बोला, 'यहां कापालिक आ सकता है। चलो कहीं अन्यत्र चलें। यहां हम बातें नहीं कर सकेंगे।'

दूसरे स्थान पर जाकर ब्राह्मणवेशी बोला, 'पहले मैं अपना परिचय दे दूं। जब तुम अपने स्वामी के साथ यहां आ रही थीं तो मार्ग में एक यवनस्त्री से तुम्हारी भेंट हुई थी। तुम्हें याद है ?'

'जिसने मुझे आभूषण दिये थे ?' मृणमयी बोली।

'हां, मैं वही हूं। मैंने ही तुम्हें आभूषण दिये थे।'

मृणमयी आश्चर्य में पड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुत्फुन्निसा बोली, 'सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि मैं तुम्हारी सौत हूं।'

'वह कैसे ?' मृणमयी बोली।

लुत्फुन्निसा ने उसे अपना परिचय दिया।

मृणमयी ने पूछा, 'तुम किस अभिप्राय से यहां आई हो ?'

लुत्फुन्निसा बोली, 'तुमसे अपने पति का चिरविच्छेद कराने की मेरी इच्छा है। मैं इसी अभिप्राय से यहां आई हूं। मैं अपने पति को प्राप्त करना चाहती हूं।'

कपालकुण्डला बोली, 'यह तुम कैसे कर सकोगी ?'

'तुम्हारे सतीत्व के प्रति तुम्हारे पति को संशय में डालकर परन्तु अब उसकी आवश्यकता नहीं है। वह इच्छा मैंने त्याग दी है। यदि तुम मेरे कहे अनुसार कार्य करो तो मेरी कामना सिद्ध हो सकती है। साथ ही तुम्हारा भी मंगल होगा।'

'कापालिक के मुख से तुमने किसका नाम सुना था ?' मृणमयी ने पूछा।

'तुम्हारा नाम। वह तुम्हारी अमंगल-कामना से यज्ञ कर रहे हैं। यह जानने के लिए ही मैं वहां बैठी थी। मैंने छलपूर्वक तुम्हारे नाम के साथ यज्ञ का अभिप्राय पूछा। मैं समझ गई कि यज्ञ तुम्हारी अमंगल-कामना के लिये था। मेरा भी वही प्रायोजन था। यह उसे मैंने बताया। हमने परस्पर सहायता का वचन दिया। तुम्हारी मृत्यु उसे अभीष्ट है। इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने इस जन्म में पाप ही किये हैं, परन्तु में इतनी पतित नहीं हूं कि एक निरपराध स्त्री की हत्या-कामना करूं। मैं इस पर उद्यत नहीं हुई। तभी तुम वहां पहुंच गईं। सम्भवतः तुमने भी यह सुना हो।'

'केवल तर्क मैंने सुना था।' मृणमयी बोली।

'उस व्यक्ति ने मुझे अबोध जानकर कुछ शिक्षा देनी चाही। अन्त में क्या निश्चय हुआ, यह जानने के लिए तुम्हें एकान्त में बैठाकर मैं उनके पास गई थी।' लुत्फुन्निसा ने बताया।

'फिर लौटकर तुम क्यों नहीं आईं ?' मृणमयी ने पूछा।

'कापालिक ने तुम्हारी प्राप्ति और पालन से लेकर तुम्हारे भागने तक का पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। वह सुनते-सुनते मुझे देर हो गई।' यह कहकर लुत्फुन्निसा ने कापालिक का शिखर से गिरना, हाथ टूटना, स्वप्न आदि की सब बातें सुनाईं। स्वप्न की बात सुनकर मृणमयी चौंकी। वह व्याकुल-सी हो उठी।

लुत्फुन्निसा बोली, 'कापालिक भवानी की आज्ञा का पालन करना चाहता है। उसकी बाहुओं में बल नहीं है। इसलिये वह मेरी सहायता चाहता है। मुझे ब्राह्मणकुमार समझकर सहायता की आशा से उसने यह सब मुझसे कहा। मैं अभी तक उद्यत नहीं हूं। भविष्य में भी मैं उद्यत नहीं हो सकती। यह कार्य मैंने स्वार्थ से किया है। मैं तुम्हें प्राणदान देती हूं। क्या तुम मेरे लिए कुछ कर सकोगी ?'

'मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकती हूं ?' मृणमयी ने पूछा।

'प्राणदान लेकर तुम्हें अपने स्वामी का त्याग करना होगा। क्या तुम इसके लिए उद्यत हो ?'

 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणमयी बोली, 'स्वामी को त्यागकर मैं कहां जाऊंगी ? मेरे पास तो कहीं जाने का कोई स्थान नहीं है।'

'विदेश। तुम्हें अट्टालिका दूंगी, धन दूंगी, दास-दासी दूंगी और रानी की तरह रखूंगी। क्या तुम उद्यत हो ?' लुत्फुन्निसा ने पूछा।

मृणमयी चिन्ता में पड़ गई। पृथ्वी पर उसने चारों ओर देखा, परन्तु कुछ दिखाई न दिया। अन्तःकरण में देखा तो नवकुमार कहीं नहीं थे। तब फिर वह क्यों लुत्फुन्निसा की राह का कांटा बने ? वह बोली, 'तुमने मेरी क्या सहायता की है, यह मैं अभी समझ नहीं पाई। अट्टालिका, धन, दास, दासी मैं कुछ नहीं चाहती। मैं तुम्हारे सुख में भी बांधक न बनूंगी ? तुम्हारी इच्छा पूरी हो। कल से तुम इस विघ्नकारिणी की कोई सूचना न पाओगी। मैं वनचारिणी थी, वनचरिणी ही हो जाऊंगी। मैं कहीं वन में चली जाऊंगी।'

लुत्फुन्निसा आश्चर्य में पड़ गई। उसे अपनी बात के इतना शीघ्र स्वीकार होने की आशा न थी। वह बोली, 'बहन ! तुमने मुझे जीवनदान दिया है। मैं तुम्हें अनाथ होकर न जाने दूंगी। मैं तुम्हारे साथ एक चतुर दासी भेजूंगी। तुम उसके साथ जाना। वर्द्धमान में एक महिला मेरी मित्र है, वह तुम्हारी सारी इच्छा पूर्ण करेंगी।'

मृणमयी और लुत्फुन्निसा इस प्रकार बातें कर रही थीं। उनसे कुछ दूर खड़े कापालिक और नवकुमार उन्हें देख रहे थे। मृणमयी का उनकी ओर ध्यान नहीं था। नवकुमार और कापलिक केवल उन्हें देख भर रहे थे, दुर्भाग्यववश उनकी बातें नहीं सुन रहे थे। नवकुमार के मन की शंका ने मूर्त्त रूप धारणं कर लिया।'

नवकुमार ने देखा मृणमयी के बाल बिखरे हुए थे। जब वह उनकी न हुई थी तब भी वह वेणी न बांधती थी। उसके बाल लुत्फुन्निसा की पीठ पर उड़कर जा रहे थे। नवकुमार यह देखकर हताश भूमि पर बैठ गये। कापालिक बोला, 'वत्स ! बल खोते हो ? हताश होते हो ! लो यह भवानी का प्रसाद पिओ। पिओ और बल प्राप्त करो।' यह कहकर उसने उसे एक नारियल दिया। नवकुमार उसे लेना नहीं चाहता था।

कापालिक ने नवकुमार के मुंह से पात्र लगा दिया। नवकुमार ने उसे पिया और प्यास बुझाई। पेय कापालिक की शराब थी। उसे पीते ही नवकुमार में बल आ गया। उसके नेत्र लाल हो गये। वह उन्मत्त हो उठा।

लुत्फुन्निसा ने मृदुल स्वर में कहा, 'बहन ! तुमने जो कार्य किया है उसका बदला दे सकने की मेरी सामर्थ नहीं है, फिर भी मैं तुम्हें याद करती रहूं, यही मेरे लिये सुखकर होगा। मैंने सुना है कि जो आभूषण मैंने तुम्हें दिये थे। उन्हें तुमने किसी गरीब को दे डाला था। यह अंगूठी तुम रखो। इसे देखकर तुम अपनी बहन को याद कर लेना। यदि स्वामी पूछें कि अंगूठी कहां पे पाई, तो कह देना, लुत्फुन्निसा ने दी है।' यह कहकर लुत्फुन्निसार ने अंगूठी मृणमयी के हाथ में दे दी। नवकुमार ने यह भी देखा। कापालिक ने नवकुमार को कांपते देखकर उसे फिर शराब पिलाई, फिर भी नवकुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़खड़ा रहे थे। उनका बदन स्वेदपूर्ण हो गया था।

मृणमयी लुत्फुन्निसा से विदार होकर एक ओर को चली। नवकुमार और कापालिक ने लुत्फुन्निसा से छिपकर उसका पीछा किया। लुत्फुन्निसा उन्हें न देख सकी।

मृणमयी धीरे-धीरे घर की ओर चली जा रही थी। वह बहुत गम्भीर चिन्ता में डूबी हुई थी। लुत्फुन्निसा की दी हुई सूचना से उसका चित्त परिवर्तित हो गया था। वह आत्मविसर्जन के लिए उद्यत हुई। आत्मविसर्जन किसलिये ? लुत्फुन्निसा के लिए?

जिस प्रकार तान्त्रिक भवानी के लिए उद्यत थी। वह अब जीवित रहना नहीं चाहती थी। उसका हृदय टूट चला था।

मृणमयी ने अपने हृदय से पूछा, 'अपने इस शरीर को जगदीश्वरी के लिए क्यों न समर्पण करूं ? इसको रखकर क्या होगा ?'

मृणमयी नीचा सिर किये चलने लगी। उसी समय ऊपर से उसके कानों में एक शब्द पहुंचा, 'वत्स, मैं राह दिखाती हूं।' मृणमयी ऊपर देखने लगी। उसने देखा, आकाश में माता की मधुर मूर्ति थी। उसके गले में लटकने वाली नर-मुण्डमाला से खून टपक रहा था। यह स्वप्न नहीं था। वह प्रत्यक्ष देख रही थी।

मृणमयी ऊपर देखकर चलने लगी। देवी रूप उसे राह दिखा रहा था। वह उसे देखती हुई चली जा रही थी।

नवकुमार और कापालिक ने वह सब कुछ न देखा। नवकुमार बोले, 'कापालिक!' उनका कंठ सूख रहा था।

'क्या है ?' कापालिक ने पूछा।

'बहुत प्यास लगी है।' नवकुमार बोले।

कापालिक ने नवकुमार को फिर शराब पिलाई और गम्भीर वाणी में बोला, 'अब देर क्यों ? विलम्ब न करो।'

'हां-हां, देर कैसी ?' नवकुमार बोले। उन्होंने उच्च स्वर में पुकारा, 'कपालकुण्डला!'

मृणमयी चकित हुई। अभी तक वहां उसे कपालकुण्डला कहकर किसी ने न पुकारा था। वह पलटकर खड़ी हो गई। नवकुमार और कापालिक उसके सामने खड़े थे। कपालकुण्डला बोली, 'तुम लोग कौन हो ? यमदूत हो क्या ?'

फिर पहिचान कर बोली, 'नहीं-नहीं, पिता ! तुम मुझे बलि देने के लिए आये हो ? मैं उद्यत हूं।'

नवकुमार ने कपालकुण्डला का हाथ पकड़ लिया। कापालिक बोला, 'वत्स ! हमारे साथ आओ।' कापालिक श्मशान भूमि की राह दिखाता हुआ आगे बढ़ा। नवकुमार और कपालकुण्डला उसके पीछे-पीछे चले।

कपालकुण्डला ने आकाश की ओर दृष्टि उठाई, जहां उसने भैरवी की मूर्ति देखी थी। माता खिलखिलाकर हंस रही थी। कपालकुण्डला कापालिक का अनुसरण करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा रही थी। नवकुमार उसका हाथ पकड़े हुए चल रहे थे।

कापालिक अपने पूजा-स्थान पर कपालकुण्डला को ले गया। गंगा-तट पर वह बालू की भूमि थी। वहां दीपक न था, केवल जलती लकड़ियों का प्रकाश था, जो उसकी भयानकता को और भी बढ़ा रहा था। पास में पूजा, होम और बलि का सामान रखा था। हवनकुण्ड में अग्नि जल रही थी। निकट में ही दो शव जल रहे थे। लकड़ियां जलकर चटख रही थीं।

कापालिक ने नवकुमार और कपालकुण्डला को उपयुक्त आसन पर ले जाकर बिठाया और स्वयं पूजा में लग गया। उसने मंत्रों का उच्चारण किया और यज्ञ में आहूतियां दीं।

पूजा करने के पश्चात् उसने नवकुमार को आदेश दिया, 'वत्स ! कपालकुण्डला को गंगा में स्नान करा लाओ। यह कार्य शीघ्र कराओ, विलम्ब न करना। माता यही चाहती है।'

कापालिक की आज्ञा पाकर नवकुमार कपालकुण्डला का हाथ पकड़कर गंगा में स्नान कराने चले। नवकुमार के पद्ाघात से श्मशान का एक कलश टूट गया। उसके पास एक शव पड़ा था। दोनों के पैर से उसका स्पर्श हुआ। कपालकुण्डला उससे बचकर निकल गई। नवकुमार उस पर चढ़कर गये। शव-भक्षक पशु वहां घूम रहे थे। वे चिल्ला उठे। कोई आक्रमण करने आया, कोई भाग गया। कपालकुण्डला ने देखा कि नवकुमार कांप रहे थे। कपालकुण्डला निर्भय थी। उसे कोई भय नहीं था। उसने कहा, 'भय तो नहीं लग रहा।'

नवकुमार का नशा अब क्षीण होता जा रहा था। वह गम्भीर स्वर में बोले, 'भय, मृणमयी नहीं।'

'फिर कांपते क्यों हैं आप ?' मृणमयी ने पूछा।

यह प्रश्न कपालकुण्डला ने जिस स्वर से किया, वह केवल रमणी हृदय से ही सम्भव था। उसे सुनकर नवकुमार स्तम्भित हो उठे। उनका बदन थरथराने लगा।

'भय से नहीं। रो नहीं पा रहा हूं। मैं क्रोध से कांप रहा हूं।' नवकुमार ने उत्तर दिया।

'आपके रोने का क्या कारण है ?' मृणमयी ने पूछा।

'रोने का कारण तुम क्या समझोगी मृणमयी ! तुम तो कभी सौन्दर्य देखकर उन्मत्त नहीं हुई।' कहते-कहते नवकुमार का गला भर आया। 'तुम तो कभी अपना कलेजा स्वयं काटने के लिये श्मशान-भूमि में नहीं आई।' यह कहते-कहते सहसा नवकुमार रोते हुए कपालकुण्डला के चरणों पर गिर पड़े और हिचकियां लेकर कातर वाणी में बोले, 'मृणमयी ! कपालकुण्डले ! मेरी रक्षा करो ! एक बार कह दो कि तुम अविश्वासिनी नहीं हो। एक बार कह दो तो मैं तुम्हें अपनी छाती से लगाकर घर ले चलूं। मैं पागल हो उठूंगा। मेरा हृदय टूट जायेगा।'

मृणमयी ने हाथ पकड़कर नवकुमार को उठाया और मृदुल स्वर में बोली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्राणनाथ! अब यह पूछने का अवसर कहां शेष रह गया है ? इस समय तो आप पिता की आज्ञा का पालन करने जा रहे हैं। मुझे स्नान कराकर ले चलिये और माता के चरणों पर मेरी बलि देकर अपनी आत्मा को शान्त कीजिये। अब यदि मैं यह भी कहूं कि मैं विश्वास-घातिनी नहीं हूं तो क्या लाभ होगा ?'

नवकुमार विह्वल हो उठे। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बह चली। उनकी दशा पागलों की जैसी हो गई।

'आप रो रहे हैं। माता का कार्य पूरा करने में आपको कष्ट हो रहा है। इतने दुर्बल न बनें आप। एक दिन माता के चरणों पर आपकी बलि दी जाने वाली थी। मैंने आपको उससे मुक्ति दिलाई थी। अपने उस पाप का प्रायश्चित्त आज मैं अपने प्राण देकर करने को उद्यत हूं। मैंने आपकी रक्षा करके जो पाप किया था, उसे आप मेरी बलि देकर पुण्य में बदल दीजिये। क्या आपकी दृष्टि में वह स्त्री अविश्वासिनी भी हो सकती है जिसने यह कार्य किया था ? वह स्त्री जिसने अपने प्राणों को संकट में डाल कर आपकी रक्षा की, वही आज अविश्वासिनी बनी है।'

मृणमयी के इन शब्दों ने नवकुमार को झंझोड़ डाला। उनका मानस हिल उठा। उनके बदन पर छाया हुआ शराब का नशा काफूर हो गया। वह बोले, 'मृणमयी ! मुझे क्षमा कर दो। इस पापी को क्षमा कर दो।'

मृणमयी मुस्करा रही थी। वह मधुर वाणी में बोली, 'आप पति हैं मेरे। मुझसे क्षमा-याचना करके मुझे पाप में न धकेलिये। मैं सविनय प्रार्थना करती हूं आपसे। आपके भ्रम का कारण मैं जानती हूं, परन्तु वह केवल भ्रम है।'

नवकुमार अपने को न संभाल सके। वह मृणमयी के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने मृणमयी के चरणों को कसकर पकड़ लिया। उन्होंने अपने नेत्रों के जल से उसके पैरों को भिगो दिया। उनके नेत्रों से अविरल आंसुओं की धारा बह रही थी।

मृणमयी के नेत्र आकाश पर टिके थे। उसके समक्ष माता खड़ी मुस्करा रही थीं। वह हाथ जोड़कर बोली, 'माता ! मैं आ रही हूं। अब देर नहीं है। मैं आ रही हूं।'

'मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा मृणमयी ! मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। तुम्हें मुझसे छीनकर कोई नहीं ले जा सकता।' नवकुमार विह्वल होकर बोले। उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था।

आकाश में गम्भीर घन-गर्जन हुआ। बिजली चमकी और बादल गरज उठे। भीषण अन्धकार छाता चला जा रहा था। वायु बड़े वेग से बह रहा था।

मृणमयी ने देखा, माता उसे बुला रही थीं। माता के दोनों हाथ उसकी ओर फैले हुए थे। उसके कानों में नवकुमार का एक भी शब्द न पहुंच सका। वह गंगा माता की ओर बढ़ना चाहती थी।

नवकुमार मृणमयी के चरणों में पड़े-पड़े रो रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी।

मृणमयी बोली, 'प्राणनाथ ! कापालिक की आज्ञा का पालन कीजिये। कहीं ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो कि वह आपको श्राप दे डालें। वह बहुत भयंकर व्यक्ति हैं। आप उनकी आज्ञा का पालन करें।'

'मैं कापालिक की चिन्ता नहीं करता मृणमयी ! मैं केवल यह जानना चाहता हूं कि वह ब्राह्मणकुमार कौन था ? मेरी शंका का निवारण कर दो मृणमयी !'

यह सुनकर कपालकुण्डला मुस्कराई। फिर मधुर स्वर में बोली, 'माता के चरणों पर मेरी बलि देकर जब आप इस अविश्वासिनी से मुक्ति प्राप्त कर लेंगे तो आपको ब्राह्मणकुमार का भी परिचय प्राप्त हो जायेगा। वह स्वयं आपके पास आकर अपना परिचय देगा। आप अपरिचित नहीं रहेंगे उससे।'

अब नवकुमार का नशा बिलकुल समाप्त हो चुका था। वह मृणमयी के अलौकिक रूप को निहार रहे थे। इस समय उसका रूप वही था, जिसके सागर-तट पर दर्शन करके वह एक बार स्तब्ध रह गये थे। यह वही रूप था जिसने उनकी आत्मा में प्रवेश कर उनके हृदय को आलोकित किया था। उसके चेहरे पर दिव्य प्रकाश छिटक रहा था।

मृणमयी बोली, 'वह ब्राह्मणकुमार मेरा कुछ नहीं है। वह जो कुछ भी है सो आपका है। आप उसे पहिचान नहीं पाये, इसका दोष मुझ पर क्यों ? उससे एक दिन आपने ही मेरा परिचय कराया था। मैं पहिले उसे नहीं जानती थी। उससे मेरा परिचय कराकर फिर मुझ पर अविश्वास क्यों ?'

'मैंने !' आश्चर्यपूर्ण स्वर में नवकुमार बोले। 'मैंने तो उस व्यक्ति को आज से पूर्व कभी देखा भी नहीं।'

'यही बात कल आप मेरे विषय में भी कह सकेंगे प्राणनाथ ! इस वाक्य के कहने में आपको लेश मात्र भी कठिनाई न होगी।' मृणमयी गम्भीर वाणी में बोली। 'पुरुषों के लिये यह बात कहनी नितान्त सरल बात है।'

मृणमयी का यह वाक्य सुनकर नवकुमार भयभीत हो उठे। उनके हृदय पर गम्भीर ठेस लगी। वह गम्भीर वाणी में बोले, 'मृणमयी ! आखिर दोषी भी मुझे ही ठहराया तुमने ? क्या वास्तव में मैं ही दोषी हूं ?'

'दोषी कैसे ?' मृणमयी ने पूछा।

'तुमने ही तो कहा कि मैंने उससे तुम्हारा परिचय कराया था।' नवकुमार आश्चर्य के साथ बोले।

'झूठ भी कैसे बोलूं प्राणनाथ ! और वह भी देव-तुल्य पति देव के समक्ष। पुजारिन माता ने विवाह के समय मुझसे कहा था, 'बेटी ! पति ही स्त्री का धर्म है।' मैं अपने धर्म का परित्याग कैसे कर सकती हूं ?'

नवकुमार का सारा बदन स्वेदपूर्ण हो गया। वह थर-थर कांप रहे थे। उनके मस्तिष्क में एक विचित्र बेचैनी थी। उनके नेत्रों के समक्ष ब्राह्मणकुमार की प्रतिमा खड़ी मुस्करा रही थी। वह उसे पहिचानने में असमर्थ थे। उनकी आंखों का पानी सूख गया था। उनका सिर चकरा रहा था। उनका हृदय फटा जा रहा था। वह अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयभीत हो उठे थे।

नवकुमार ब्राह्मणकुमार के विषय में सोच रहे थे। उसकी आकृति उनके समक्ष थी। वह बोले, 'क्या तुम सच कह रही हो मृणमयी ?'

'मैंने कभी आपसे झूठ नहीं बोला।' दृढ़तापूर्वक मृणमयी ने कहा।

'तो क्या तुम उसका परिचय नहीं दे सकतीं ?' नवकुमार बोले।

'परिचय मुझसे अधिक आप स्वयं जानते हैं ?' मृणमयी ने उसी दृढ़ता के साथ कहा।

'मैं तो उसे पहिचानता भी नहीं।' नवकुमार बोले।

'शीघ्रता न करें प्राणनाथ ! दासी की बलि देकर घर लौटने पर वह आप से भेंट करेंगे। उनका जो परिचय शेष रह गया है। वह आपको तब मिल जायेगा। उनका आपसे घनिष्ट सम्बन्ध है।'

'तो क्या तुम उसके विषय में कुछ भी न बताओगी ? क्या तुम मेरे हृदय में धधकने वाली ज्वाला को शान्त नहीं करनार चाहतीं ?'

मृणमयी मुस्कराकर बोली, 'आपके मन में जो अविश्वास का अंकुर जम चुका है, मैं उसे नष्ट करने का प्रयास क्यों करूं ?'

नवकुमार के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। मृणमयी के नेत्रों में भी जल भर आया। उसी समय भयंकर घन-गर्जन हुआ। मृणमयी ने देखा आकाश में खड़ी माता मुस्करा रही थीं। वह बोली, 'माता ! क्षमा-याचना करती हूं। मैं आ रही हूं। अब और अधिक विलम्ब न करूंगी। अविश्वासिनी होकर मैं जीवित नहीं रह सकती। आपने मेरे बेल-पत्र को चरणों में ग्रहण न करके मुझे संकेत दिया था, परन्तु उस समय आपने मार्ग-दर्शन नहीं किया। मैं अन्धकार में भटक रही थी। मेरे समक्ष उस समय कोई मार्ग नहीं था। क्या करती मां ! मैं आ रही हूं अब।'

'मैं तुम्हें कहीं नहीं जाने दूंगा मृणमयी ! तुम्हें कोई शक्ति मुझसे छीनकर नहीं ले जा सकती। तुम मुझसे अभिन्न हो चुकी हो। तुम मेरी हो मृणमयी !'

'काश ऐसा ही होता प्राणनाथ और आप इस अभागिन पर अविश्वास न करते। यह अभागिन प्राण दे सकती है, परन्तु अविश्वास की ज्वाला में नहीं जल सकती। जिस स्त्री ने अपने प्राणों का मोह त्यागकर आपकी कापालिक से रक्षा की, आज उसी कापालिक के आदेश पर आप मेरी बलि देने को उद्यत हुए, इसे भाग्य की विडम्बना ही कहूंगी मैं। इसके अतिरिक्त और क्या कह सकती हूं ?' मृणमयी ने कहा। उसके नेत्र आकाश पर टिके थे। वह किंचितमात्र भी भयभीत नहीं थी। लगता था आकाश में किसी को देखकर प्रसन्नता से खिल उठी थी। उसका अंग-अंग पुलकायमान था। उसके वक्ष में उभार था। वह जीवन की अन्तिम यात्रा तै करने जा रही थी।

नवकुमार नितान्त भयभीत और क्लान्त थे। उनका मस्तिष्क कार्य नहीं कर रहा था। वह समझ नहीं पा रहे थे कि वह व्यक्ति कौन था, जिससे बातें करते उन्होंने मृणमयी को देखा था। उन्हें स्मरण नहीं आ रहा था कि वह कब उनके जीवन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया, कब उससे उनका परिचय हुआ और कब उन्होंने मृणमयी से उसकी भेंट कराई। वह दीन-भाव से बोले, 'मृणमयी, यदि वास्तव में उस व्यक्ति से मैंने ही तुम्हारा परिचय कराया है और मैं उसे अब भूल गया हूं तो तुम्हें यह भेद स्पष्ट करने में क्या आपत्ति है ? तुम मुझे स्पष्ट क्यों नहीं बतला देतीं कि वह कौन है।'

'साधारण-सा वेश बदलने पर व्यक्ति को न पहिचान पाना विचित्र बात है, और वह भी उस व्यक्ति को जिसे आपने कभी अपना अभिन्न स्वीकार किया हो। वह व्यक्ति आपका नितान्त आत्मीय रहा है। उसने अपना सब भेद मुझ पर स्पष्ट कर दिया है। इसीलिए मैंने इस निर्जन स्थान पर उससे मिलने में कोई संकोच नहीं किया, परन्तु आपका इस प्रकार मदिरापान करना, कापालिक के साथ आकर मेरे प्राण लेने को उद्यत होना और मुझसें अविश्वास व्यक्त करना क्या मेरे जीवन का अन्त घोषित नहीं करता ? मुझे स्मरण है माता भगवती ने मेरे आपसे विवाह करने पर आपत्ति प्रकट की थी। उस समय पुजारिन मां का आदेश पालन कर मैं आपके साथ चली आई थी। आज आप कापालिक के आदेश पर मेरे प्राण लेने के लिये मुझे स्नान कराने ले जा रहे हैं, उस दिन कापालिक स्वयं मुझे अपनी खड़ग की धार से यमपुरी पहुंचा देता। क्या अन्तर है दोनों में।

मां भगवती मुझे बुला रही हैं। वह देखो आकाश में खड़ी मुस्करा रही हैं। कितना अच्छा होता यदि मैं उसी दिन मां भगवती की गोद में चली जाती।' यह कहकर मृणमयी रो पड़ी।

नवकुमार की कुछ भी समझ में न आया कि यह क्या हो रहा था और क्या होने वाला था। वह विह्वल होकर बोले, 'मुझे क्षमा कर दो मृणमयी ! मुझे कापालिक ने भ्रमित कर कुपथगामी बना दिया। क्या जिसे तुमने एक बार प्राणदान दिया, उसे क्षमा नहीं कर सकतीं ? मैं तुमसे तुम्हारे और अपने प्राणों की भिक्षा मांग रहा हूं।'

'वह समय समाप्त हुआ स्वामी ! अविश्वसीय नारी का जीवन वृथा है। जो अविश्वास का अंकुर आपके मन-प्राणों में अंकुरित हो चुका, वह कभी भी दासी को पापिष्ठा घोषित करने को बाध्य कर सकता है। इस समय भगवती मां मुझे पुकार रही हैं। मैं उनकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकती। मुझे जाना ही होगा। आपको यहां से लौटते ही, सम्भव है उससे भी पूर्व यह ज्ञात हो जायेगा कि मैंने आपसे असत्य कुछ भी नहीं कहा। वह व्यक्ति आपका पूर्व परिचित है, जिससे मैं बातें कर रही थी और उससे आपने ही मेरी भेंट कराई थी। वह न तो मेरा पूर्व परिचित था और न यहां आने पर उससे मेरा परिचय हुआ था।'

मृणमयी यह कहकर गंगा की धारा की दिशा में बढ़ चली। नवकुमार ने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13

लुत्फुन्निसा मृणमयी से विदा होकर कापालिक की कुटी की ओर गई। उसे आशा थी कि कापालिक तब तक वहां पहुंच गया होगा। उसने वहां जाकर देखा, कापालिक वहां नहीं था। कुटी में अन्धकार छाया हुआ था।

लुत्फुन्निसा कापालिक की कुटिया के सामने खड़ी रहकर उसकी प्रतीक्षा करने लगी। वह उससे अन्तिम विदा लेने के लिए उसके पास गई थी।

कुछ देर पश्चात् उसने कुछ दूर पर चन्द्रमा के प्रकाश में तीन व्यक्तियों को शमशानभूमि की ओर जाते देखा। उसे ध्यान से देखने पर ज्ञात हुआ कि उनमें एक स्त्री थी। लुत्फुन्निसा को समझनें में देर न लगी कि वह स्त्री कपालकुण्डला ही थी और तीनों व्यक्तियों में सबसे आगे चलने वाला कापालिक था। एक व्यक्ति कपालकुण्डला का हाथ पकड़े हुए उसे आगे बढ़ाकर ले जा रहा था। कपालकुण्डला के बाल हवा में उड़ रहे थे। वह उसके साथ आगे बढ़ती जा रही थी।

यह देखकर लुत्फुन्निसा भयभीत हो उठी। उसका सारा बदन स्वेदपूर्ण हो गया। उसका हृदय मृणमयी के लिए व्याकुल हो उठा। वह सोच रही थी कि पता नहीं इस बेचारी पर कैसी विपत्ति आ पड़ी है। उसके मन में कापालिक के प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी।

लुत्फुन्निसा आगे बढ़कर एक वृक्ष की आड़ में खड़ी होकर उन्हें देखने लगी। वह नितान्त मौन खड़ी थी, जिससे उसे कोई देख न ले।

लुत्फुन्निसा उस व्यक्ति को न पहिचान सकी जो मृणमयी का हाथ पकड़े हुए कापालिक के पीछे-पीछे जा रहा था। उसने बड़े ध्यान से उसकी ओर देखा।

लुत्फुन्निसा सशंकित हो उठी। उसे संशय हुआ कि कापालिक ने किसी अन्य व्यक्ति से सहायता लेकर मृणमयी को पकड़ लिया है और अब निश्चय ही कोई अनिष्ट होने वाला है। वह जानती थी कि कापालिक उसके प्राण लेना चाहता है।

लुत्फुन्निसा कांप उठी। वह मृणमयी के लिए चिन्तित होने लगी। उसका दिल धड़-धड़ कर रहा था। उसका सांस तीव्र गति से चलने लगा।

कापालिक ज्यों ही शमशान भूमि की ओर आगे बढ़कर अपने यज्ञ-स्थल पर पहुंचा त्यों ही लुत्फुन्निसा धीरे-धीरे वृक्षों की ओट लेती हुई उनकी ओर को बढ़ने लगी। कुछ ही देर पश्चात् वह उनके बिल्कुल निकट पहुंच गई।

लुत्फुन्निसा ने आश्चर्य के साथ यज्ञ में जलती हुई लड़कियों के प्रकाश में देखा कि जो व्यक्ति मृणमयी का हाथ पकड़े हुए था, वह उसका पति नवकुमार था। उसकी समझ में न आया कि आखिर यह सब क्या होने जा रहा था।

लुत्फुन्निसा चुपचाप एक वृक्ष के पीछे खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी। उसने नवकुमार को कापालिक की मदिरा का पान करते देखा तो वह आश्चर्य में डूब गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका बदन थर-थर कांपने लगा। वह किसी भावी अमंगल की संभावना से प्रकम्पित हो उठी।

कापालिक ने अपनी पूजा समाप्त करके नवकुमार से जब कपालकुण्डला को गंगा में स्नान करा लाने के लिए कहा और वह उसका हाथ पकड़कर उसे गंगा की ओर ले चले तो लुत्फुन्निसा भी दबे पैर कापालिक की दृष्टि से अपने को छिपाती हुई उसी ओर चल पड़ी। वह धीरे-धीरे उनके पीछे जा रही थी।

लुत्फुन्निसा ने नवकुमार को शमशान में पड़े एक शव को रौंदकर कपालकुण्डला का हाथ पकड़े हुए आगे बढ़ते देखा तो वह और भी भयभीत हो उठी।

'नवकुमार' उसके मुख से धीरे से निकला। वह चुपचाप आगे बढ़ती गई और उन दोनों के बिल्कुल निकट पहुंच गई।

लुत्फुन्निसा एक वृक्ष की आड़ में खड़ी होकर उनकी बातें सुनने लगी। उन दोनों ने उसे नहीं देखा।

नवकुमार कह रहे थे, 'मृणमयी ! विश्वास करो, मैंने इस ब्राह्मणकुमार को जीवन में पहले कभी नहीं देखा। तुम्हें जाने क्यों भ्रम हो रहा है कि मैंने उससे तुम्हारा परिचय कराया था।'

मृणमयी मुस्कराकर बोली, 'भ्रम मुझे नहीं आपको हो रहा है प्राणनाथ ! आपने उसे इतने ही निकट से देखा है जितने निकट से आप मुझे देख रहे हैं। मेरा परिचय भी उससे आपने ही कराया था। मैं अविश्वासिनी हूं, यह भ्रम भी आपके ही मन में पैदा हुआ है।'

'मैं नहीं, अन्य भी कहते हैं मृणमयी !' नवकुमार बोला।

मृणमयी हंस पड़ी। नवकुमार स्तम्भित रह गए।

'तो यही विश्वास है आपका मेरे प्रति ? क्या इसी के आधार पर आप मुझे अपनी धर्मपत्नी कहते हैं ? 'क्या विश्वास की आपको ही आवश्यकता है, मुझे नहीं? क्या यह मेरा अपमान नहीं है कि आपके मन में मेरे प्रति अविश्वास ने जन्म लिया ?' मृणमयी उन्मत्त-सी हो उठी। उसके नेत्र आकाश पर जाकर टिक गये। वह हाथ जोड़कर बोली, 'माता ! मैं आ रही हूं। आपके चरणों पर बलि देकर मैं अपना जीवन सफल करूंगी।'

नवकुमार कांप उठे। वह गिड़गिड़ाकर बोले, 'मृणमयी ! तुम घर लौट चलो। मुझे क्षमा कर दो। मैंने अपराध किया है।'

'अपराध आपने नहीं, मैंने किया है प्राणनाथ ! मैंने माता की पूजा में विघ्न उपस्थित किया। मैं अपनी बलि देकर उसका प्रायश्चित करूंगी। आपकी ब्राह्मणकुमार से भेंट अवश्य होगी। ब्राह्मणकुमार से मिलकर आप स्वयं जान सकेंगे कि मृणमयी अविश्वासिनी नहीं थी।'

'मैं उससे भेंट नहीं करना चाहता मृणमयी ! तुम वापस लौट चलो। मेरा कहना मान लो मृणमयी ! जिसे तुमने एक बार प्राण-दान दिया है, उसे इस प्रकार मृत्यु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख में धकेलने का प्रयास न करो। मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकूंगा। क्या तुम्हें मेरी बात का विश्वास नहीं है ?'

'आपको अपनी पूर्व पत्नी के दर्शन होंगे पतिदेव ! उनके साथ रह कर आप धनधान्य से पूर्ण होंगे। आपको वैभव प्राप्त होगा। इस वनवासिनी के पास आपको अविश्वास देने के अतिरिक्त और क्या रखा है ? यह आपसे क्षमा-याचना करती है।' मृणमयी गम्भीर वाणी में बोली। उसके नेत्र आकाश पर टिके थे। आकाश में घन-गर्जन हो रहा था।

नवकुमार मृणमयी के चरणों पर गिर पड़े।

मृणमयी ने नीचे झुककर नवकुमार को ऊपर उठाते हुए कहा, 'प्राणनाथ ! अब आप मेरी आशा त्यागकर घर लौट जाइए। मैं माता की आज्ञा का पालन करने का निश्चय कर चुकी हूं। मैं उनकी तुष्टि के लिए प्राण त्याग करूंगी। एक बार आपके अविश्वास की पात्री बनकर मेरा जीवन आपके लिए निरर्थक हो चुका है। जो बीज आपके मन में एक बार अंकुरित हो चुका है, वह किसी दिन पल्लवित और पुष्पित भी हो सकता है। मैं अपने प्राणों की आहुति देकर उसे जड़मूल से उखाड़ फेंकना ही अपना कर्त्तव्य समझती हूं। इस समय मेरा और आपका इसी में हित है।'

तभी वहां के वायुमण्डल में कापालिक का स्वर गूंज उठा। वह कह रहा था, 'वत्स नवकुमार ! तुम इस पापिन को स्नान कराके अभी लाये नहीं, तुरन्त लाओ। माता प्रतीक्षा कर रही हैं। इस कार्य में विलम्ब न करो।'

उसी समय लुत्फुन्निसा वृक्ष की ओट से बाहर निकलकर नवकुमार और मृणमयी के समक्ष आ खड़ी हुई।

कपालकुण्डला लुत्फुन्निसा की ओर संकेत करके बोली, प्राणनाथ ! यही है वह ब्रह्मकुमार। क्या इन्हीं से मार्ग की उस चट्टी में आपने मेरा परिचय नहीं कराया था? क्या इन्होंने मुझे वे अमूल्य आभूषण प्रदान नहीं किए थे ? क्या यही आपकी पूर्व पत्नी पद्मावती नहीं हैं? मैं जाती हूं प्राणनाथ ! आपका मार्ग अब निष्कंटक है।' यह कहकर मृणमयी ने पद्मावती की ओर देखा और हाथ जोड़कर बोली, 'बहन ! आपकी आज्ञा का पालन कर रही हूं। आपके मार्ग से सर्वदा के लिए हट रही हूं। जो वैभव आप मुझे प्रदान करना चाहती थीं वह अपने और अपने पति के लिए सुरक्षित रखें। मुझे न आपका वैभव चाहिए और न आपके आभूषण।'

इतना कहकर कपालकुण्डला झुकी और उसने नवकुमार की चरणरज लेकर अपने मस्तक पर लगाकर उन्हें प्रणाम किया।

उसी समय भीषण घन गर्जन हुआ। आकाश में बादलों की गड़गड़ाहट के मध्य विद्युत का प्रकाश चारों ओर छिटका और नहीं-नहीं बूंदें गिरने लगीं। वायु का वेग बढ़ता जा रहा था। भयंकर तूफान आने की सम्भावना थी। वर्षा का वेग बढ़ता जा रहा था।

लुत्फुन्निसा का हृदय विदीर्ण हो उठा उस दृश्य को देखकर। उसका हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मग्लानि से भर गया। वह इस भीषण दुर्घटना की अपने आपको ही दोषी गिन रही थी। वह दीन-भाव से बोली, 'कपालकुण्डला ! मुझे क्षमा कर दो। मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा हुई है। मेरे ही कारण तुम अपने पति की अविश्वासी बनी हो। मैंने जीवन में अनेकों पाप किये हैं, परन्तु यह पाप ऐसा बन पड़ा है कि जिसके आघात को मैं कभी सहन नहीं कर पाऊंगी। तुम इनके साथ घर लौट जाओ। मैं आज ही यह स्थान छोड़कर कहीं अन्यत्र चली जाऊंगी और फिर कभी तुम्हारे मार्ग में आने का प्रयास न करूंगी। मेरा ख्याल था कि मैं तुम्हें धन-प्रलोभन देकर यहां से कहीं अन्यत्र भेज दूंगी और फिर अपने पति को प्राप्त कर सकूंगी।'

मृणमयी मुस्करा दी लुत्फुन्निसा की बात सुनकर। वह बोली, 'मैं तो बनवासिनी हूं बहिन ! मुझे धन वैभव का कोई प्रलोभन नहीं है। मेरे कारण तुम अपने पति को न पा सको, यह भी मैं सहन नहीं कर सकती। मैं तुम्हारा मार्ग उन्मुक्त करके मां भवानी की आज्ञा का पालन करने जा रही हूं। मैं प्रसन्नतापूर्वक जा रही हूं बहन! मुझे इसमें लेशमात्र भी कष्ट का अनुभव नहीं हो रहा। मैं तो दासी हूं इनकी। वास्तविक पत्नी तो आप ही हैं। आपने त्याग भी किया है इनके लिए। इनके लिए आप राजवैभव को लात मारकर आई हैं। मुझे विश्वास है कि आप इनके जीवन को सुखी बनाने में सफल होंगी। मैं आप दोनों के सुख में बाधा उपस्थित नहीं करूंगी।'

'नहीं, यह नहीं होगा कपालकुण्डला ! तुम इस प्रकार मुझे पाप की भागिन बनाकर नहीं जा सकतीं। मैं वैसे ही अपने पापों के भार से दब रही हूं। मेरे मन में तुम्हें इनसे पृथक कर इन्हें प्राप्त करने की बात आना मेरी मृगतृष्णा थी। मुझे मेरे जीवन की निराशा ने यह सब करने को बाध्य कर दिया था। अपनी यात्रा के मध्य चट्टी पर इनके दर्शन कर मेरे मन में आया कि शायद मेरा भाग्योदय हो, परन्तु उसके लिए मैंने जो रास्ता पकड़ा वह इतना गलत साबित हुआ कि उस पर चलकर मैं अपना तो कोई हित न कर पाई, तुम्हारा अनिष्ठ कर बैठी। मैं विनती करती हूं तुमसे कि तुम अपना निश्चय त्यागकर अपने पति की सुख-शांति को कायम रखो।' यह कहकर लुत्फुन्निसा ने घुटने टिकाकर अपने दोनों हाथ जोड़ दिये।

मृणमयी बोली, 'मेरा निश्चय अटल है बहन ! तुमने अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए जो कुछ भी किया, उसे मैं गलत नहीं समझती। अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए मनुष्य क्या नहीं करता। फिर भी आपके मन में मेरे लिए जो दयाभाव है, उससे मैं गद्‌गद् हुई। आप इन्हें वापस घर ले जायें और इनके जीवन को उन खुशियों से भर दें, जो मेरे लिये इन्हें प्रदान करना सम्भव नहीं है। मैंने जो कुछ किया, वह क्षणिक भावना का उद्वेग था। तुमने जो कुछ किया, वह तुम्हारा अधिकार है। मैंने अनजाने में तुम्हारे अधिकार का हरण करने का जो वृथा प्रयास किया, उसके लिए मैं नितान्त लज्जित हूं। मुझे देर हो रही है। मां भगवती कितनी देर से अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों बाहें फैलाये मुझे बुला रही हैं। मैं और विलम्ब नहीं कर सकती। मुझे आज्ञा दो बहन, मैं जा रही हूं।'

मृणमयी यह कहकर गंगा माता की ओर बढ़ने लगी।

वर्षा का वेग कम हो गया था। तीनों व्यक्ति वर्षा में भीग गये थे। शीतल पवन बह रहा था। मृणमयी के बाल हवा में लहरा रहे थे। उसके रूप में अद्वितीय निखार आ गया था। विद्युत के प्रकाश में नवकुमार और लुत्फुन्निसा ने देखा मृणमयी निर्भीक खड़ी मुस्करा रही थी।

नवकुमार दीनभाव से बोले, 'मृणमयी ! किसी व्यक्ति को जीवनदान देकर इस प्रकार ठुकराना क्या उचित है तुम्हारे लिये। मैं तुमसे एक बार फिर अपने और तुम्हारे प्राणों की भिक्षा मांग रहा हूं। क्या तुम मुझे यह भिक्षा नहीं दोगी ?'

मृणमयी ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसके नेत्र आकाश पर टिके थे। उसके मुख से निकला, 'बहुत देर कर दी मैंने मां ! अब देर नहीं करूंगी। मैं आ रही हूं। आपके पास। मैं आ रही हूं मां! मैं आ रही हूं। आपकी आज्ञा का उल्लंघन मैं कैसे कर सकती हूं ?'

नवकुमार के नेत्रों से अश्रुधारा बह रही थी। कपालकुण्डला के नेत्र नभ पर टिके थे। वह उसी ओर देख रही थी। कपालकुण्डला विद्युत-वेग के साथ गंगा माता की ओर दौड़ पड़ी और नेत्र बन्द करके सरिता की तरंगित धारा में कूद गई। वह अथाह जल में विलीन हो गई।

'कपालकुण्डला ! तुमने यह क्या किया ?' लुत्फुन्निसा के मुख से निकला।

नवकुमार ने कपालकुण्डला के सरिता में कूदने का भीषण नाद सुना तो वह भी पागल की तरह उधर ही दौड़ पड़े।

लुत्फुन्निसा उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ी, परन्तु वह आगे निकल चुके थे। वह उन्हें रोक न सकी।

नवकुमार ने एक बार सरिता की तरंगित धारा की ओर देखा। उन्हें कपालकुण्डला की देह लहरों में नाचती दिखाई दी। वह धारा में कूद पड़े और पानी की लहरों से संघर्ष करने लगे।

सरिता में अथाह जल था। पानी का बहाव बहुत तीव्र था। नवकुमार बहुत अच्छा तैरना जानते थे, परन्तु अनथक प्रयास करने पर भी वह कपालकुण्डला को प्राप्त न कर सके।

नवकुमार ने निराश होकर हाथ-पैर चलाने बन्द कर दिए।

लुत्फुन्निसा किनारे पर खड़ी उनका नाम लेकर पुकार रही थी। उसका शब्द उनके कानों में पड़ा। उनके मुख पर अन्तिम बार कपालकुण्डला का नाम आया और वह सरिता की एक प्रबल लहर की चपेट में आकर खो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों प्राणी माता की भेंट चढ़ गए।

लुत्फुन्निसा सरिता के किनारे पर बैठी आंसू बहाती रह गयी। उसका स्वप्न गंगा की लहरों में विलीन हो गया। उसने अपने जीवन में जो भी स्वप्न देखा, वह, खंडित हुआ। उसका एक भी स्वप्न साकार न हो सका। उसने जिसकी ओर आशा से हाथ बढ़ाया वही उसके हाथों से छूट गया और वह असहाय सी खड़ी रह गई।

□□□

10228

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access on		
		21-1-98
Tag etc.	Sanjay Shastri	
Filing		
E.A.R		
Any other		21-1-98
Checked		

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम चन्द्र

वन्दे मातरम्।
सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्र ज्योत्सनां पुलकित यामिनीम,
फुल्लकुसुमित द्रुभदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं, समधुरभाषिणीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्।।
सप्तकोटि कण्ठ कल-कल निनाद कराले,
द्विसप्तकोटि भुजै धृत खर करवाले,
अवला केनो मां ! एतो बले।
बहुवलधारिणीम्, नमामितारिंणीम्,
रिपुदल वारिणीम्, मातरम्।।
तुमी विद्या, तुमी धर्म,
तुमी हरि, तुमी कर्म,
त्व ही प्राण शरीरे।
बाहुले तुमी मां-शक्ति,
हृदये तुमी मां-भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गढ़ी मन्दिरे मन्दिरे
त्व हि दुर्गा, दशप्रहर धारिणीम्।
कमला कमल-दल विहारिर्णी,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां,
नमामि कमलां, अमलां, अतुलाम्,
सुजलां, सुफलां, मातरम्
वन्दे मातरम्।।
श्यामलां सरलां सुष्मितां भूषियाम्
धरणीं भरणीं मातरम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar